महादेवी वर्मा

साहित्य; कला, जीवन-दर्शन

लेखक

रामचन्द्र गुप्त

एम० ए०, (हिन्दी, दर्शन, राजनीति)

रिसर्च स्कालर

प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा

मूल्य ३॥)

प्रकाशक–
फूलचन्द गुप्त,
संचालक
सरस्वती पुस्तक सदन,
मोतीकटरा, आगरा।

प्रथम संस्करण	संवत् २०१२	१९५५ ई०

मुद्रक
राकेशचन्द्र उपाध्याय,
आगरा पॉपूलर प्रेस,
मोतीकटरा, आगरा।

आदरणीया बहिन
सुश्री 'महादेवी वर्मा',
तुम्हारी प्रेरणा तुम्हीं को

समर्पित

विषय-सूची

—: अवतंरणिका :—

रीतिकाल की अतिशय आलंकारिकता तथा शृङ्गारिक-भावना की प्रचुरता और द्विवेदीयुग की प्रबल इतिवृत्तात्मकता ने कवियों में एक नवीन जागृति पैदा की, जो विकास मूलक नहीं, क्रान्ति-मूलक है। रीति-युग में काव्य गत भावना का बहुत ही ह्रास हुआ। रीति-युग के पश्चात् नवयुग नव संदेश लेकर आया। कविता के लिए नये-नये विषय अपनाये जाने लगे। खड़ीबोली की कविता का युग वास्तव में भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् समझना चाहिए। भारतेन्दु काल में जिस क्रान्ति की झलक दिखाई पड़ी उसे व्यवस्थित रूप प्रदान करने का श्रेय द्विवेदी काल के कवियों को है। पर द्विवेदी युग के कवि सुधारवादी तथा कोई उपदेशक सिद्ध हुए। द्विवेदी-युग की सच्चरित्रता, आत्मनिर्भरता एवं कर्त्तव्य परायणता ने वस्तुतः काव्य का गला घोंट डाला। उसमें सूक्ष्म कल्पना, भावुकता तथा सौन्दर्य का पूर्णतः अभाव रहा। कविता में जो प्राणों का द्वन्द्व रहता है, उसका अन्तर्निवेश इस काल की कविता में न हो सका। फलतः इसी इतिवृत्तात्मकता तथा भौतिकता के विरुद्ध एक बहुत बड़ा प्रतिवर्तन (Reaction) हुआ, जिसे हम छायावाद के नाम से पुकारते हैं। हिन्दी साहित्य में छायावाद का प्रवर्तन करने वाले प्रथम कवि हैं 'प्रसाद', जिन्होंने 'आँसू' नामक काव्य की रचना कर नवीन काव्य क्रान्ति की उद्घोषणा की। छायावाद ने आधुनिक हिन्दी काव्य को प्रौढ़ता प्रदान की और उसे उच्चकोटि का शिल्प सिखाया। प्रसाद, पन्त तथा निराला ने हिन्दी के सभी पक्ष संवारे। महादेवी जी की रचनाओं में अनन्य माधुरी लेकर खड़ी बोली प्रकट हुई। छायावाद का जन्म स्थान उत्तर भारत है,

जहाँ हिन्दी भाषा का प्रचार तथा प्रसार है। उसकी उत्पत्ति का समय बीसवीं सदी है। छायावाद में आरम्भ से ही जीवन की सामान्य और निकट वास्तविकता के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा मिलती है; एक विमुखता का भाव परिलक्षित होता है। वास्तविक जीवन में उसके प्राणों की अभिव्यक्ति के हेतु कोई सम्भावना नहीं थी। अतः उसकी वृत्ति यथार्थ तथा स्थूल जगत से दूर, रहस्यमय और सूक्ष्म के प्रति आकृष्ट हो रही थी। कठोर वर्तमान से कुण्ठित उसकी आत्मा स्वर्ण-अतीत तथा आदर्श भविष्य में तृप्ति खोजती थी। छायावादी कल्पना अपना गढ़, यथार्थ से कोसों दूर किसी स्वप्निल प्रदेश में निर्माण करती थी। कुछ आलोचक इसे समस्याओं से पलायन कहकर तिरस्कृत करते हैं, "परन्तु यह वास्तव को वायवी या अतीन्द्रिय रूप देना ही है—जो मूल-रूप में मानसिक कुराठाओं पर आश्रित होते हुए भी प्रत्यक्ष रूप में पयालन का स्वरूप नहीं।"—श्री नगेन्द्र जी।

छायावाद की काव्यधारा अपने स्वरूप और प्रभविष्णुता में यूरोप की स्वच्छन्दता वादी कविता के मेल में रखी जा सकती है। स्वच्छन्दतावाद जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का दृष्टिकोण है। इसमें सौन्दर्यानुभूतियों का चित्र कल्पना की तूलिका द्वारा रंगा जाता है। इस कविता में कवि की वैयक्तिकता सर्वत्र प्रधान रहती है जो एक ओर तो कवि को रूढ़िगत विचारधारा और काव्य-शैली के विरुद्ध विद्रोह करने को विवश करती है और दूसरी ओर उसमें क्रांतिकारी विचारों का समावेश होता है। विस्मय का स्थान भी इस कविता में महत्वपूर्ण होता है। यही जिज्ञासा और औत्सुक्य की भावना रहस्यवाद का रूपधारण कर लेती है। स्वच्छन्दतावाद में विद्रोह की भावना प्रबल होती है। अतः इस प्रवृत्ति के दर्शन भी छायावादी कविता में होने लगे। अंग्रेजी और बंगला के प्रभाव से गीतिकाव्य और कला का विकास हिन्दी कविता में भी होने लगा। व्यक्तिवाद के विकास से हिन्दी-कविता

अन्तर्मुखी होगई। व्यक्तिवाद के दो रूप हैं। एक विषय पर विषयी की मनसा का आरोप तथा वस्तु को व्यक्तिगत भावनाओं में रंग कर देखना। दूसरा समष्टि से निरपेक्ष होकर व्यष्टि में ही लीन रहना। यही व्यक्ति-भाव प्रसाद में आनन्दभाव, निराला में अद्वैतवाद, पन्त में आत्म-रति और महादेवी में परोक्ष रति के रूप में प्रकट हुआ है। शुक्ल जी ने छायावाद को 'कायावृत्ति का प्रच्छन्न पोषण' कहा है, परन्तु इस दृष्टि से छायावाद-युग को देखना एकाँगी होगा। इस युग में जहाँ एक ओर इस प्रकार की कल्पनाएँ मिलेंगी वहाँ शुद्ध सौन्दर्य का अङ्कन भी पर्याप्त देखने को मिलेगा। इसी सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे जी ने भी लिखा है—"छायावाद में एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतन्त्र दर्शन की आयोजना है। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टतः दृपक अस्तित्व और गहराई है।" एक प्रश्न और भी है और वह यह है कि क्या छायावाद वास्तव में अद्वैत रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है? प्रसाद जी के मतानुसार 'छायावाद अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा 'अहं' का 'इदं' से समन्वय कराने का सुन्दर प्रयत्न है।' प्रसाद जी के अनुसार महादेवी जी की कविताओं में रहस्यवादी छायावाद दिखाई पड़ेगा। परन्तु मैं इसे (छायावाद को) केवल प्राचीन चिन्तनधारा-अद्वैतवाद से प्रेरित मानता हूँ, उसका विकसित स्वरूप नहीं। मेरी समझ से महादेवी की अतृप्ति, वेदना तथा अज्ञात के प्रति जिज्ञासा के मूल में सामाजिक विषमताएँ, आर्थिक असमानताएँ तथा सांस्कृतिक असंतुलन की भावना है। वह मानती हैं कि अतृप्ति ही जीवन है और तृप्ति प्रातःकालीन दीपक की बत्ती की राख है। वे इसीसे कहती हैं—

> बुझते ही प्यास हमारी
> पल में विरक्ति जाती बन!

हाँ, अवश्य ही उनके काव्य में परमात्मा के प्रति जिज्ञासा

और मिलन का भाव है। उनकी अनुभूतियों के मूल में निश्चय ही अद्वैतवाद का स्वर है किन्तु उनकी 'प्यासी साध्य' व्यथित मौन के मार्ग से 'हंसती पीड़ा' की अभिव्यंजना है। वस्तुतः महादेवी जी के गीत छायावाद-रहस्यवाद के अद्भुत सम्मिलन स्थल हैं। आध्यात्मिक चेतना का निरूपण उनकी कविताओं में बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

'छाया की आँख मिचौनी,
मेघों का मतवालापन,
रजनी के घनश्याम कपोलों पर ढर कीले श्रम के कन।
फूलों की मीठी चितवन, नभ की यह दीपावलियाँ,
पीले मुख पर संध्या के वे किरणों की फुलझड़ियाँ॥'

जैसा कि स्वयं महादेवी जी ने भी लिखा है, "छायावाद का मूलदर्शन सर्वात्मवाद है—प्रकृति के अन्तर में प्राण-चेतना की भावना करना सर्वात्मवाद की ही स्वीकृति है। छायावाद में समस्त जड़ चेतन को चेतन स्वरूप दिया गया है और इसे दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो वह निश्चय ही सर्वात्मवाद होगा।"

प्रस्तुत पुस्तक महादेवी वर्मा की काव्यगत विशेषताओं तथा उनकी प्रणयानुभूति और दार्शनिक चिन्तन की विवेचना है तथा उनके गद्य साहित्य के अन्तर्गत जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण का निरूपण किया गया है। पुस्तक के विषयों के प्रतिपादन में मैंने समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए मध्य पथ का अनुसरण करने का प्रयास किया है। साहित्यिक तर्कों और विवादों में अधिक न पड़ते हुए मैंने, वास्तविक सत्य को लक्ष्य करके समन्वय के आधार पर यथार्थ का ध्यान रखते हुए महादेवी जी के साहित्य कला सौर जीवन दर्शन का विश्लेषण किया है। मेरा इस प्रकार का प्रयास कहाँ तक सफल होगा अथवा हो सकेगा केवल भविष्य

ही बतायेगा। अतः मैं अपने कथन को, उन सब के प्रति आभार के साथ जिन्होंने मुझे जीवन में किसी न किसी रूप में प्रेरणा दी तथा कुछ लिखने को प्रोत्साहित किया, यहीं समाप्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी मैं उन सब की, दूर हैं अथवा निकट, कृपा का पात्र बना रहूँगा।

साथ सी मैं अपने कलाकार मित्र का भी आभारी हूँ जिन्होंने आवरण पृष्ठ पर 'रेखाचित्र' देकर पुस्तक के सौन्दर्य को द्विग्नित किया है।

गणेश चतुर्थी, रामचन्द्र गुप्त एम० ए०

संवत् २०१२

अध्याय १

महादेवी वर्मा-जीवन और उसकी मान्यताएँ—

यदि महादेवी जी की पलकों की ओट में करुणा के असंख्य अश्रु कण हैं तो उनके अधरों की ओट में संसार को देने के हेतु हंसी का अक्षय भण्डार। इन अनन्त अश्रुकणों को उनके काव्य में अभिव्यक्ति मिली है और इस हँसी को उनके जीवन में। महादेवी जी के सम्पूर्ण जीवन को टटोलने पर ज्ञात होगा कि उनमें दम्भ जैसी कोई वस्तु नहीं, पर एक कलाकार का स्वाभिमान अवश्य है। जो कोई भी उनके पास अपनी समस्या लेकर पहुँचा, उसकी सहायता उन्होंने अवश्य की। दीनता उनके द्वार से कभी भी निराश नहीं लौटी।

मैंने महादेवी जी को कभी नहीं देखा है परन्तु अपनी कल्पना के आधार पर उनका धुँधला सा चित्र अवश्य अंकित कर सका हूँ। आज से चार वर्ष पूर्व मैंने महादेवी जी का कविता संग्रह 'आधुनिक कवि' पढ़ा था। मैं उसे कितना समझ सका और कितना नहीं, यह तो मुझे याद नहीं, पर पढ़ कर मुझे ऐसा अवश्य भास हुआ कि इस कवयित्री के प्राणों में एक टीस है, तड़पन है। इसी के बल पर मैं उनकी कल्पना कर लेता हूं। उसके पश्चात् मैंने उनके अन्य प्रायः सभी ग्रन्थों के साथ 'आधुनिक कवि' को अनेकों बार पढ़ा है तथा उसके भावों को ठीक ठीक समझने का प्रयास किया है। प्रत्येक बार मन पर सम्मोहन सा छा जाता है। उनकी आत्मा किसी परोक्ष प्रियतम के साक्षात्कार के लिये व्याकुल दीख पड़ती है वेदना असह्य होते हुए भी उन्हें अधिक प्रिय है। आल-

म्वन की आशा में वे हाथ नहीं फैलातीं। अपरिचित पंथ होने पर भी वे निराश नहीं होती हैं प्रत्युत उस पथ पर उसी शालीनता से अड़िग बढ़ती चली जाती हैं। 'आधुनिक कवि' के प्रारम्भ में 'हस्तलिपि' के रूप में दी गई कविता, ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उनके जीवन की अखण्ड साधना और विश्वास है। जब वे कहती हैं—

"पंथ होने दो अपरिचित,
प्राण रहने दो अकेला।
और होंगे चरण हारे,
अन्य हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे।
दुख व्रती निर्माण-उन्मद,
यह अमरता नापते पद।
बाँध देंगे अंक-संसृति से तिमिर में स्वर्ण बेला।"

तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें अपने बढ़ते चरणों की विजय पर पूर्ण विश्वास है। अपनी अनन्त साधना तथा अक्षय साहस के विश्वास पर वे पुनः स्वर्ण बेला का आलिंगन करने को लालायित दीख पड़ती हैं। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि महादेवी जी ने अपनी कविता में जिस व्यक्तिगत साधना की बात उठाई है उसका महत्त्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जब वे कहती हैं—

"दीप मेरे जल अकम्पित, घुल अकम्पित।
पथ न भूले एक पग भी,
पर न खोए लघुविहग भी।
स्निग्ध लौ की तूलिका से आँक सब की छाँह उज्ज्वल।"

तो हम उनके शब्दों में एक ऐसे व्यक्ति की साधना देख सकते हैं जिनमें जनकल्याण की अटूट भावना भरी हुई है। जब साधक आत्मनिष्ठा जगा लेता है तो उसे जीवन के आदान-प्रदान की आवश्यकता नहीं रह जाती और न वह अपने जीवन में सामंजस्य-असामंजस्य ढूँढ़ने की चेष्टा में ही अपनी शक्ति व्यय करता है।

उसे न किसी संरक्षण की आवश्यकता रहती है और न कोई बंधन ही उसे अपनी सीमाओं में बद्ध कर सकता है। महादेवी जी लिखती हैं, "स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेतीं हैं तब पुरुष उनके लिए न महत्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण।"

महादेवी जी वास्तव में आज उस सतह पर पहुँच गई हैं जहाँ तिमिर की सीमा पार करके वे निस्सीम पथ की पंथी हैं और उस पथ की अशेषता को जानते हुए भी उनके धैर्य और विश्वास का अवसान नहीं है। उनकी अन्तश्चेतना जगकर आज अपने अव्यय रूप में सुस्थिर हो गई है, उन्हें न विजय की आकांक्षाएँ और न पराजय ही उनके उन्नति पथ का अवरोधक है। कला की अमर साधना ही उनके जीवन का एकमात्र तथा अन्तिम ध्येय बन गया है। सच्चे अर्थों में महादेवी जी साधक हैं जो साधना की निविड़ता में बाह्य साधनों से ऊपर उठ चुकी हैं। मानवीय अस्तित्व अपने भीतर चाहे कितनी ही गहराइयाँ और चाहे कितनी ही महत्ताएँ सन्निहित किए हुए क्यों न हो, इस प्रकार की प्रेमयाग-स्थिति जो महादेवी जी में दृष्टिगोचर होती है सहज सम्भाव्य नहीं है। स्वयं महादेवी जी 'आधुनिक कवि' की भूमिका में लिखती हैं। "चिन्तन में हम अपनी बहिर्मुखी-वृत्तियों को समेट कर किसी वस्तु के सम्बन्ध अपना बौद्धिक समाधान करते हैं, अतः कभी-कभी वह इतना ऐकान्तिक होता है कि अपने से बाहर प्रत्यक्ष जगत् के प्रति हमारी चेतना पूर्णरूप से जागरूक ही नहीं रहती और यदि रहती है तो हमारे चिन्तन में बाधक होकर।"

बौद्धिक होने के साथ-साथ देवीजी के दार्शनिक चिन्तन में रससिद्धता अधिक है। उनके काव्य में रागात्मक उद्वेलन अधिक है, आत्मानुभूति का फैलाव बहुत ही कम। विभिन्न रंगों के धूमिल आलोक में जैसे आध्यात्मिक तत्त्व तिरोहित हो गये हैं और अदृष्ट बिन्दु पर उनकी भावनाएँ जैसे जड़ होगई हैं, पूर्णतः सीमित।

ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे नारी के सरल, कोमल-युगों से निर्मित लज्जा के आवरण को चीर कर आगे नहीं बढ़ पाई हैं। एक ओर उनमें नारी सुलभ लज्जा तथा आत्मविश्वास और त्याग की भावनाएँ हैं तो दूसरी ओर उनके हृदय में मानव निर्मित बंधनों, परिधियों के प्रति विद्रोह। पर काव्य में उनका व्यक्तित्व अधिक नारी सुलभ है, उसमें वे अपने सम्पूर्ण विश्वास और साधना के बल पर अपने परोक्ष प्रियतम के पथ में चिरन्तन बढ़ती रहना चाहती हैं, मिलन की कामना सम्भव है उन्हें या तो है ही नहीं अथवा उससे उनकी अमर साधना नष्ट होने का भय है। अपने अँचल में जैसे वे समस्त संसार के आँसुओं को छुपा लेना चाहती हैं। महादेवी जी में बौद्धिक संयम बहुत मात्रा में है जिसके द्वारा वह अपनी प्रणय भावना को बांध सकी हैं। महादेवी जी को विरह की वेदना ही इष्ट है मिलन नहीं। यह भावना दिनों दिन इनके काव्य में तीव्र-तर ही होती गई है। उनके दुखवाद के साथ नैतिक संकोच भी मिश्रित है। लेकिन विरह की भावना मिलन के बाद ही तीव्र बनती है। महादेवी की रचनाओं में भी उस मादक मिलन की स्मृति कभी-कभी उभर ही आती है—

आज अब सपने की बात,
होगया है वह मधु का प्रात।
    जब मुरली का मृदु पञ्चमस्वर,
    कर जाता मन पुलकित अस्थिर।
कम्पित हो उठता सुख से भर,
नव लतिका सागात!
    जब उनकी चितवन का निर्झर,
    भरदेता मधु से मानस-सर।
स्मित से झरती किरणें झर-झर,
पीते दृग-जल जात!

परन्तु आगे चलकर महादेवी जी के काव्य में विरह को ही प्रधानता मिलती चली गई है और अन्त में उन्होंने विरह को ही अपना आराध्य और दुःख को ही जीवन का संबल मान लिया।

पर महादेवी जी में गद्य के क्षेत्र में स्वात्म को छोड़कर सर्वात्म-भावना ही अधिक देखने को मिलती है। वे अपने व्यक्तित्व को छोटे से छोटे व्यक्तित्वों में लय करके अपने दिल और दूसरे के दिलों की बात सुनने और सुनाने को तैयार हैं। उनका गद्य उनके काव्य की भाँति सौन्दर्य के भुलावे में डालकर हमें जीवन से दूर नहीं ले जाता, वह तो हमारी शिराओं में चेतना भर कर हमें यथार्थ जीवन में झाँकने की प्रेरणा प्रदान करता है। उसमें साधना और व्यामोह नहीं है, वरन् जीवन के परस्पर पूरक चित्र हैं। आत्मा का सत्य शब्द-शब्द, पंक्ति-पंक्ति में सजीव होकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाता है। अपने गद्य में वे अधिक सजीव तथा अधिक प्रकृत हैं। उनके जीवन का वास्तविक विस्तार हमें उनके गद्य में ही देखने को मिलता है। जो करुणा उनके काव्य में निजि ऐकान्तिक हो उठी है वह गद्य में पहुँच कर सम्पूर्ण विश्व को छूने लगी है। गद्य में आकार उस करुणा ने सहानुभूति तथा सक्रिय सहायता का आदर्श ग्रहण कर लिया है। देखिए—

"धूल के मटमैल सफेद जूते में छोटे पैर छिपाये, पतलून और पैजामे का सम्मिश्रित परिणाम जैसा पैजामा और कुरते तथा कोट की एकता के आधार पर सिलाकोट पहने, उघड़े हुए किनारों से पुराने-पन की घोषणा करते हुए हैट से आधा माथा ढके, दाढ़ी मूँछ विहीन दुबली नाटी जो मूर्त्ति खड़ी थी वह तो शाश्वत चीनी है। उसे सबसे अलग करके देखने का प्रशन जीवन में यह पहली बार उठा।"

('स्मृति की रेखाएँ' पृष्ठ २२)

'स्मरण नहीं आता मैंने वैसी करुणा कहीं और देखी है। खाट पर बिछी मैली दरी, सहस्त्रो सिकुड़न भरी मलिन चादर

और तेल के कई धब्बे वाले तकिये के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात किया उसका ठीक चित्र दे सकना संभव नहीं है। वह अठारह से अधिक की नहीं जान पड़ती थी दुर्बल और असहाय जैसी। सूखे ओठ वाले, साँवले पर रक्तहीनता से पीले मुख में आँखें ऐसे जल रही थीं जैसे तेल-हीन दीपक की बत्ती।

'और एक दिन याद आता है। चूल्हे पर चढ़ाया दूध उफना जा रहा था। विन्दा के नन्हे-नन्हे हाथों ने दूध की पतीली उतारी अवश्य, पर वह उसकी उँगलियों से छूट कर पैरों पर गिर पड़ी। खौलते दूध से जले पैरों के साथ दरवाजे पर खड़ी विन्दा का रोना देख मैं तो हतबुद्धि सी हो रही। पंडिताइन चाची से कहकर वह दवा क्यों नहीं मंगवा लेती। यह समझना मेरे लिये कठिन था। उस पर जब बिन्दा मेरा हाथ अपने जोर से धड़कते हुए हृदय से लगा कर कहीं छिपा देने की आवश्यकता बताने लगी, तब तो मेरे लिये सब कुछ रहस्यमय हो उठा।'

('अतीत के चल चित्र' पृष्ठ ६४-३६)

वर्तमान सामाजिक कुप्रणालियों तथा कुण्ठाओं पर इतना कटु, आघात कहीं-कहीं पर महादेवी जी ने किया है कि पाठक तिलमिला कर रह जाता है। यथार्थ की ठोस भूमि पर जब लेखनी चलती है तो उसमें अनुभव की गहराई होती है, आत्म-विश्वास की सक्रिय सजगता निवास करती है, उसमें एक टीस होती है, एक उत्पीड़न रहता है तथा साथ में रहती है उसके मिठास और एक चिरन्तनता साँस लेती नज़र आती है।

इसी सलज्ज और कर्तव्यनिष्ठ सबिया को लक्ष्य करके जब एक परिचित वकील पत्नी ने कहा'—"आप चोरों की औरतों को क्यों नौकर रख लेती हैं?" तब मेरा शीतल क्रोध उस जल के समान हो उठा जिसकी तरलता के साथ, मिट्टी ही नहीं पत्थर तक काट देने वाली धार भी रहती है। मुँह से अचानक निकल गया,—'यदि दूसरे के धन को किसी न किसी प्रकार अपना बना लेने का नाम

चोरी है तो मैं जानना चाहती हूँ कि हम में से कौन सम्पन्न महिला चोर पत्नी नहीं कही जा सकती।'

'एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाये बिना नहीं रहतीं।'

('अतीत के चलचित्र' पृष्ठ ५१, २२२)

निसंदेह मानव जीवन विभिन्न विभिन्न धाराओं के प्रवाहित हो रहा है जिसे देखने के हेतु अशेष चक्षुओं की आवश्यकता होती है। महादेवी जी ने अतीत की सुकोमल स्मृतियों को अपने जीवन के सरस विश्वास के धागे में पिरोया है। उनके जीवन अनेकों मोड़, उथल-पुथल, आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन देखे हैं तथा अपनी अथक साधना और चिरन्तन विश्वास के सहारे उन सब से अनुभव ग्रहण कर अपने जीवन की दार्शनिक पृष्ठ भूमि तैयार की है।

प्रत्येक महान कलाकार के जीवन की अपनी पृथक् दार्शनिक पृष्ठभूमि रहती है तथा उसके जीवन की स्वतंत्र मान्यताएँ होती हैं जिनके बनने में उसके अनेकों निजी अनुभवों, जीवन की विविध घटनाओं, घातों, प्रतिघातों का हाथ रहता है। अंग्रेजी के अमर कवि वर्डस्वर्थ (Wordsworth) ने अपनी प्रिलूड़ (Prelude) नामक रचना में उन छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन किया है जिन्होंने उनके जीवन को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया था तथा जिनका उनके व्यक्तित्व निर्माण में बहुत महत्व रहा है। मीरा के गीतों में भी उनके व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित बहुत सी बातों का उल्लेख दिया गया है। महादेवी जी के गीतों में तो केवल अनुभूति को ही स्थान प्राप्त हो सका है। पर 'स्मृति की रेखाएँ' तथा 'अतीत के चलचित्र' जिनमें से एक दो उदाहरण अभी ऊपर दिये गये हैं, में उन्होंने ऐसी घटनाओं का वर्णन अवश्य किया है जिन्होंने उनके व्यक्तित्व पर स्थायी प्रभाव छोड़ा

है। एक स्थान पर उन्होंने कहा भी है, "साहित्य मेरे सम्पूर्ण जीवन की साधना नहीं, यह स्वीकार करने में मुझे लज्जा नहीं।" अतः समाजिक क्षेत्र में भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया है। वर्षों तक नीरस, असाहित्यिक कार्यभार संभालने में संलग्न रहीं। 'चाँद' का सम्पादन भी बहुत वर्षों तक बड़ी कुशलता से किया तथा अध्यापन का कार्य भी, जो कि शुद्ध साहित्यिक कार्यों की कोटि में नहीं रखा जा सकता, चलता रहा। समय समय देश के आन्दोलनों में महादेवी जी ने अपना सक्रिय सहयोग दिया है। १९४२ के अन्दोलन में इन्होंने जलती हुई दोपहरी में गाँवों की गरम गरम धूल छानी है तथा घूम घूम कर उन स्त्री बच्चों को निरन्तर भोजन की सामग्री तथा कपड़ा पहुँचाया है जिनके आद-मियों को अंग्रेजी साम्राज्य ने सन ४२ के आन्दोलनों को दमन करने के लिए गिरफ्तार कर लिया था। सन् ४२ की ही बात नहीं, वरन् जब बँगाल में भयंकर आकाल पड़ा तो इन्होंने अकाल पीड़ितों के लिये कपड़े, भोजन और दवाइयाँ इकट्ठी कीं। बंग-दर्शक नामक पुस्तक का सम्पादन किया, जिसका सम्पूर्ण रुपया अकाल पीड़ितों के सहायता-कोष में दे दिया गया था। नोआखाली पीड़ितों के लिये इन्होंने हिन्दी के लेखकों से रुपया इकट्ठा किया और लेखक-निधि के नाम से हिन्दी लेखकों की सहानुभूति के रूप में वहाँ भेजा। पंजाबी शरणार्थी फंड तथा अन्य सार्वजनिक सहायता कोषों में आप सदैव कुछ न कुछ देती रहती हैं। नगर में अधिक रहने पर भी ग्रामों तथा वहाँ के निवासियों से आपको विशेष प्रेम है। अवकाश के क्षणों को आप अधिकतर ग्रामों में ही बितातीं हैं। संसार में महादेवी जी कठोर से कठोर यातना सहन कर लेती हैं पर उनसे दूसरों का दुख नहीं देखा जाता। वह अपने को सदैव 'नीर भरी बदली' सा चाहती हैं जिसके यहाँ से पीड़ा जनित-दीनता कभी निराश न लौट सके। सम्पूर्ण विश्व के आँसू ये अपनी दो आँखों में छुपा लेना चाहती हैं। करुणा और सहानु-

भूति जैसे इनके जीवन के दो प्रमुख धर्म बन गये हैं। इनकी करुणा में किसी भी प्रकार का भेद भाव नहीं जिस प्रकार की 'नीर भरी बदली' बरसने पर सबकी तृषा शांत कर देती है, वह पात्र अपात्र का ध्यान नहीं रखतीं। यही कारण है कि इन्हें ऋतुओं में वर्षा ऋतु सबसे अधिक प्रिय है। कदाचित् महादेवी जी ने वर्षा में अपने जीवन की निकटता, साम्य और अपनापन पाकर उसमें अपने मन की सखी-भावना का आरोप कर दिया है।

उनकी प्रतिभा पर उनकी माता का बहुत प्रभाव पड़ा। उनकी माता "साधनापूत, आस्तिक तथा भावुक थी" और पिता "कर्म निष्ठ, दार्शनिक प्राणी थे।" निश्चय ही इन दोनों प्रकार के संस्कारों का समावेश उनके व्यक्तित्व में हुआ है। माँ से प्राप्त सहज संवेदना, कुरुपता के आवरण को भेदकर आन्तरिक सौन्दर्य को परखने तथा उसे अपने हृदय की सम्पूर्ण सहानुभूति दे डालने का क्रम महादेवी जी के जीवन में सनातन रूप से चला आ रहा है। दीन तथा उपेक्षित प्राणी सहज ही उनके हृदय में प्रवेश कर लेते हैं। उनके नित्य प्रति के जीवन में उनका हृदय सहानुभूति का अक्षय कोष संभाले करुणा-स्थल खोजता फिरता है। स्वयं उन्होंने एक स्थल पर स्वीकार भी किया है—"मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था।" यही कारण है कि ग्रामीणों तथा उपेक्षितों की करुण-कहानी वे सहानुभूति तथा मन से सुनती हैं। इनमें उन्होंने एक ऐसा प्राणी पा लिया है जहाँ वे पूर्ण विश्वास के साथ अपने दुख सुखों की धरोहर रख सकते हैं। वास्तव में महादेवी जी का मन इतना विशाल है कि उसमें संसार भर की वेदना समा सकती है। करुणा, ममता तथा सहानुभूति का मिश्रित प्रवाह अबाधगति से उनके जीवन में सदैव बहता दीख पड़ता है। महादेवी जी में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति विशेष अनुराग है पर किसी भी प्रकार के अत्याचार इन्हें असह्य है। एक ही पथ पर चलते रहने से उनको विशेष मोह है। एक स्थान पर

वे लिखती हैं—"एक युग से अधिक समय की अवधि में मेरे पास एक ही परिचारक, एक ही ग्वाला, एक ही धोबी और एक ही तांगे वाला है। परिवर्तन का कारण मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ हो सकता है इसे न ये जानते हैं, न मैं। एक विद्वान का कथन है कि बिना पागलपन की अवस्था के कोई कवि नहीं हो सकता (No body can be a poet without a certain amount of insanity)। पर यह बात महादेवी जी के जीवन में चरितार्थ नहीं होती। उनके व्यवहार में कोई ऐसा स्थल नहीं मिलता जहां संयम का अभाव हो। अपने नित्य प्रति के व्यवहार में वे अत्यन्त सरल हृदया तथा उदार हैं। भावुक होते हुए भी वे सर्वदा, सर्वथा कर्मनिष्ठ हैं। महादेवी जी ने जीवन में सत्य के जिस रूप को स्वीकार किया है उसका धरातल बौद्धिक की अपेक्षा आत्मिक अधिक है। देवी जी का जीवन के प्रति आदि से अन्त तक सदैव एक सा दृष्टिकोण रहा है। भारतीय दर्शन के साथ साथ बौद्ध दर्शन का भी उनपर पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है परन्तु उन्होंने उसके अनीश्वरवाद को तनिक भी ग्रहण नहीं किया है। केवल संसार में व्याप्त करुणा तथा व्यथा से विशेष रूप से परिचय कराकर उनमें एक असीम करुणा तथा सहानुभूति भर दी है। परमात्मा से मिलने के लिए विकल आत्मा का आर्त्त-क्रन्दन उनके सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त है।

महात्मा बुद्ध, ईसामसीह, महात्मागाँधी और विश्व कवि रविन्द्र नाथ ठाकुर कदाचित् इनके आदर्श पुरुष रहे हैं और सरस्वती तथा श्रीकृष्ण इनके उपास्य देवता हैं। इनकी कलात्मक अभिरुचि बहुत ही उच्च कोटि की है। मैंने देखा तो कभी नहीं पर सुना है कि उनके ड्राइंग रूम में से यदि सोफे और कुर्सियाँ निकाल दी जायें तो वह एक सुन्दर कला मन्दिर-सा लगेगा। वहाँ सदैव ऋषियों के से आश्रम की शांति रहती है।

महादेवी जी ने यद्यपि गार्हस्थ्य जीवन स्वीकार नहीं किया

पर इसका यह अर्थ नहीं कि इनका कोई परिवार ही नहीं। उनका परिवार सीमित न होकर बहुत ही विशाल है और उसकी सीमाओं में सभी जातियों और सभी उम्र के स्त्री पुरुष ही नहीं आते वरन् फूल, वृक्ष तथा जीव जन्तु सभी आते हैं। इनकी सहानुभूति विश्वव्यापी हो गई है। वह एक पेड़ को उखाड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर इसलिए नहीं लगातीं हैं कि वह सूख न जाये। वह किसी फूल को इसलिए तोड़ना नहीं चहातीं कि वह सूख न जाये। वह किसी को पीड़ा देना नहीं चाहतीं और उनका मन किसी को भी पीड़ा की कहानी सुनकर डूब सा जाता है। महादेवी जी अपने परिवार के बच्चों के धार्मिक संस्कारों के अवसर पर खिलौने तथा मिठाइयाँ बाँटती हैं तथा उनमें यथायोग्य सहयोग देती हैं। महादेवी जी सीना-पिरोना, कातना बुनना, काढ़ना, भोजन इत्यादि बनाना सभी प्रकार के घरेलू कार्यों में सिद्ध हस्त हैं और ललित कलाओं में काव्य, संगीत और चित्र कला तीनों का वरदान इन्हें पूर्ण रूप से प्राप्त हैं। भाषाओं में इन्हें हिन्दी, उर्दू, संस्कृति, अंग्रेजी, गुजराती, बंगला, प्राकृत, पाली का अच्छा ज्ञान है। आजकल आप वेदों का अनुवाद काव्य में कर रही हैं। यदि उनकी काव्य-कला पर हिन्दी साहित्य को गर्व हो सकता है तो उनके चित्रों की भी 'निकोलिस रोरिक' जैसे विश्वविख्यात कलाकार ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। देवीजी की क्रिया भी लता और सृजनात्मकता केवल कार्य और चित्र-कला तक ही सीमित नहीं है प्रत्युत वह सक्रिय जीवन में भी देखने को मिलती है। जहाँ वह एक ओर स्वप्निल नभ में विचरने वाली सफल कवयित्री हैं, वहाँ वह इस धारा की समस्त पीड़ा को समेटती हुई, अपनी सहानुभूति से जग के आँसू पोंछती हुई दोनों हाथों से दान देती हुई दानेश्वरी, वरदायिनी, महादेवी भी हैं।

इनकी दान-शीलता की आदत से प्रायः सभी परिचित हैं। यही कारण है कि इनके पास कभी भी पैसा नहीं जुड़ पाया,

यद्यपि उसका अभाव इन्हें कभी नहीं हुआ। इन्होंने कितने ही बड़े कार्यों को हाथ लगाया पर धनाभाव के कारण इनका कार्य रुका हो, ऐसी बात सुनने में नहीं आई। रुपया जोड़ने की इनकी इच्छा ही नहीं। पिता जी से प्राप्त धन इन्होंने आस-पास के गाँवों में पाठशालाएँ खोलने में व्यय कर दिया और जो कुछ अध्ययन काल से अवशेष रहा उसे 'साहित्यकार-संसद' में लगा दिया। हिन्दी के साहित्यकारों की दशा सुधारने के हेतु इन्होंने अन्य साहित्यिकों के साथ मिलकर 'साहित्यकार संसद' संस्था की स्थापना की। इस संस्था का एक मात्र उद्देश्य साहित्यिकों को संगठित करना तथा असमर्थ साहित्यकारों को प्रोत्साहित करना तथा ऐसी सुविधाएँ जुटाना जिनके द्वारा वे उच्चकोटि के उत्तम साहित्य का सृजन कर सकें। 'महिला विद्यापीठ' जिसकी ये प्रधान अध्यापिका हैं, इनकी आदर्श शिक्षा संस्था है। अपने जीवन का बहुत कुछ अमूल्य समय इन्होंने भारतीय सांस्कृतिक सिद्धान्तों के आधार पर इसका निर्माण करने में लगाया है। 'महिला विद्यापीठ' और 'साहित्यकार संसद' दोनों पर ही इनका माँ जैसा स्नेह है।

कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये, महादेवी जी कहीं पर भी कवि सम्मेलनों के कविता पाठ करने तथा सभा-सोसाइटियों में बोलने नहीं जातीं। उनका विचार है कि—"भीड़ में व्यक्ति को समझा नहीं जाता।" भीड़ में इन्हें अपनी साधना नष्ट हो जाने का भी भय बना रहता है। बाह्य आडम्बरों तथा सम्मान पात्रों में इनकी रुचि नहीं है।

महादेवी जी के, जैसा कि ऊपर कह चुका हूँ, मैंने कभी दर्शन नहीं किए, किन्तु सुना है वे हँसती बहुत हैं, कभी कभी विषम परिस्थिति में भी। जीवन के प्रति दुखान्त दृष्टिकोण रखने वाली कवयित्री का यह रूप बहुतों को आश्चर्य में डाल देने को पर्याप्त

है। मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार कभी-कभी जीवन की विवशताएँ, असफलताएँ तथा असह्य वेदनाएँ मानसिक स्थिति को विपरीत उन्माद की अवस्था तक पहुँचा देती हैं। मानव मन कभी-कभी ऐसा देखा गया है, गहन दुखों से मुक्ति पाने के लिये, प्रमाद की अवस्था धारण कर लेता है। भावुक प्राणियों के साथ तो यह बात अधिक चरितार्थ होती है। मानव मन का सीमान्त क्या है, यह तो विवादास्पद है पर किसी भी शारीरिक अथवा मानसिक असम्बद्धता, असंगति अथवा विपर्यय के कारण मनुष्य का पराजितमन बाह्य संघर्षों से ऊब कर एक काल्पनिक मादकता का प्रश्रय लेने लगता है। यदि गहण निराशा मानव को अपने जीवन का अन्त कर देने को बाध्य कर देती है, तो वही निराशा कभी-कभी मनुष्य को फक्कड़पन की अवस्था में भी ले जाती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने बाह्य भूठें फक्कड़पन के आवरण द्वारा एक ओर तो अपनी निराशा से त्राण पाने का प्रयास करता है तथा दूसरी ओर वह भाग्य और संसार की क्रूरताओं से संघर्ष—निष्फल संघर्ष लेने का साहस करने का प्रयास करता है। अपनी ऊपरी हँसी द्वारा वह संसार को एक प्रकार का धोखा देता है; संसार की क्रूरताओं और अत्याचारों का उपहास उड़ाता प्रतीत होता है। यह एक प्रकार का लक्ष्यहीन लक्ष्य है जो उसे काल्पनिक सुख देता है। उसकी वेदना में जितनी करुण आवेग की प्रचुरता होगी उसी मात्रा में उसकी सर्वथा विपरीत प्रतिक्रिया हर्ष भी विचित्र और आवेगपूर्ण होगा। महादेवी जी की हंसी निराशा, पलायन, आवेग, अतृप्ति, असंतोष और आन्तरिक विवशता का परिणाम है जिसे अनंत संघर्षों से परे मुक्ति का मार्ग कहा जा सकता है। उनके रुदन की भाँति उनका हास्य भी संक्रामक है। असम्बद्ध बातों और विषम परिस्थितियों में मुक्त हास इसी संक्रमण का परिणाम होता है। पर एक बात उनकी हँसी में विशेष है और वह यह कि उसको संयम का अभाव अथवा रंच मात्र भी

पागल पन की अवस्था नहीं आने पाती। वह पूर्ण संगत दिखाई देती है।

जब चेतन-अचेतन स्थिति में हृदयस्थ भाव अथवा विचार एवम् आलम्बन एक हो जाते हैं तब हम किसी बात विशेष अथवा वस्तु विशेष को हास्यास्पद जानकर नहीं हँसते, वरन् यों ही अपने आप हँसते हैं। महादेवी जी अपनी हँसी को स्वकीय भाव से नहीं—मुक्त भाव से अपनाती हैं। उनके बाह्य सुख-दुख, विजय-पराजय, हानि-लाभ और प्रिय-अप्रिय प्रसंग उनकी आत्मिक दृढ़ता से टकराकर मुक्त हँसी में बिखर जाते हैं। उस हँसी में व्यंग नहीं रहता, वरन् स्वाभाविकता अधिक रहती है। हँसी का विश्लेषण करती हुई स्वयं एक स्थान पर महादेवी जी ने कहा है :—

"जब हमारी दृष्टि के अधिक प्रसार रहता है, तब हम किसी एक में उसे केन्द्रित नहीं कर सकते। प्रत्युत हमारी विहंगम दृष्टि एक ही क्षेत्र में एक साथ अनेक को स्पर्श कर आती है। इससे जिस सीमा तक हमारा ज्ञान बढ़ जाता है उसी सीमा तक हमारी दृष्टि के विषयों का महत्व घट जाता है। इसके विपरीत जब हमारी हँसी में मुक्त विस्तार नहीं होता, तब हम हवा के झकोरे के समान उसका सुखद स्पर्श सब तक नहीं पहुँचा सकते। उस स्थिति में हमारे हास-परिहास व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों को केन्द्र बनाकर सीमित हो जाते हैं। कलाकार की दृष्टि एक एक पर ठहर कर ही प्रत्येक को अपना परिचय देती है और उसकी हँसी सबको एक साथ स्पर्श करके ही आत्मीयता स्वीकार करती है। इस परिचय और आत्मीयता के अभाव में जीवन का यह आदान-प्रदान सम्भव नहीं होता, जिसकी साहित्य और कला में पग पग पर आवश्यकता रहती है।"

महादेवी जी के सम्बन्ध में एक दो बातें ऐसी हैं जिन्हें जान कर सब ही को आश्चर्य होता है।

प्रथम तो यह कि वे अपने सम्बन्ध में दूसरों की विचार-धारा जानने के प्रति उदासीन रहती हैं। आये दिन महादेवी जी के ऊपर पत्र पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित होते रहते हैं जिनकी प्रतियाँ इनके पास भेज ही दी जाती हैं। उनमें से वे सब कुछ पढ़ लेती हैं पर अपने ऊपर सामग्री को यह यूँही छोड़ देती हैं। ऐसे संसार में वहुत कम प्राणी होंगे जो दूसरों की धारणा अपने बारे में जानने को उत्सुक न रहते होंगे। महादेवी जी ऐसी ही हैं।

दूसरी बात और भी आश्चर्यजनक है। गाँधी जी की भाँति महादेवी जी भी कभी दर्पण नहीं देखतीं।

यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि इनके यहाँ दर्पण नहीं मिलेगा।

महादेवी जी काठ के एक कठोर तख्ते पर सोती हैं और बहुत ही कम सोती हैं। इनके अधिकांश साहित्य का सृजन भी रजनी के द्वितीय याम में ही हुआ है। इस प्रकार ये साहित्य-साधिका यथार्थ रूप में तपस्विनी हैं। महादेवी जी के व्यक्तित्व में जहाँ इस बात का आभास होता है कि इन्होंने सभी महापुरुषों की भाँति अपने को छोटा मानकर ऊँचा उठने के लिए निरन्तर प्रयत्न किया है, वहाँ इनकी सचाई और ईमानदारी का रंग सदैव अपनी सात्विकता को स्थिर रखता है। महादेवी के व्यक्तित्व की छाप उनके समकालीन साहित्यकारों ने भी स्वीकार की है। राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने एक बार 'साहित्यकार संसद' में कहा था—"मेरी प्रयाग-यात्रा केवल संगम स्नान से पूरी नहीं होती, उसको सर्वथा सार्थक बनाने के लिए मुझे सरस्वती (महादेवी) के दर्शनों के लिए प्रयाग महिला विद्यापीठ जाना पड़ता है। संगम में कुछ फूल-अक्षत भी चढ़ना पड़ता है, पर सरस्वती के मन्दिर में कुछ प्रसाद मिलता है। संसद हिन्दी के लिए उन्हीं का प्रसाद है।" हिन्दी के युग प्रवर्तक महाकवि निराला ने भी एक स्थल पर महादेवी जी के व्यक्तित्व पर अर्घ्य चढ़ाते हुए लिखा है—

"हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा पाणी।
स्फूर्ति चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी॥"

इस प्रकार उनमें दिव्यता की झलक है; नारी की चहुँमुखी प्रतिभा निहित है। उनके यत्र तत्र चित्रों के आधार पर ही उनकी एक सौम्य मूर्ति मेरे मन पर अंकित हो गई है जिसके काल्पनिक दर्शनों मात्र से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे मन और प्राणों ने आध्यात्मिक अवगाहन कर लिया है, आपको भी ऐसा आभास होगा अथवा नहीं, कह नहीं सकता?

———

अध्याय २

महादेवी जी की कविता

महादेवी वर्मा ने वेदना को अपने काव्य का मूल तत्त्व रखा है। वेदना दुख-पूर्ण अवश्य है परन्तु प्रत्येक स्थिति में वह दुख-जनक नहीं होती। काव्य में जीवन की वही अनुभूति अभिव्यक्त होती है जो कवि को अतिप्रिय लगती है। वेदना भी प्रिय होने पर काव्यांग बन जाती है। कवयित्री ने वेदना को काव्य का विषय बनाकर उसके द्वारा सुखवाद का उल्लास प्राप्त करने का सतत् प्रयत्न किया है। महादेवी वर्मा को वेदना प्रिय है, लेकिन उसकी प्रियता के लिए उनके पास ऐसा कोई कारण नहीं, जो स्पष्ट हो।

महादेवी जी ने अपनी वेदना के संबंध में जिन कारणों का उल्लेख किया है, वे पर्याप्त नहीं प्रतीत होते हैं। उन्हें जीवन में बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिलने की प्रतिक्रिया से वेदना प्रिय नहीं मालूम हो सकती। प्रतिक्रिया हृदय की इच्छित वृत्ति नहीं होती और काव्य में स्वाभाविक वृत्तियों के अभाव में रमणीय अभिव्यक्ति सम्भव ही नहीं हो सकती। यदि देवी जी की सम्पूर्ण काव्य-रचनाएँ, जैसा कि उन्होंने लिखा है, अतिशय दुलार की प्रतिक्रिया के कारण ही वेदना-बहुल हैं, तो उनका मर्म किसी कवयित्री का मर्म नहीं हो सकता। किन्तु बात ऐसी नहीं है। महादेवी जी एक सफल कवयित्री हैं और उनके पास कवि सुलभ एक संवेदना-पूर्ण हृदय भी है।

उदारता, कवि प्रकृति है। कवि इसी उदारता और सहानुभूति के बल पर जगत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। जिस करुणापूर्ण दुःखवाद के ऊपर बौद्ध दर्शन की प्रतिष्ठा हुई, उसके संकेत यत्र तत्र महादेवी जी के काव्य में हो जाते हैं पर यह स्पष्ट है कि जिस अगाध करुणा और निराशा से प्रेरित अनात्मवादी बौद्ध दर्शन पञ्च स्कन्ध को ही आत्मसंज्ञक मानने को बाध्य हुआ, वह उनकी रचनाओं में कहीं भी लक्षित नहीं होता।

रहस्यवाद के तथ्य को लेकर काव्य रचना करने वाली महादेवी वर्मा एक मुख्य कवयित्री हैं। महादेवी जी के जीवन की शुष्कता ने उन्हें लोक विमुख वैराग्य देकर लोकोत्तर आलम्बन की ओर प्रेरित किया है जिसके अनुसंधान में कभी भी तृप्ति नहीं। वे प्राप्ति और तृप्ति से दूर रहने वाली कवयित्री हैं। साधिका कवयित्री की भाँति वे अपनी आँखें सदैव प्यासी ही रखना चाहती हैं :—

'चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन;
बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन!

पूर्णतया यही भरने को
ढुल कर देना सूने घन;
सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जाये मन।

चिर ध्येय यही जलने का
ठराढ़ी; विभूति बन जाना;
है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना!

मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का करण भर;
रहने दो प्यासी आँखें
भरतीं आँसू के सागर ॥

कवयित्री जी के काव्य की प्रेरणा 'दीपशिखा' की इन दो पंक्तियों में मुखरित हो उठी है :—

"मैं कण-कण में ढाल रही अलि, आँसू के मिस प्यार किसी का,
मैं पलकों में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का।"

सारी कविताओं का Imprbe इसी में दीख पड़ता है। इसी बात को श्रीमती शचीरानी गुर्ट् ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है "यौवन के तूफ़ानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन की रक्ताभ-पट पर स्नेह ज्योत्सना छिटकी पड़ रही थी, तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएं सी अंकित कर गईं। आत्म संयम का व्रत लिए हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकरा कर पीड़ा को गले लगाया, वह कालान्तर में आन्तरिक शीलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उसके हठीले मन का उससे लगाव न छूटा। और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानो हठ पकड़ बैठीं।"

श्री नगेन्द्र जी 'फ्रायड' (Freud) के अनुसार महादेवी की प्रेरणा काम सूचक मानते हैं।

महादेवी जी ने बहुत पहले गाया था :—

"विसर्जन ही है कर्णधार ! वही पहुँचा देगा उस पार।"

कवयित्री के इस विसर्जन में उल्लास नहीं, वेदना है; पर अपनी अभाव-जनित इस वेदना को छुपाने का इन्होंने सतत् प्रयत्न किया है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका में वे लिखती हैं—"हृदय

में तो निराशा के लिए कोई स्पर्श ही नहीं पातीं, केवल एक गंभीर करुणा की छाया देखती हूँ।" निराशा सम्भव है इसलिए नहीं है कि देवी जी ने अपने अभाव से समझौता कर लिया है। महादेवी को दुःख का वह रूप प्रिय है जो मनुष्य के 'संवेदनशील हृदय को सारे संसार के एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है।' उन्होंने स्वयं अपने जीवन को पीड़ा से सिक्त माना है :—

"चिन्ता क्या है हे निर्मम,
बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही,
पीड़ा का राज्य अँधेरा।"

ब्राउनिंग (Browning) के समान वे भी अतृप्ति को ही जीवन मानती हैं। इसलिए उनके काव्य में विरह और मिलन की समानान्तर निकटता दीखती है। सम्भवतः महादेवी जी को पीड़ा इस लिए प्रिय है, करुणा इस लिए अच्छी लगती है कि इससे जीवन की साधना पूरी होती है। यही साधना आनन्द की चरमावस्था तक ले जाने का भी साधन है। तभी तो वे अमरों के लोक को भी ठुकरा देती हैं, और अपने मिटने के अधिकार को सुरक्षित रखना चाहती हैं—

"ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं—
जिसने जाना मिटने का स्वाद,
क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार,
रहने दो हे देव !! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।"

पीड़ा और प्रियतम इस प्रकार घुलमिल गये हैं कि दोनों में किसी प्रकार का अन्तर ही नहीं रह जाता है। इसी से तो वे पीड़ा को सर्वस्व मान कर अपना और प्रियतम का मिलन नहीं चाहतीं, विरह में ही उन्हें सुख प्राप्त होता है—'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ'। उन्हें एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संसार संचित दिखाई देता है, एक लघु क्षण निर्वाण के सौ-सौ वरदान देने वाला जान पड़ता है कि वेदना में उन्होंने कोई अपूर्व निधि प्राप्त कर ली है—

"एक करुण अभाव में चिर-तृप्ति का संसार संचित
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत-शत,
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में,
कौन तुम मेरे हृदय में ?

नीहार' में उनका कथन है कि हे नभ की दीपावलियो ! तुम पल भर के लिए बुझ जाना क्योंकि करुणामय को तम के परदे में आना भाता है। लेकिन 'नीरजा' में प्रियतम के पथ में आलोक करने के लिए वे अपनी आत्मा को दीप की भाँति निरन्तर प्रज्वलित रखना चाहती हैं—

'मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग, प्रति दिन, प्रति क्षण, प्रति पल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।'

'सांध्यगीत' में यही भावना सबल होती जाती है, और उन्हें विरह की घड़ियाँ मधुर मधु की यामिनी-सी जान पड़ती हैं— 'विरह की घड़ियाँ हुई अलि, मधुर मधु की यामिनी सी'। 'दीपशिखा' में तो साधना के प्रारम्भ से लेकर सिद्धि प्राप्त करने तक की सभी स्थितियों के दर्शन हो जाते हैं। वे स्वयं लिखती हैं—

"दीप सी मैं—
आ रही अविराम मिट मिट स्वजन ओर समीप-सी मैं।"

महादेवी जी की कविता के अब तक निम्नलिखित संग्रह निकल चुके हैं:—'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा'। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' तथा 'सान्धय गीत' की १८५ कविताएँ एक ही संग्रह 'यामा' में संकलित की गई हैं। इस प्रकार आज 'यामा' और 'दीपशिखा' दो बृहद् संग्रह उनके काव्य के उपलब्ध हैं। इन काव्य ग्रन्थों में संग्रहीत गीतों से महादेवी जी के आध्यात्मिक चिंतन और रहस्यमयी भावना का पता चलता है। परमात्मा से मिलने के लिए विकल आत्मा का क्रन्दन उनके सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त है। फिर भी दोनों की अभिन्नता को भारतीय अद्वैतवाद के अनुसार बड़े ही सुन्दर एवं मार्मिक ढंग से प्रमाणित किया है:—

"तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या !
चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर सङ्गम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !,' (नीरजा)

आत्मा के महत्व को उन्होंने सदैव स्वीकार किया है। उनकी अमरता को बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है:—

"अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास।" —'रश्मि'

पर आत्मा का अमरत्व तभी तक कायम रहता है, जब तक वह परमात्मा में लीन होकर मुक्ति लाभ नहीं कर लेती। वे कहती हैं—

'जब असीम से हो जावेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तब देव ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल !' 'नीहार'

निर्वाण हो जाने के पश्चात् आत्मा परमात्मा नामक दो तत्व कहाँ रह जाते हैं ? संसार में पदार्थों का नहीं, उनके रूप का नाश होता है।

'स्निग्ध अपना जीवन का क्षार
दीप करता आलोक प्रसार
जला कर मृत पिंडों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण
सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान।'

मृत्यु को उन्होंने जीवन का 'चरम विकास कहा है उनका विश्वास है कि यदि जीवन शाश्वत हो जाय तो वह ह्रासोन्मुख हो जाता है। अतएव विकास के लिए मृत्यु का होना अनिवार्य है। मृत्यु से जीवन का सर्वदा लोप नहीं हो जाता। उसकी एक स्थूल शृंखला मात्र विच्छिन्न हो जाती है। अध्यात्म उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान है। आत्मिक सुख ही उनके जीवन में मूल्य रखता है। उन्होंने इतनी अभिव्यक्ति अर्जित कर ली है कि उनके लिए सुख-दुख का अन्तर ही मिट जाता है और वे कह उठतीं हैं:—

'सुन रही हूँ एक ही झंकार
जीवन में प्रलय में।'

मुक्ति की उन्होंने कभी भी कामना नहीं की। सदैव निराश जीवन ही उन्हें स्वीकार है। पर उस व्यथा में भी उन्हें एक विचित्र मादकता मिलती है। 'रश्मि' में एक गीत है:—

"दिया क्यों जीवन का वरदान !
इसमें है झंझा का शैशव,
अनुरंजित कलियों का वैभव—
मलय पवन इसमें जाता भर,
मृदुल लहरों के गान।"

सुख-दुख दोनों ही जीवन को जीने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हैं। महादेवी जी को विरह का जीवन इतना प्रिय है कि वे इसे छोड़ना नहीं चाहतीं क्योंकि विरह की अवस्था में उनके मन में ऐसे सुखद काल्पनिक प्रिय के चित्र बन गये हैं कि उन्हें डर है कि कहीं मिलन से वे नष्ट न हो जावें। फिर भी प्रिय मिलन के लिए उनका मन सदैव विकल रहता है। विरह की मदिरा का ऐसा मादक असर उन पर छा गया है कि वे उसे छोड़ना नहीं चाहतीं:—

"प्रिय से कम मादक पीर नहीं।"

सम्पूर्ण विश्व उसी मादकता में 'सिया राम मय सब जग जानी' की भाँति झूमता हुआ प्रतीत होता है। सर्वत्र उन्हें अपनी ही प्रतिच्छाया दीख पड़ती है:—

"घुल गई इन आँसुओं में देव जाने कौन हाला,
झूमता है विश्व पी-पी घूमती नक्षत्र माला।"

शुक्ल जी ने महादेवी जी की इस पीड़ा के प्रति अतिशय अनुराग पर व्यंग करते हुए इन पंक्तियों को उद्धृत किया है और कहा है कि पीड़ा का चस्का तो इतना है कि—

"तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा
तुम में ढूँढ़ूंगी पीड़ा।"

महादेवी की पीड़ा से विशेष अनुराग है, ऐसी पीड़ा जिसमें वे आत्मविभोर हो झूम उठती हैं। "अब न लौटाने को कहो अभिशाप की वह पीर" में इसी धारणा की पुष्टि होती है। पीड़ा की मधुरता का परिचय जैसा महादेवी जी ने कराया है वैसा किसी अन्य कवि ने नहीं:—

विरह का क्षण मिलन का पल
मधुर जैसे दो पलक चल।"

—'दीपशिखा'

देवी जी की कविता भावना प्रधान और कल्पना प्रधान हैं। कोई निर्मम बुद्धिवाद इस काव्य की पृष्ठभूमि नहीं। कुछ खोजते हुए का भाव निरन्तर इस कविता में है। चिर-विरह और निराशा ही इस काव्य के प्राण और आधार हैं, किन्तु चिर-मिलन का भाव भी अनायास ही गीत में पुलक उठता है:—

"तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय क्या
रोम रोम में नन्दन पुलकित;
साँस साँस में जीवन शत् शत्;
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित;
मुझ में नित बनते मिटते प्रिय।
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?"

'रश्मि' में आप कहती हैं:—

"मैं तुमसे हूँ एक, एक है
जैसे रश्मि प्रकाश,
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित विलास।"

इस भावना को हम महादेवी का रहस्यवाद कह सकते हैं। साधक की चिर-खोज से निरन्तर यह काव्य आप्लावित है। इस अनन्य साधना के बाद कवयित्री ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मोम के सदृश गलगल कर ही साधक जीवन सार्थक करता है और अपने प्रिय से मिलता है और मर मिटने में ही चिर-मिलन की निद्रा है:—

"तुम में हो चल छाया का लय;
सीमित की असीम में चिर लयः
एक हार में हों शत-शत जय;
सजनि ! विश्व का कण कण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी।"

'अलौकि प्रिय' के साथ प्रेम की यथा-सम्भव समस्त क्रीड़ाओं का प्रदर्शन महादेवी की रचनाओं में बिखरा हुआ है। उसका कथन है कि उसने सृष्टि के भीतर ही अपने प्रिय को पहचान लिया है। तभी तो वे आश्वस्त हो कहती हैं: -

"जो न प्रिय पहचानती
कल्प युग व्यापी विरह को
एक सिहरन में सम्हाले
शून्यता भर तरल मोती
से मधुर सुध दीप वाले
क्यों किसी के आगमन के
शकुन स्पंदन मैं मनाती ?"

महादेवी करुण रस प्रधान कवयित्री हैं। प्रणय का जो विशद स्वरूप उन्होंने प्रस्तुत किया है वह वियोग (विप्रलंभ) शृङ्गार के अन्तर्गत आ जाता है। जैसी दशा गोपियों की श्रीकृष्ण के वियोग में हुई थी तथा जिसका विशद वर्णन सूर काव्य में हमें मिलता है वैसी ही दशा अपने प्रियतम के वियोग में देवी जी अनुभव करती हैं। सदैव उनसे मिलने की कल्पना बनी रहती है—"जो तुम आते एक बार"। उनका प्रिय निर्मम भले ही हो पर वे तो उन पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर चुकी हैं। वे तो केवल प्रणाय जानती हैं, प्रतिदान की कामना नहीं। इसी प्रणाय के बल पर वे रुष्ट होकर पूछती हैं कि क्या तुम्हीं एक सर्वशक्तिमान हो जो इन क्षुद्र प्राणों में रहना नहीं चाहते ? उनके प्रणाय के सम्बन्ध में दूसरी विशेषता है उनका अहम्-भाव, जो स्वाभाविक स्वाभिमान की भावना के अन्तर्गत देखा जा सकता है। सच्चा प्रेम क्षणिक नहीं होता, उसमें युगों की साधना रहती है जो उसे शाश्वत बनाये रखने में योग देती है। जन्म जन्मान्तर तक आत्मा-परमात्मा—

अपने प्रिय से मिलने को आतुर रहती है। निम्नांकित पंक्तियों में पूर्वानुराग का आभास मिलता है—

"जाने किस बीते जीवन का संदेश दे मंद समीरण,
छू देता अपने पंखों से मुर्झाये फूलों का लोचन।"

महादेवी जी के गीतों में वस्तु जगत की अपेक्षा अध्यात्म ही प्रतिष्ठित हुआ है। भारतीय दर्शन महादेवी जी के काव्य में जीवन दर्शन के रूप में साकार हो उठा है। वे अपने प्रिय को पा लेने में जिस साधना, तपस्या तथा त्याग की भावना से ओत-प्रोत दीख पड़ती है उसका परिचय उनके गीतों में हमें पूर्णतः मिल जाता है। इस प्रकार महादेवी जी एक सफल और सुष्ठ गीतकार के रूप में अपनी मनोदशा को लिए हुए हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं। इन गीतों में उनके हृदय का हर्ष विषाद सहज रूप में व्यक्त हो उठा है। महादेवी जी लिखती हैं 'गीत का चिरन्तन विषय रागात्मिका वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख दुखात्मक अनुभूति से ही रहेगा। साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।" प्रायः ऐसा देखा जाता है कि गीत लिखते समय गीतकार कला-पक्ष को भूल जाता है। और केवल अन्तर्जगत की अनुभूति में ही लीन रहता है जैसा कि 'मीरा' में देखने को मिलता है। पर जब कलाकार कलापक्ष को भी ठीक-ठीक निभा ले जाता है तब तो बात ही अनोखी हो जाती है। 'सूर' गीतकार के साथ-साथ कला-कार भी है। इसी प्रकार महादेवीजी भी जहाँ एक सफल गीतकार हैं वहाँ एक सफल कलाकार भी। अपने भावों की अभिव्यक्ति मात्र से ही उन्हें सन्तोष नहीं है, दूसरों के हृदय को भी ठीक उसी प्रकार स्पर्श करने में भी वे सचेष्ट हैं। वे इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं कि सत्य के निरूपण के साथ-साथ सौन्दर्य निरूपण भी उतना ही आवश्यक है। वे अपनी अनुभूति के प्रति सच्ची हैं तथा उसके स्तर

से कभी नीचे नहीं उतरतीं। इसी लिए उनके गीत संक्षिप्त हैं, जैसा कि उन्हें होना चाहिये। मीरा की भाँति वे तो सगुण गायिका नहीं जो आराध्य के रूप रंग में कुछ क्षण के लिए अपने को भूल जाए, फिर भी अपनी करुण रागिनी गा कर वे अपने प्रिय को अपनी ओर खींचना चाहती हैं:—

इस जादूगरनी वीणा पर
गा लेने दो क्षणभर गायक!
पल भर ही गाया चातक ने
रोम रोम में प्यास प्यास भर
काँप उठा आकुल सा अग जग
सिहर उठा तारामय अम्बर
भर आया घन का उर गायक!
गा लेने दे क्षण भर गायक.

संस्कृत के कवि जयदेव तथा मैथिल कोकिल विद्यापति ठाकुर के गीतों में यद्यपि आध्यात्म को लाया गया है फिर भी लौकिक-स्तर ही विशेष रूप से रखा गया है। पर कबीर के आध्यात्म में लौकिक श्रृङ्गार की गन्ध तक नहीं है। आत्मा रूपी दुलहिन परमात्मा रूपी दूल्हा के मिलन के लिए सनातन रूप से व्याकुल रहती है। महादेवी जी भी कबीर की भाँति निर्गुण गायिका हैं। अपने आराध्य के प्रति उनका प्रणाय निवेदन माधुर्य भाव को लेकर हुआ है। महादेवी अपने प्रियतम से समता के धरातल पर ही मिलन करना चाहती हैं। उनमें मनुजोचित सभी गुण विद्यमान हैं। उनके मानस में स्वाभाविक प्रेम अपने प्रिय के लिए सदैव हिलोरें मारता है। कहना उचित होगा कि महाकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर रहस्य गीतों में सर्व श्रेष्ठ माने जाते हैं। उनका हिन्दी कवियों पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। आत्मा परमात्मा का स्वाभाविक सम्बन्ध

उनके गीतों में परिलक्षित होता है। उनकी आत्मा ने स्वच्छन्द रूप से जैसा चाहा वैसा ही प्रिय से सम्बन्ध स्थापित किया है। महादेवी जी ने यद्यपि इस सम्बन्ध को किसी विशेष रूप में नहीं उतारा है फिर भी प्रेमी प्रेमिका के रूप में ही वह व्यक्त हुआ है। गीतों की पृष्ठभूमि भाव-जगत की अभिव्यक्ति ही ठहरती है अथवा इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि अन्तर्जगत की अभिव्यक्ति जब संगीतमय तथा मधुर हो उठती है तब गीति-काव्य की सृष्टि होती है। महादेवी जी की भावधारा में दो प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं—रहस्यवाद तथा छायावाद। दोनों ही नाम हिन्दी काव्य जगत की दो विशेष धाराओं के परिचायक हैं। प्रथम हम उनकी रहस्य साधना का विवेचन करते हैं—

रहस्यवाद एक भ्रामक शब्द हैं जो अपने नाम के अनुसार साहित्य के क्षेत्र में भी बहुत बड़ा जाल फैलाये हुए है जिसमें काव्य की अपेक्षा उसकी दार्शनिकता में उलझ जाना हमारे लिये स्वाभाविक है। अतः हमें उसकी विवेचना करते समय यह देख लेना चाहिए कि कहाँ तक यह काव्य का अंग बन सका। प्रसिद्ध विद्वान तथा समालोचक स्पर्जियन (Spurgeon) के अनुसार "रहस्यवाद एक दार्शनिक सिद्धान्त न होकर एक स्थिति विशेष या मनोदशा है।" वह एक प्रकार का वातावरण है, विचार शैली नहीं। (Mysticismis, in truth, a temper nather than a doctrine, an atmosphere rather than a system of philosophy) अद्वैतवाद ने जिस रहस्य-साधना को जन्म दिया तथा जो कबीर जैसे निर्गुणवादी कवि की वाणी में प्रस्फुटित हुई उसका स्तर प्रायः दार्शनिक है, काव्यात्मक नहीं। 'रहस्यद्रष्टा' शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्ति के लिए किया जाता है जो किसी ऐसी परोक्ष सत्ता का साक्षात्कार करना चाहता है जो बुद्धिगम्य नहीं। यूनान से यह शब्द उन व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त होता था जो ईश्वर सम्बन्धी ज्ञानोपार्जन के लिये अपना मुँह बन्द कर लेते

थे। ऐसा करने से उनकी कार्य सिद्धि में सहायता मिलती है ऐसा उनका विश्वास था। पर इसका मूल वेदों और उपनिषदों में मिलता है, जहाँ माया को लेकर ईश्वर और मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। प्राणी को ईश्वर का अंग माना गया है जिसको माया ने विमुख कर रखा है, जैसे 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी"—(तुलसी)। समस्त जीवों में एक ऐसा जीव है जो अनन्त है, शाश्वत् है तथा जो सब को एक सूत्र में बाँधे हुए है। महादेवी जी ने भी इसी तथ्य को प्रस्तुत किया है—

"रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घर सा वह आता।
इस निदाघ के मानस में करुणा का स्रोत बहा जाता॥
उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का।
एक सूत्र सबके बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में।
करुण काव्य वह लिख जाता।"

—'रश्मि'

इस व्यापक अनन्त सत्ता में एक ऐसा आकर्षण है जो प्राणी को सदैव अपनी ओर खींचता है। मनुष्य अपूर्ण है। वह सदैव उच्चादर्श की पृष्ठभूमि में अपनी त्रुटियों के प्रति सचेष्टा रहता है। कभी-कभी उसी आदर्श की प्राप्ति के लिए आतुर हो उठता है। ससीम असीम में अपने को लीन करना चाहता है। यह प्रकृति कई रूपों में दिखाई पड़ती है। आराध्य-आराधक, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका आदि भिन्न-भिन्न सम्बन्धों के रूप में प्रकट हुआ है। प्रायः स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के रूप में यह सम्बंध अधिक दृष्टिगोचर होता है। महादेवी जी ने इस तथ्य को इस प्रकार रखा है—'जो सीमित है वह असीम में अपनी मुक्ति चाहता है। पर इस मुक्ति को पाने के लिए उसे अपनी सीमा का समर्पण करना ही होगा। समर्पण के भाव ने ही आत्मा को नारी की

स्थिति दे डाली। सामाजिक व्यवस्था के कारण नारी अपना कुलगोत्र आदि का परिचय छोड़कर पति को स्वीकार करती है और स्वभाव के कारण उसके निकट अपने भावों को पूर्णतः समर्पित कर उस पर अधिकार पाती है। अतः नारी के रूपक से सीमाबद्ध आत्मा का असीम में लय होकर असीम हो जाना सहज ही समझा जा सकता है।' कबीर ने अपने को 'राम की बहुरिया' कहा है। सूफीमत में स्थिति पूर्णतः विपरीत वहाँ प्रेमी, प्रेमिका से मिलने के लिए उत्सुक दीख पड़ता है, अतः आत्मा प्रेमी है और परमात्मा प्रेमिका (माशूक) है। जायसी के 'पद्मावत' में रत्नसेन पद्मावती को प्राप्त करने के लिए विकल है। अंग्रेजी कवि रोजेट (Rossetty) ने भी स्त्री के सौन्दर्य में अपने हृदय की प्यास को तृप्त करना चाहा है। पाश्चात्य रहस्यवादी कवि पैटमोर (Patmore) ने भी आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध को स्त्री पुरुष के सम्बन्ध के रूप में देखा है। दूसरे 'रहस्यवादी-काव्य' आदर्शवादी होगा। रहस्य द्रष्टा को अपने आराध्य से साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि वह साधारण प्राणी के स्तर से ऊँचा उठे तथा अपने आराध्य के गुणों को प्राप्त करने का उचित प्रयास करे। रहस्यवाद की एक और भी महत्वपूर्ण विशेषता है और वह यह कि रहस्यद्रष्टा एक अपूर्व सुख का अनुभव करता है। उसमें नैराश्य भावना लेश मात्र भी नहीं रहती। श्री रायकृष्णदास जी लिखते हैं—"श्रीमती महादेवी वर्मा हिन्दी कविता के इस वर्तमान युग की वेदना प्रधान कवयित्री हैं। उनकी काव्य वेदना आध्यात्मिक है। कवि की आत्मा मानो इस विश्व में प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है। मीरा ने जिस प्रकार उस परम पुरुष कीउपासना सगुण रूप में की थी, उसी प्रकार महादेवी जी ने अपनी भावनाओं में उसकी आराधना निर्गुण रूप में ही है।" अपने हृदय में मधुर वेदना का राग संजोये वे अपने परोक्ष प्रियतम से पूछती हैं:—

कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर आता अपरिचित ?

—'नीरजा'

कवि की सफलता उसी संवेदना को हमारे भीतर जगाने में है जिसे वह स्वयं अपने अन्तराल में अनुभव करता है। देवी जी के रहस्य गीतों की विशेषता इसी में है कि उनके उपास्य देव हमारे अधिक समीप हैं। उनकी आराधना ऐसे प्रियतम के लिए है जो निस्सीम तथा अनन्त होते हुए भी अनुसरण करने योग्य हैं तथा प्राणों में बाँधा जा सकता है। यथा—

अनुसरण विश्वास मेरे
कर रहे किस का निरन्तर ?
चूमने पद चिन्ह किसके
लौटते वे श्वांस फिर फिर ?
कौन बंदी कर मुझे अब
बंध गया अपनी विजय में" 'नीरजा'

वास्तव में परोक्ष सत्ता तो कण कण में विद्यमान है। उसे अपने से अन्यत्र ढूँढ़ना निरर्थक है। वे कहती हैं—

"तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय क्या ?"

प्रियतम तो उनके रोम रोम में व्याप्त, फिर उसे कहीं और ढूढ़ना मूर्खता ही है। सरल प्रतीक के द्वारा कबीर ने उस विराट सत्य की कल्पना सुगम करदी जो अन्यथा दुर्बोध थी। ईश्वर की सत्ता सर्वत्र विराजमान है। वह हमारे इतना निकट है जितनी जल में पड़ी 'मीन' के लिए 'जल'। 'रश्मि' का एक गीत देखिए—

"चुभते ही तेरा अरुण बाण
बहते कण कण से फूट फूट
मधु के निर्झर से सजल गान
इन कनक रश्मिओं में अथाह
लेता हिलोर तम सिन्धु जाग,
बुद बुद से बह चलते अपार
उसमें विहगों के मधुर राग।"

रहस्यवादी कवि ब्लेक (Blake) ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है—

"To see a world in a agrain of sand
And a Heaven in a wild flower
Holed infinity in the palm of your hand
And Eternity in an hour"

रहस्यवादी विस्तृत संसार को सिकता के एक कण में देख लेता है। जिस व्यापक सत्य की खोज कवि ब्लेक ने बुद्धि द्वारा की उसी को महादेवी जी ने अपनी अनुभूति द्वारा और भी स्वाभाविक बना दिया।

तुम्हें बाँध पाती सपनों में!
तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती,
उस छोटे क्षण अपने में।"

कबीर ने विरह पीर की मादकता तथा मिलन सुख दोनों का अनुभव किया था। 'जायसी' का प्रेमाख्यानक-काव्य भी ऐसा ही विरह और मिलन दोनों अवस्थाओं के सुख से ओत-प्रोत है। महादेवी जी, जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है, में विरह की अवस्था सदैव बनी रहती है, फिर भी वे एक असीम सुख का अनुभव

करती हैं। विरहिणी होते हुए भी 'अमर सुहाग भरी' नारी के सुख का अनुभव वे कर लेती हैं—

"सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी ।
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी ॥"

उनके लिये तो 'प्रिय से कम मादक पीर नहीं हैं।' महादेवी के काव्य में इस प्रकार अनेक रूपता में एक रूपता के दर्शन होते हैं। परोक्षसत्ता सर्वत्र उनके काव्य में व्याप्त है। इसी प्रकार अंग्रेजी के रहस्य द्रष्टा कवि ब्राउनिंग (Browning) का भी विश्वास था कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है।

"God is seen
In the star, in the stone, in the flesh, in
the soul and in the cloud."

महादेवी जी के रहस्य-गीतों में सुख-दुख, आशा-निराशा, मिलन-विरह का जैसा स्वाभाविक तथा अनुभूति पूर्ण सामंजस्य हो सका है वैसा अन्यत्र नहीं :—

"पाने में तमको खोऊँ,
खोने में समझूँ पाना।
यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर-तृष्णा हो मिट जाना।"

ब्राउनिंग भी कहते हैं :—

"Type needs anti-type."

आधुनिक युग में हिन्दी के विशुद्ध रहस्यवादी कवियों में महादेवी के पश्चात् श्री डा० रामकुमार वर्मा का ही नाम लिया जा सकता है। विश्वात्मा के प्रति आत्म समर्पण उनका मुख्य विषय है। पर महादेवी जी के गीत सभी रहस्य तत्वों को लेकर झंकृत हो उठे हैं। वे एक उच्च कोटि की रहस्य साधिका हैं जिनका

संयम पल भर को भी नहीं टूटता तथा साथ ही साथ एक उच्च-कोटि की कलाकर भी।

आधुनिक रहस्यवाद की कल्पना भक्ति तथा योग के माध्यम से नहीं, वरन् प्रकृति-सौन्दर्य के माध्यम से हुई है। यहीं से छाया-वाद की प्रवृत्ति आरम्भ होती है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को एक चेतना शक्ति के रूप में चित्रित किया है। इसीलिए आज के रहस्यवादी कवि पर छायावाद की भी स्पष्ट छाप लगी है। छायावादी प्रवृत्ति के मूल में कुछ विशेष कारण उपस्थित हैं जिन्होंने इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ जब विषम हो गईं तो कवि को प्रकृति की गोद में आश्रय मिला। उसी से उसने सम्बन्ध स्थापित कर लिया। प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) भी भौतिक जगत के अस्त-व्यस्त जीवन से ऊबकर प्रकृति की शरण में भागा था। वहीं उसे अपूर्व सुख और शांति प्राप्ति हो सकी। मानवीय भावनाओं तथा प्रकृति के कार्य व्यापारों में कितना घनिष्ट संबंध है, दोनों कितने अन्योन्याश्रित हैं इसको हम जितना अधिक समझेंगे उतना ही हम छाया युग के काव्य के साथ न्याय कर सकेंगे। वैदिक ऋचाओं में भी इसका उदाहरण मिलता है जब जड़ प्रकृति में चेतन व्यक्तित्व का आरोप किया गया है। जयदेव, विद्यापति, सूर, तुलसी आदि गीतकारों में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं। विरहाकुल गोपियाँ मधुवन में वृक्षों से पूछती हैं :—

> मधुबन तुम कत रहत हरे—
> विरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे !

महादेवी जी छायायुग के आदि कवियों में से नहीं हैं, उनके काव्य में उसका विकसित स्वरूप देखने को मिलता है। छायायुग के कवियों पर अँग्रेजी की स्वच्छन्द धारा (Romanties)

वाले कवियों का प्रभाव स्पष्ट है। स्वच्छन्द धारा के कवियों में वर्डसवर्थ का स्थान बहुत ऊँचा है। पर उसकी गणना रहस्यवाद के कवियों में की जाती है क्योंकि उसने कण-कण में चेतन सत्ता का आभास पाया। उसका विश्वास था कि उसमें ऐसी शक्ति है जो मनुष्यों को ऊपर उठाने में समर्थ है। छायायुगीन कवियों ने अपेक्षाकृत प्रकृति के चेतन-तत्त्व को और भी अधिक पहचाना था किन्तु वर्डसवर्थ ने जहाँ एक दैवी व्यक्ति का अनुभव किया वहाँ हिन्दी के कवियों ने आत्मानुभूत सत्य के निरूपण तक अपने को सीमित रखा। भावों के आदान प्रदान में ही उन्हें सन्तोष हो जाता है। शैली तथा कीट्स (Keats) आदि कवियों में छाया-युग के कवियों की भाँति प्रेम भाव की सुन्दर व्यञ्जना मिलती है पर महादेवी जी इससे आगे बढ़कर परोक्ष प्रियतम को खोजती फिरती हैं और इस प्रकार वर्डसवर्थ की भाँति रहस्यवाद के क्षेत्र में पदार्पण करती हैं। प्रकृति का स्वरूप सुन्दर है पर उसके पार बसे हुए प्रियतम का स्वरूप सुन्दरतम है। उसी सुन्दरतम स्वरूप को आत्मसात् करने के लिए कवयित्री के प्राण विकल दीख पड़ते हैं—

> "फिर विकल हैं प्राण मेरे।
> तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?"

महादेवी में रहस्य प्रवृत्ति सदैव तथा सर्वत्र बनी रहती है। परोक्ष सत्ता का आभास उन्हें प्रतिक्षण होता रहता है। छायावाद का प्रकृति से अभिन्नतम सम्बन्ध है। महादेवी जी ने छायावाद की व्याख्या इस प्रकार की है—"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये हैं जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुख में उदास व सुख पुलकित

जान पड़ती थी।" महादेवी जी किस प्रकार प्रकृति से अपना प्रगाढ़तम सम्बन्ध स्थापित करती हैं :—

"प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन।
साधों का आज सुनहला पन।
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
संध्या का नभ से मूक मिलन
यह अश्रुमती हँसती चितवन !"

प्रकृति का सौन्दर्य उनके आराध्य से आत्मसात् करने का एकमात्र साधन है। प्रकृति में वे अपने प्रियतम का स्वरूप देखती हैं, इसी से सम्पूर्ण शक्ति से आत्मीयता का अनुभव करती हैं :—

"आज मेरे नयन के तारक हुए जल जात देखो !
अलस नभ के पलक गीले,
कुन्तलों से पोंछ आई।
सघन बादल भी प्रलय के
श्वास में मैं बाँध लाई।
पर न हो निस्पन्दता में चँचला भी स्नात देखो।'

किन्तु छायावाद में सौन्दर्य तथा प्रेम की अनुभूति का आदर्श स्वरूप देखना है तो सुश्री महादेवी जी में देखिए। सौन्दर्य का मूल्य स्मित की रेखाओं से नहीं वरन् अश्रु की बूँदों से आँका गया है :—

"अली मैं कण कण को जान चली,
सबका क्रन्दन पहचान चली !
× × × ×
अणु अणु का कम्पन जान चली
प्रति पग को कर लयवान चली।"

—'दीपशिखा'

इस प्रकार महादेवी जी के काव्य में छायावाद तथा रहस्य-वाद का परिष्कृत स्वरूप मिलता है।

महादेवी जी ने अभी तक गीतकाव्य ही अधिक लिखा है और बात भी पूर्णतः स्पष्ट है कि अन्तर्मुखी भावनाओं को व्यक्त करने के हेतु गीतिकाव्य ही अधिक उपयुक्त रहता है।

महादेवी जी का कला पक्ष भी उतना ही श्रेष्ठ है जितना उनका भाव पक्ष। उनके काव्य की सम्पूर्ण सुन्दरता उसकी स्वाभाविकता में है; उसमें अकृत्रिमता ही सर्वत्र दिखाई देती है। इसी अकृत्रिमता के कारण ही उनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त कोमल है। स्वाभाविकता का आग्रह इतना अधिक है कि कहीं कहीं पर मात्राओं की पूर्ति और तुक के कारण कुछ शब्दों का अंग भंग तक हो गया है। 'बातास' का 'बतास', 'आधार' का 'अधार', 'ज्योति' का 'ज्योती', इत्यादि लिखते समय उन्होंने तनिक भी संकोच नहीं किया है। उनकी कविता में कहीं-कहीं पर अत्यानुप्रास भी नहीं मिलते; परन्तु तुक और सुन्दर शब्दों के प्रयोग ने उनके काव्य की गति को मन्द नहीं होने दिया है।

"महादेवी जी अभी तक साधना के मार्ग पर हैं। 'नीहार' के धुंधलेपन में 'रश्मि' के सुन्हले प्रकाश पर जो 'नीरजा' खिली थी यह 'सान्ध्य गीत' की ध्वनि से 'दीपशिखा' तक अपनी सरस अनुभूतियों और कल्पना की पंखड़ियों से सौन्दर्य विकीर्ण कर इस नारी की आत्मा की व्यथा को विश्व के कण-कण के माध्यम में से उस अनन्त, असीम के चरणों तक पहुँचाती रही।"

—डा० इन्द्रनाथ मदान।

भविष्य में वे प्रभात के अनुकूल मिलन की भूमिका देकर हमें अपने आनन्द का भी संदेश देंगी। तब उन्हें न जलन रहेगी, न

पीड़ा और न दीपक की भाँति तिलतिल कर प्रिय के लिये मिटना ही पड़ेगा।

"सजल सीमित पुतलियाँ पर चित्र अमिट असीम का वह,
चाह एक अनन्त बसती प्राण किन्तु समीप सा यह,
रज-कणों से खेलती किस विरज विधुकी चाँदनी मैं ?
प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं ?"

———

अध्याय ३

नीहार

सुन्दर मखमल के सुनहले-कोमल कालीनों से भरा कमरा, मन्द-मन्द स्थित हास्य बिखराता दीपक, बाहर तारों से भरा अनन्त आकाश, गुनगुनाती हुई कवयित्री—ऐसी कल्पना हमारे हृदय में उठती हैं। कम से कम श्रीमती महादेवी वर्मा के कविता संसार का तो यह चित्र उचित ही जान पड़ता है। घुल घुल कर गलने वाली शमा, मजार पर जलाया दीपक, ओस मिस अश्रु-कण कोई अनन्त प्रतीक्षा, अनन्य विरह, आपकी कविता का ध्यान आते ही ये चित्र हमारी कल्पना में साकार से हो उठते हैं।

'नीहार', 'रश्मि', 'नोरजा', 'सान्ध्यगीत', और दीपशखा आपकी यात्रा के चरण चिन्ह हैं। छायावादी पन्त से प्रभावित 'नीहार' के झिलमिल उदय से लेकर अब तक आपके काव्य का प्रचुर विकास हो चुका है। 'नीहर' में श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य की रूप रेखा बन रही है। एक अत्यन्त पीड़ा इन छन्दों में है, किन्तु उसका कोई स्थिर स्वयं निश्चित रूप नहीं है। कवयित्री के मन में एक हूक उठती है, वह गाने लगती हैं—इससे कुछ भी प्रयोजन नहीं कि क्या? इन गीतों में एक कहीं पर कुछ दूर की पुकार है, पवन का एक झोंका, लहरों की एक सरवट, तारों का कुछ सन्देश है। स्वयं महादेवी जी 'नीहार' के सम्बन्ध में लिखती हैं—"नीहार के रचना काल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतुहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम

दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।" और भी—"मेरे रोम रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे हृदय में लिखा हो; परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी।"

महादेवी का हृदय मादकता तथा विस्मय में परिपूर्ण है। उसे सुदूर से एक पुकार सुनाई पड़ती है। पुकार अधिकांश अमानवीय कुतुहल वश ही सुनाई पड़ती है। इस पुकार को छायावाद भी कहा गया है। पन्त जी के 'मौन निमन्त्रण' में इस छायावाद का सुन्दर, सुगढ़ स्वरूप हमें देखने को मिलता है, इस कविता का तत्कालीन तरुण गीतकारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। विस्मय ही इस छायावाद का प्रधान गुण था।

'झकोरों से मोहक सन्देश,
कह रहा हो छाया का मौन।
सुप्त आहों का दीन विषाद,
पूछता हो, आता है कौन ?'

अथवा

'अवनि अम्बर की रूपहली सीप में,
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में,
....
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है ?'

उन्हें छायावादी कवि की भाँति 'उस पार' पहुँचाने की कल्पना है। उस कल्पना का वास्तविक सीमांत क्या है, यह कहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि कोई सुनहला स्वप्न उसके पीछे छिपा है जिसे जानने की जिज्ञासा सदैव बनी रहती है। महादेवी जी लिखती हैं।

'सुना था मैंने इसके पार
बसा है सोने का संसार,
जहाँ के हँसते विहग ललाम
मृत्यु छाया का सुनकर नाम!
धरा का है अनन्त शृंगार,
कौन पहुँचा देगा उस पार?'

तथा—

'सुनाई किसने पल में आन
कान में मधुमय मोहन तान?
तरी को ले जाओ मंझधार
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही हैं कर्णाधार,
वही पहुँचा देगा उस पार!'

महादेवी की 'उस पार' रचना सम्भवतः 'नीहार' की सबसे पुरानी रचना है। उसकी सहज भाव से लिखी—

विसर्जन ही है कर्णाधार
वही पहुँचा देगा उस पार,

आदि पंक्तियाँ आज भी उनके हृदय के उतनी ही निकट हैं जितनी कि तब थीं। इस तथ्य को उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है। उनके जीवन का विश्वास जिनके पीछे दीर्घकाल के अनुभवों की आधार शिला है वास्तव में कठोर सत्यता लिए हुए है। उस सत्य का स्वरूप चाहे दार्शनिक हो अथवा प्रकृत। वे स्वीकार करती हैं—

"मानव को मानवता की तुला पर गुरू होने के लिये स्वार्थ की दृष्टि से कितना हल्का होना पड़ता है, यह प्रश्न इतने दीर्घ काल में अनुभव के लम्बे पथ को पार कर स्वयं उत्तर बन गया है, परन्तु इसके पहले रूप में निहित सत्य की मुझे फिर नवीन रूप में प्राणप्रतिष्ठा नहीं करनी पड़ी।"

महादेवी जी के काव्य में गीत भावना प्रधान है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि उनका काव्य पद्य गीति-काव्य है। गीत काव्य अन्तर्मुखी और अहम् में लीन होता है। हिन्दी का आधुनिक काव्य क्यों अन्तर्मुखी है, इसके कारण देश की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में मिलेंगे। 'एक बार' में महादेवी जी भारत की दशा पर क्रन्दन कर उठी हैं।

"कहता है जिनका व्यथित मौन,
हमसा निष्फल है आज कौन?
निर्धन के धन सी हास-रेख
जिनकी जग में पाई न देख,
उन सूखे ओठों के विषाद
में मिल जाने दो हे उदार!
फिर एक बार बस एक बार!"

आपने जीवन के विषाद, उसकी गहन पीड़ा से ऊबकर गीत की शरण में त्राण पाना चाहा, परन्तु पीड़ा गीत में बिंधी ही रही। आप स्वयं कहती हैं—

हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत-प्रधान ही कहा जायगा। हमारा व्यस्त और व्यक्ति प्रधान जीवन हमें काव्य के किसी अंग की ओर दृष्टि पात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिये संसार है। हम अपनी प्रत्येक सांस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपनी प्रत्येक कल्पना को अंकित कर लेने के लिये उत्सुक हैं। और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिये विकल हैं।"

दुखः उनके जीवन का ऐसा अमर काव्य है जो समस्त संसार को एक सूत्र में बांधे रखने की क्षमता रखता है। सम्पूर्ण जड़ चेतन उसी कारण के नाते से उनका अपना हो गया है। होते होते असीम और ससीम भी मिलकर एकाकर, अभिन्न, एक

रूप हो जाते हैं। सम्पूर्ण प्रकृति में अपनी ही प्रतिच्छाया दीख पड़ती है—

इन बूंदों के दर्पण में
करुणा क्या झांक रही है !
क्या सागर की धड़कन में
लहरें बढ़ आँक रही हैं !

वे इसी करुणा तथा अभिन्न असीम ससीम के सम्बन्ध-द्वारा, जो उनके मन में बैठ गया है, अपनी साधना के पथ पर बढ़ती जा रही हैं। छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के चेतन स्वरूप में सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। प्राकृत एक चेतन अलौकिक सत्ता से व्याप्त प्रतीत होती है।

"धीरे से सूने आँगन में
फैला जब जाती हैं रातें,
भरभर के ठंडी सांसों में
मोती से आँसू की पाँतें;
उनकी सिहराई कम्पन में
किरणों के प्यासे चुम्बन में !
जाने किस बीते जीवन का
सन्देशा दे मंद समीरण,
छू देता अपने पँखों से
मुर्झाये फूलों के लोचन,
उनके फीके मुस्काने में
फिर अलसा कर गिर जाने में !—

इस प्रकार उनके सूने हृदय में प्रकृति का एक ही मादक स्पर्श अतीत के प्रति अनुराग उत्पन्न कर जाता है। ऐसा देखने में आता है जैसे विषाद से उनका मानस व्याप्त है जिसे वे किसी भी प्रकार दबाना चाहती हैं पर जीवन की कामनाएँ बरबस ही उभर पड़ती

हैं। उन्हें अपने अतीत का स्मरण हो आता है। एक ओर उन्हें किसी भी अज्ञात स्पर्श से किसी भी मनमोहक कल्पना से मादकता का अनुभव होता है, मनु कुतुहलावस्था में पहुँच जाता है, जो कि छायावाद का स्पष्ट प्रभाव है, दूसरी ओर उन्हें अपूर्ण जीवन की लालसाओं तथा अतृप्त यौवन की कसक का भान होने लगता है तथा वे दुख के सागर में डूबने लगती हैं। इस समय उनका विषाद, उनका सूनापन प्रकृति के कणकण में बिखर जाता है और प्रकृति जो एक क्षण पूर्व मधुर और कोमल स्पर्श वाली प्रतीत होती थी, उदास, नीरस और सूनी दीख पड़ती है।

"आँखों की नीरव भिक्षा में
आँसू के मिटते दागों में,
ओठों की हँसती पीड़ा में
आहों के बिखरे त्यागों में,
कन कन में बिखरा है निर्मन !
मेरे मानस का सूनापन !"

नारी होने के नाते अनमोल यौवन के लुटने की कसक कितनी तीव्र एवम् वेदना पूर्ण है। प्रकृति को सम्बोधन करके देवी जी कहती हैं।

'चाँदनी का शृंगार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर !
जानते हो यह अभिनव प्यार,
किसी दिन होगा कारागार ?'

वे प्यार की कसक से तो पूर्ण परिचित हैं पर फिर भी इसी कसक को वे गले लगाये रहना चाहती हैं। 'सूली ऊपर सेज पिया की' भाँति उन्हें भी भान है कि यह प्रेम, जो आज हृदय में सिह-

रन पैदा कर देता है तथा जिसकी कल्पना मात्र से अन्तर एक अपूर्व सुख और मादकता में झूम उठता है, कल जीवन के लिये कारागार बन बैठेगा पर फिर भी वे इन सूलों के हार को पहनने को प्रोत्साहन देती हैं। कारण स्पष्ट ही है। वे उच्चकोटि की प्रेमिका ही नहीं साधिका भी हैं। साधना में डर की बात नहीं रहती। उसका पथ प्राप्ति नहीं, विसर्जन है। उसकी पूर्ति मिलन की शीतल रात्रि से नहीं, विरह की काली रात्रि में है। देखिए किस प्रकार उन्होंने एक ही साथ अपने हृदय के किसी अव्यक्त अनजान सम्मोहन राग के प्रति खिचाव किसी अज्ञात प्रियतम की कठोरता प्रेम के पथ की निराशा तथा निरन्तर उसी पर बढ़ते जाने और काँटों को गले लगाने की अथक साधना को प्रकृति के सहारे चित्रण किया है—

'कौन वह है सम्मोहन राग,
खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश,
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?
हँसो पहनो काँटों के हार,
मधुर भोले पन के संसार ?

नारी हृदय के बन्धनों से वे प्रयास करने पर भी मुक्त न हो सकीं। उनके काव्य में कहीं-कहीं अव्यक्त, अमानवीय स्वर सुन पड़ते हैं। नियर्वाक, निस्तब्ध, वीतराग स्वर, स्वच्छन्द होकर भी, अन्तः प्रेरणा की असीम आदेशों में निगड़-बद्ध हैं। किसी अज्ञात इच्छा से विह्वल उनके समस्त कृतित्व पर धुँधली सी छाया पड़ी है। नारी में पुरुष की अपेक्षा सहने की मात्रा अधिक रहती है। मनरूपी दीपक को निरन्तर ज्वाल में जल जलकर स्वर्ण बनने को कहती हैं, यही तो साधना का मर्म भी है। पीड़ा का संसार बहुत ही अनोखा होता है। एक सच्चा साधक अथवा साधिका ही इसे भली प्रकार जान सकती है। मृत्यु से उन्हें भय नहीं। चिता तो

उनकी मीत है। उसी में तो उन्हें अमरत्व प्राप्त होगा। अमरत्व से भी आगे बढ़कर उन्हें तो अपने प्रिय से एकाकार होना है। दीपक को आलम्बन मानकर महादेवी जी अपने हृदय के इन्हीं भावों को व्यक्त करती हैं—

"पड़ी है पीड़ा संज्ञाहीन,
साधना में डूबा उद्‌गार।
ज्वाल में बैठा हो निस्तब्ध,
स्वर्ण बनता जाता है प्यार,
चिता है तेरी प्यारी मीत—
वियोगी मेरे बुझते दीप।
अनोखे से नेही के त्याग,
निराले पीड़ा के संसार।
कहाँ होते हो अन्तर्धान,
लुटा अपना सोने सा प्यार?
कभी आयेगा ध्यान अतीत—
तुम्हें क्या निर्वाणोन्मुख दीप?

यहाँ महादेवी जी ने दीपक में प्राण प्रतिष्ठा की है। ऊपर भी हम देख आये हैं कि विभिन्न प्राकृतिक आलम्बनों द्वारा छायावादी कवि से प्रभावित देवी जी किस प्रकार अपने हृदय के भावों को व्यक्त करती आयी हैं। छायावाद पर स्वयं महादेवी जी लिखती हैं—

'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के

अश्र, मेघ के जलकरण और पृथ्वी के ओसबिन्दुओं का ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघुतृण, और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शलायें अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता, कठोरता, चञ्चलता-निश्चलता और मोह ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेक रूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकि व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।

परन्तु इस छायावादी जिज्ञासा तथा कुतुहल से मानव हृदय की प्यास न बुझ सकी। छायावाद मानव हृदय की सम्पूर्ण वृत्तियों को अपने में लीन कर उसे पूर्ण सन्तोष न दे सका। हृदय की जिज्ञासा जब तक निरन्तर बनी ही रहती है जब तक कि उसमें आत्म विसर्जन का भाव नहीं आता। मानव हृदय का यह स्वाभात्रिक गुण है कि वह अपनी जिज्ञासा को शांत करने के हेतु, उसका समाधान करने के लिये अपने ससीम को असीम में लीन करदे। तादात्म्य होने पर कुतुहल का भाव, जिसमें साथ ही साथ अव्यक्त वेदना भी बनी रहती है, तिरोहित हो जाता है और उनके स्थान पर जीवन में एक अद्भुत सरसता आ जाती है। इसे ही हम रहस्यवाद कह कर पुकारने लगते हैं। इस प्रकार का रहस्यवाद नवीन युग का रहस्यवाद है जिसमें हृदय पक्ष ही रहता है। इस प्रकार का रहस्य प्राचीन युग की भाँति बौद्धिक चिन्तन नहीं। इसका सम्बन्ध तो हृदय की रागात्मक वृत्ति से है जो कि काव्य का विषय है, दर्शन का नहीं। यद्यपि दार्शनिक चिन्तन की सीमाएँ रहस्यवाद को घेरे ही रहतीं हैं पर फिर भी इस दर्शन में बुद्धि पक्ष की अपेक्षा हृदय पक्ष ही प्रधान रहता है;

योगिक त्याग की अपेक्षा प्रणय निवेदन तथा प्रेम भी विजय के हेतु आत्म-समर्पण ही अधिक पाया जाता है। स्वयं महादेवी जी का कथन देखिए—

"परन्तु इस सम्बन्ध से मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्म-विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्य-मय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया। रहस्यवाद के अर्थ में छायावाद नाम के समान नवीन न होने पर भी प्रयोग के अर्थ में विशेष प्राचीन नहीं। प्राचीनकाल के दर्शन में इसका अंकुर मिलता अवश्य है, परन्तु इसके रागात्मक रूप के लिये उसमें स्थान कहाँ! वेदान्त के द्वैत, अद्वैत, विशिष्टताद्वैत आदि या आत्मा की लौकिकी तथा परलौकिकी सत्ता विषयक मतमतान्तर मस्तिष्क से अधिक सम्बन्ध रखते हैं, हृदय से नहीं, क्योंकि वही तो शुद्ध बुद्ध चेतन को विकारों में लपेट रखने का एकमात्र साधन है। योग का रहस्यवाद इन्द्रियों को पूर्णतः वश में करके आत्मा का कुछ विशेष साधनाओं और अभ्यासों के द्वारा इतना ऊपर उठ जाना है जहाँ वह शुद्ध चेतन से एकाकार हो जाता है। सूफी-मत के रहस्यवाद में अवश्य ही प्रेम जनित आत्मानुभूति और चिरन्तन प्रियतम का विरह समाविष्ट है, परन्तु साधनाओं और अभ्यासों में वह भी योग के समकक्ष रखा जा सकता है और हमारे यहाँ कबीर का रहस्यवाद योगिक क्रियाओं से युक्त होने के कारण योग, परन्तु आत्मा और परमात्मा के मानवीय प्रेम-सम्बन्ध के कारण वैष्णव युग के उच्चतम कोटि तक पहुँचे हुए

प्रणय-निवेदन से भिन्न नहीं।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक रहस्यवाद का दर्शन क्या है तथा महादेवी जी के गीत आत्मनिवेदन के अतिरिक्त और हो ही क्या सकते हैं। देखिए एक गीत—

'जला जिसमें आशा के दीप,
तुम्हारी करती थी मनुहार।
हुआ वह उच्छ्वासों का नीड़,
रुदन का सूना स्वप्नागार।

हृदय पर अंकित कर सुकुमार,
तुम्हारी अवहेला की चोट।
बिछाती हूँ पथ में करुणेश,
छलकती आँखें हँसते ओठ।'

आशा निराशा में परिवर्तित हो गई है, प्रिय ने ठुकरा दिया है परन्तु वे तो मीरा की भाँति अमर साधिका हैं इसी से प्रियतम की अवहेलना की चोटें अपने हृदय में अंकित कर उनके पथ में छलकती आँखें और हँसते ओठ बिछाती प्रतीत होती हैं। उनका प्रियतम से अभिन्नतम सम्बन्ध स्थापित हो चुका है। वे प्रियतम में और प्रियतम उनमें लीन हो चुके हैं। दोनों में अन्तर ही नहीं प्रतीत होता है। राधामाधव तथा कीट-भृङ्ग की भांति प्रियतम उनकी पुतली में छिप बैठा है पर उन्हें तो सर्वत्र प्रियतम छाया ही दीख पड़ती है फिर पुतली को कैसे देखा जाए—

"वे कहते हैं उनको मैं,
अपनी पुतीली में देखूँ।
यह कौन बता जायेगा,
किसमें पुतली को देखूँ?"

'प्रियतम छबि नैनन बसि, पर छबि कहाँ समाय' की भाँति पुतली के चहुँओर तो प्रियतम की छाया घूमती रहती है फिर

पुतली को भी कैसे देखा जा सकता है। किस प्रकार उनकी आत्मा का असीम से अभिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया है। बाह्य वस्तुएँ जैसे सब उनकी दृष्टि में तुच्छ हो उठी हैं, अथवा उन तक उनकी दृष्टि जाती ही नहीं है। उन्हें सदैव अपने प्रियतम के आने की नीरव सी पद् ध्वनि सुनाई पड़ती है। एक मौन निमन्त्रण, एक शांत सन्देश उन्हें सदैव अपने मानस में सुन पड़ता है—

उस सूने पथ में अपने,
पैरों की चाप छिपाये।
मेरे नीरव मानस में,
वे धीरे धीरे आये।"

वे अपने प्रियतम से समता के स्तर पर ही मिलन करना चाहती हैं। समता बिना एक दूसरे में रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होना सम्भव ही नहीं। उनका मान, प्रणय, हठ, निवेदन सब कुछ समता का भाव लिए हुए हैं। उनका प्रियतम यदि अनन्त करुणा सागर है तो उनका जीवन असीम सूनेपन को अपने अन्तर में पाले हुए है—

"मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक व्रीड़ा,
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?
उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन ?
उनमें अनन्त करुणा है
इसमें असीम सूनापन !"

परोक्ष प्रियतम के नाते से उनका सम्पूर्ण प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित हो गया है। दूसरों की सेवा उनके जीवन का धर्म है।

अपनी करुणा तथा सहानुभूति को वे सर्वत्र बिखेर देना चाहती हैं क्योंकि उनका प्रियतम भी तो सर्वत्र चिरन्तन रूप से विराजमान है। प्रकृति और प्रियतम दोनों एक दूसरे से चिर आबद्ध हैं। प्रकृति का सम्पूर्ण सौन्दर्य, उसकी मादकता तथा उसमें व्याप्त कुतूहल सब कुछ प्रियतम के कारण ही तो है तथा प्रियतम का आभास भी इसी सौन्दर्य में मिलता रहता है। इसी से उन्हें प्रकृति से अटूट प्रेम हो चुका है। दूसरे प्रकृति में उन्हें मानवीय भावना भी देखने को मिलती है। इसी चेतन शक्ति के कारण वे अपने आँसुओं को पानी के रूप में प्रकृति को दान कर देना चाहती हैं जिससे मूक फूलों की प्यास शांत हो सके :—

"किसी जीवन की मीठी याद
लुटाता हो मतवाला प्रात,
कली अलसाई आँखें खोल
सुनाती हो सपने की बात;

खोजते हो खोया उन्माद
मन्द मलयानिल के उच्छ्वास,
माँगती हो आँसू के बिन्दु
मूक फूलों की सोती प्यास;

पिला देना धीरे से देव
उसे मेरे आँसू सुकुमार—
सजीले ये आँसू के हार।"

आगे चलकर वे नक्षत्रों—नभ की दीपावलियों को सम्बोधित करके कहती हैं—तुम छुप जाना क्योंकि करुणामय प्रियतम को तम के पर्दों में ही आना अच्छा लगता है। तम और पीड़ा दोनों में एक तथ्य विराजमान है। तम का राज्य तो अन्धकार है ही पर पीड़ा का साम्राज्य भी अन्धकार ही है। पीड़ा को वे और उन्हें पीड़ा प्रिय है। विरह में हृदय भी जल जलकर काला पड़

जाता है। वेदना उनकी तो प्रिय सखी है, क्योंकि इसी के सहारे तो वे प्रियतम तक पहुँच सकी हैं। इसीलिये विरह ज्वाला में जल जलकर मिटना चाहती हैं। सम्पूर्ण विश्व को वे अपने मानस सदृश शून्य तथा प्रकाशहीन देखना चाहती हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि जितना तम होगा उतना ही करुणामय समीप आयेगा :—

'करुणा मय को भाता है
तप के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियो!
तुम पलभर को बुझ जाना!'

ब्राउनिंग की भाँति महादेवी जी भी अतृप्ति को ही जीवन मानती हैं। चिर पीड़ा तृप्ति से कहीं अधिक प्रिय है। पीड़ा और प्रियतम दोनों इस प्रकार आपस में घुल मिल गये हैं कि कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। दुख मनुष्य को संवेदनशील बना देता है तथा उसे सम्पूर्ण विश्व के साथ एक अवच्छिन्न बन्धन में बांध देता है। उन्हें प्रकाश किरणों की चाह नहीं जो भेद को उत्पन्न करती हैं, असीम तप ही प्रिय है। वे स्वयं कहती हैं :—

'इस असीम तम में मिल कर
मुझको पल भर सो जाने दो,
बुझ जाने दो देव! आज
मेरा दीपक बुझ जाने दो!'

दीपक के बुझ जाने पर तो चहुँ ओर तम का साम्राज्य छा जायेगा, जो उन्हें अच्छा लगता है। उनकी साधना इतनी बढ़ चुकी है कि वे अमरों के लोक को भी ठुकरा देती हैं; और अपना प्रति-पल जलने का अधिकार बनाये रखना चाहती हैं :

'ऐसा तेरा लोक वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद !

× × × ×

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !'

अज्ञात प्राणों में कोई आ आकर यह कह जाता है कि यह संसार कितना पागल है। मानव माया के बन्धनों में पड़ कर अपनी विजय, प्राणों की अमरता पर कितना इतराता है पर ये सब कल्पनाएँ व्यर्थ हैं। यह संसार कितना अस्थिर है इसका मान महादेवी जी को सदैव बना रहता है। सम्भव है इसी ज्ञान ने उनकी साधना को इतना बल दे दिया है और वे सम्पूर्ण विश्व में चिर शाँति खोजते खोजते किसी अज्ञात स्वप्न में खो गई हैं। साकार होने पर तो साधना नष्ट हो जाती है। अमरता तो एक प्रकार का बन्धन है। इसी संसार की थोथी कल्पना को इंगित करके वे कहती हैं :—

'स्वप्न लोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,
आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरों में 'कितना पागल है संसार' !'

जब ससीम असीम में पूर्णतः एकाकार हो जाता है तो वहाँ पृथक् नाम की कोई वस्तु ही नहीं रह जाती। स्वयं अमरता एक

पृथक् विशेषण है, पर देवी जी तो स्वतंत्र रहना ही नहीं चाहतीं। अपने लघुससीम को असीम में सर्वथा मिला देना चाहती हैं क्योंकि ऐसा होने पर अमरता का बन्धन भी नष्ट हो जायेगा :—

'जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल !'

वे अब साधना में इतनी थक चुकी हैं कि निवेदन करने लगी हैं कि अब तो प्रियतम अपने में मुझे मिला ही लो !' कितने युग उन्हें गाते-गाते व्यतीत हो चुके हैं, कितने दीपक निर्वाण बन चुके हैं पर प्रिय-सा गान वे नहीं सीख सकीं। एक लय में मिलने की उनकी व्यग्रता देखिए :—

'गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान

नहीं अब गाया जाता देव !
थकी अंगुली हैं, ढीले तार,
विश्व-वीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार !'

प्रियतम की चाह करते करते उनकी पीड़ा का साम्राज्य इतना बड़ गया है कि वह सम्पूर्ण विश्व में फैल जाना चाहती हैं :—

शून्य से टकरा कर सुकुमार
करेगी पीड़ा हा हाकार,
बिखर कर कण कण में हो व्याप्त
मेघ बन छा लेगी संसार !

विश्व होगा पीड़ा का राग
निराशा जब होगी वरदान,
साथ लेकर मुरझाई साध
बिखर जायेंगे प्यासे प्राण!'

जब सम्पूर्ण विश्व पीड़ा से भर जायेगा तो निराशा भी वरदान बन जायेगी और यदि तब यह जीवन साधों को संजाये बिखर भी जाए तो चिन्ता नहीं होगी। पीड़ा के आधिक्य के कारण ही ऐसी कल्पना का होना सम्भव है। पीड़ा का चस्का तो इतना तीव्र है कि :

'पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा
तुम में ढूँढूगी पीड़ा!'

यदि निराश जीवन ही व्यतीत करना है तो फिर वरदान की इच्छा ही नहीं उठती है। यदि जीवन अपरिचित पुष्प की भाँति मुरझाकर बिखर भी जाए तो भी चिन्ता क्या है? अव्यक्त वेदना लिए प्रियतम के पथ में बलिदान हो जाना ही परम साधिका का लक्ष्य रहता है। मूक प्रेम पुण्य का सबसे निखरा स्वरूप है :—

"किसी अपरिचित डाली से
गिर कर जो वनका नीरस फूल,
फिर पथ में बिछ कर आँखों में
चुपके से भर लेता धूल!
उसी सुमन सा पल भर हँस कर
सूने में हो छिन्न मलीन,
झर जाने दो जीवन-माली
मुझको रहकर परिचय हीन!"

इस प्रकार 'नीहार' के ४७ गीतों में कोई एक स्थिर भावना का प्राप्त करना कठिन है पर यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता

है कि आपके काव्य की रूपरेखा उत्तरोत्तर विकसित हो रही है। उनकी दूसरी काव्य पुस्तक 'रश्मि' में कवयित्री की काव्य प्रतिभा ने अधिक प्रौढ़ता प्राप्त करली है। 'रश्मि' में उनके जीवन का उनकी वेदना का एक लक्ष्य बन चुका है। 'नीहार' की भाँति स्फुट अनेकों बिखरी हुई सी भाव धाराएँ लोप हो चली हैं। उनके मन की 'हूक' साधना बन गई है। सारांश में 'नीहार' में तो उस मानसिक संघर्ष के दर्शन होते हैं जिसने अभी तक दिशाएँ नहीं पहाचनी हैं।

अध्याय ४

रश्मि

महादेवी जी का काव्य व्यक्तिगत मानसिक संघर्ष अभाव और बुद्ध के दुखवाद से प्रभावित है। दुख को उन्होंने 'मधुर भाव' के रूप में ही स्वीकार किया है। उसमें उनकी प्रेयसी की भूमिका है, जो परोक्ष प्रिय के लिए अहर्निश आतुर होती रहती है। प्रिय और प्रियतम की इस कल्पित आँख मिचौनी से उनका काव्य क्रीड़ामय हो उठा है। वे कहती हैं:—

"प्रिय चिरन्तन है सजन
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं।"

छायावादी युग ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी जी ने छायावाद को जीवन। प्रगतिवाद के नारे से प्रभावित हो जब छायावाद के मान्य कवियों ने अपनी आँखें पोंछ कर भीतर से बाहर झाँकना प्रारम्भ किया, महादेवी की आँखें निरन्तर भीगतीं रहीं, हृदय सिहरन भरता रहा, ओठों की ओटों में आहें सोती रहीं, और मन किसी निष्ठुर की आरती उतारता ही रहा। इस प्रकार के अखण्ड भाव से अन्तर्मुखी बनी रहीं। इसी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण वे जीवन से पूर्णतः घुल-मिल गईं और जब काव्य क्षेत्र में आईं तो उनके साथ करुणा, संवेदना, सुख-दुख, आशा-निराशा, अनुराग-वीतराग सभी कुछ आया जिसके कारण वे पार्थिव जगत में रहते हुए भी मीरा की भाँति अमर रहस्य साधिका बन बैठीं और विश्व के कण कण से अपना अवच्छिन्न

सम्बन्ध स्थापित कर लिया। इसी उद्देश्य को लक्ष्य करते हुए उन्होंने 'आधुनिक कवि' की भूमिका में लिखा है:—

"इस युग का कवि हृदयवादी हो या बुद्धिवादी, स्वप्न द्रष्टा हो या यथार्थ का चित्रकार, आध्यात्म से बँधा हो या भौतिकता का अनुगत, उसके निकट यही एक मार्ग शेष है कि वह अध्ययन में मिली जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर, जड़ सिद्धान्तों का पाथेय छोड़कर अपनी सम्पूर्ण संवेदन शक्ति के साथ जीवन में घुलमुल जावे। सारांश में आज के कवि को अपने लिए अनागरिक होकर भी संसार के लिए गृही अपने प्रति वीतराग होकर भी सबके प्रति अनुरागी, अपने लिये संन्यासी होकर भी सबके लिए कर्म योगी होना होगा, क्योंकि आज उसे अपने आपको खोकर पाना है।" यही 'संवेदन' एक ऐसा गुण महादेवी जी के पास है जिसके कारण उन्हें सम्पूर्ण प्रकृति सखी के रूप में प्रतीत होती है। तथा उनका कुतूहल भाव, सौन्दर्य साधना, प्रणय-निवेदन, प्रिय प्रेयसी के रागात्मक सम्बन्ध की तीव्र इच्छा सब कुछ इसी संवेदन के बल पर निभ सका है। इस संवेदन ने एक और भी कार्य उनके जीवन में किया है और वह यह कि इसके द्वारा वे अपने वैयक्तिक दुख, संताप, अश्रु प्रवाह तथा वीतराग को नियंत्रित कर सकी हैं तथा अपनी असीम आत्मा का सम्पूर्ण विश्व में प्रसार करते हुए असीम की अनन्तता में लीन हो सकी हैं। सारांश में यही एक ऐसी आधारशिला है जिसके बल पर वे अपनी साधना में सफल हो सकी हैं। समय के अनुसार विचारों में तथा विचारों के अनुसार रचनाओं में परिवर्तन आना आवश्यक है। 'रश्मि' के ३५ गीतों में 'नीहार' के गीतों की अपेक्षा अधिक स्थिरता देखने को मिलती है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जो भाव धारा 'नीहार' में बन रही थी तथा जिसमें गति होते हुए भी दिशा नहीं थी वह 'रश्मि' में आकर नियंत्रित तथा स्थिर हो गई है। उनकी काव्य प्रतिभा ने 'रश्मि' तक वयः प्राप्त कर ली

है तथा प्रौढ़ हो चुकी है। काव्य का भी एक जीवन होता है और प्रत्येक जीवन की भाँति उसमें भी उत्थान पतन रहते हैं। महादेवी जी की संवेदन शक्ति तथा उनका दार्शनिक चिन्तन जो कि उनके काव्य के प्रमुख स्तम्भ हैं, अभी विकास पथ पर हैं। 'रश्मि' में उसी विकास की झाँकियाँ हैं। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्द चित्रमान है, जिससे उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जाती है। वह एक संसार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और इस संसार से अधिक सुन्दर, अधिक सुकुमार संसार बसा रखा है। मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं। उसका बाह्याकार पार्थिव और सीमित संसार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीम का एक उसको विश्व से बाँध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है।' कवयित्री का जीवन धीरे-धीरे संसार में अबाध गति से बहता चला जा रहा था, उसके मन में एक प्रकार की जिज्ञासा बनी हुई थी कि अचानक आकर किसी अज्ञात ने उसे चौंका दिया:—

परिवर्तन पथ में दोनों
शिशु से करते थे क्रीड़ा,
मन माँग रहा था विस्मय
जग माँग रहा था पीड़ा!

यह दोनों दो ओरें थीं
संसृति की चित्रपटी की,
उस बिन मेरा दुख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी!

किसने अनजाने आकर
वह लिया चुरा भोलापन?
उस विस्मृति के सपने में,
चौंकाया छूकर जीवन!

उनकी जिज्ञासा जो अभी तक मूक थी, अब मुखर हो उठती है। सम्पूर्ण प्रकृति एक अलौकिक विस्मय और सौन्दर्य से परिपूर्ण हो उठती है। प्रत्येक अणु से उन्हें आत्मीयता का भाव स्थापित हो जाता है। इस आत्मीयता के भाव का मूल कारण प्रकृति में चेतन-सत्ता का आभास भी माना जाता है। प्रकृति और महादेवी जी के हृदय के बीच जो अभी तक कुछ न कुछ दूरी बनी हुई थी वह अब पूर्णतः नष्ट हो जाती है। कवयित्री के मानस के भावों में तथा प्रकृति में समरसता है। दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते तथा बल प्राप्त करते प्रतीत होते हैं। एक भाव देखिए:—

'किस सुधि वसंत का सुमन तीर,
कर गया मुग्ध मानस अधीर !

× × + ×

घुल घुल जाता यह हिम दुराव,
गा गा उठते चिर मूक भाव,
अलि सिहर सिहर उठता शरीर !

मानवीय भावों की सहचरी प्रकृति कितनी सुन्दर हो उठी है इसका पता महादेवी जी की चित्र-कला प्रतिभा द्वारा ही लगाया जा सकता है। आपकी चित्रशाला में प्रकृति के अनेक रेखा चित्र दृढ़, सुष्ठ रेखाओं में अंकित हैं। 'रश्मि' के गीत का एक सुन्दर चित्र देखिए:—

'कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?

शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगण,
बुझा क्यों उनको जाती मूक,
भोर ही उजियाले की फूँक!

सौन्दर्य चित्र तथा सौन्दर्यानुभूति के साथ जिज्ञासा का भाव तो सदैव बना ही रहता है, क्योंकि देवी जी ने प्रकृति में चेतन-सत्ता का आभास निश्चित रूप से पा लिया है। इसी से वे प्रश्न कर बैठती हैं:—

शून्य नभ पर उमड़ जब दुख भार सी
नैश तम में, सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओं की हार सी;
तब चमक जो लोचनों को मूँदता
तड़ित् की मुस्कान में वह कौन है?

नींद में अज्ञात आकर कोई उनके प्राणों को स्पन्दित कर जाता है। इस तनिक से स्पर्श से उनके मस्तिष्क में बसा रहस्य खुल जाता है और उन्हें प्रकृति के सौन्दर्य के कारण का पता लग जाता है। प्रकृति के कण-कण में किसी अज्ञात का आलोक बिखर रहा है। 'सिया राम मय सब जग जानी' की भाँति सर्वत्र वह और उस में सब का अस्तित्व छुपा है। कलियों की हँसी, पवन का मतवाला पन, सुमनों की सुवास, चाँद की शीतलता, रजनी की मादकता सभी कुछ प्रियतम के सर्वत्र अस्तित्व के कारण हैं:—

'नींद में सपना बन अज्ञात!
गुद गुदा जाते हो जब प्राण,
ज्ञात होता हंसने का मर्म
तभी तो पाती हूं यह जान,

प्रथम छूकर किरणों की छाँह
मुस्करातीं कलियाँ क्यों प्रात,
समीरण का छू कर चल छोर,
लोटते क्यों हँस हँस कर पात !

उनका प्रियतम तम के अन्धकार में छुपकर आता है जिसे वे कुछ कुछ पहचानती हैं। पूर्व परिचय का भाव महादेवी जी में स्थान स्थान पर मिलता है। क्षणिक परिचय के पश्चात् ही तो मन के भाव मुखर हो पाते हैं, उसकी मूकता भंग हो पाती है। उनके प्रकाश हीन जीवन में आलोक की किरणें मुस्कराने लगती हैं। 'नीहार' का गहन अन्धकार 'रश्मि' में आते आते आलोक में परिवर्तित हो गया है। यहाँ प्रिय के आने के पूर्व तो जीवन में तम अवश्य है पर प्रिय मिलन के समय 'नीहार' की भावना के विपरीत आलोक का साम्राज्य हो जाता है। प्रिय का आगमन तो उनके अधन्कार पूर्ण जीवन में दीप जला जाता है।

"सजनि कौन तम में, परिचित सा, सुधिसा, छाया सा आता ?
सूने में सस्मित चितवन से जीवन दीप जला जाता !
छू स्मृतियों के बाल जगाता,
मूक वेदनायें दुलराता,
हृत्तन्त्री में स्वर भर जाता,
बन्द दृगों में, चूमसजल सपनों के चित्र बना जाता !"

अज्ञात प्रिय के स्पर्श ने जीवन के समस्त तारों को झंकृत कर डाला है और उसके प्राणों में उलझन पैदा करदी है। जिस जीवन को सौ-सौ मलयबार स्पन्दित न कर सके उसे प्रियकाकार आकर तनिक से स्पर्श से झंकृत कर गया। वे प्रिय से माननी बनकर कहती हैं।

'विश्व-वीणा में कब से मूक
पड़ा था मेरा जीवन तार,
न मुखरित कर पाई झकझोर—
थक गई सौ सौ मलय बयार !

तुम्हीं रचते अभिनव संगीत,
कभी मेरे गायक इस पार,
तुम्हीं ने कर निर्मम आघात
छेड़ दी यह बेसुर झंकार—
और उलझा डाले सब तार !

स्त्री पुरुष के शृङ्गार में पूर्व स्मृति तथा पूर्वानुराग का विशेष स्थान सदैव से रहा है। ये दोनों दशाएँ विप्रलंभ शृङ्गार में उद्दीपन का कार्य करती हैं। वियोग की अवस्था, विरह का भार पूर्वस्मृति द्वारा और भी अधिक हो जाता है। आत्मा-परमात्मा का अभिन्न सम्बन्ध है पर माया के आवरण के कारण आत्मा अपने प्रियतम से बिछुड़ जाती है। जागृति होने पर उसे पुनः एक दूसरे के मिलन का भाग हो जाता है। इस प्रकार यह स्थिति रहस्यवाद तथा पार्थिव जगत में स्त्री-पुरुष के स्थूल शृङ्गार दोनों में देखने को मिलती है। महादेवी जी इस को लक्ष्य करके कहती हैं।

'छिपाये थी कुहरे सी नींद,
काल का सीमा का विस्तार;
एकता में अपनी अनजान,
समाया था सारा संसार !

मुझे उसकी है धुँधली याद,
बैठ जिस सूनेपन के कूल;
मुझे तुमने दी जीवन बीन,
प्रेम शतदल का मैंने फूल !

प्रियतम की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है। रहस्यवादी अपने प्रभु की सत्ता सिकता के एक एक कण में देख लेता है। प्रकृति का प्रत्येक कण उसी सत्ता का आभास देता है। कवयित्री के मानस में भी विविध रंगों का विधान इसी कारण है :—

'चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कण कन से फूट फूट,
मधु के निर्भर से सजल गान !

× × × ×

फैला अपने मृदु स्वप्न-पंख,
उड़ गई नींद-निशि क्षितिज पार,
अधखुले दृगों के कज-कोष—
पर छाया विस्मृति का खुमार;
रंग रहा हृदय ले अश्रु हास,
यह चतुर चितेरा सुधि विहान !'

नीरव एकान्त वातावरण में सृष्टि के विराट और चरम सुन्दर रूप को निरखने की अदम्य चेष्टा में वे खोयी सी आवाक् बैठी रह जाती हैं और घनी गहरी वेदना में उन्हें एक चुटीली मिठास का अनुभव होता है। कभी उनका मन किसी अज्ञात वस्तु के साक्षात्कार की लालसा में तड़प उठता है, कभी जीवन की बृहत्तम शून्यता उन्हें अखरने लगती हैं और कभी मानस-पट पर किसी निर्मम की चाह मचल उठती है, अधरों पर अनुराग बिखर जाता है और नयनों में विरह की छाया छटपटा उठती है।

'अपनी लघु निश्वासों में
अपनी साधों की कम्पन,
अपने सीमित मानस में,
अपने सपनों का स्पन्दन।
मेरा अपार वैभवहा,
मुझसे है आज अपरिचित।
होगया उदधि जीवन का,
सिकता-कण में निर्वासित।

प्रेम का प्रथम लक्षण है अन्तर में एक प्रकार की कोमलता का जग पड़ना। जहाँ आकर्षण ने जन्म लिया नहीं कि व्यक्ति मधुरता मिश्रित किसी शीतल विह्वलता का अत्यन्त तीव्र अनुभव करने लगता है। उस समय एक से एक कोमल एक से एक मधुर, एक से एक काव्यमयी भावनाएँ न जाने अन्तः संज्ञा के किस स्तर के उद्‌गम में उमड़ कर ओठों तक आती है जिनमें से कुछ व्यक्त हो जातीं और कुछ मूक रहकर प्रेमास्पद की इङ्गित को निहारती रहती हैं। उस समय इच्छा होती है कि हमारे पास जो कुछ है वह अपने नेही के चरणों पर न्यौछावर कर दें। किसी प्रकार हम उसे अपना बना लें, उसकी चितवन के अधिकारी हो सकें। इसी अधिकार की भावना से प्रेरित होकर अपने प्रियतम से देवी जी शिकायत करती हैं—

'मेरे शैशव के मधु में घुल,
मेरे यौवन के मद में ढुल।
मेरे आँसू स्मित में हिलमिल,
मेरे क्यों न कहाते!'

उनका प्यार छलकता है, पर रुके जल-संघात के सदृश। उनके अन्दर कुछ दुराव सा दीखता है जो उन्हें यथार्थ के निकट आने से रोकता है। भीतर दर्द है, कुछ अवरुद्ध सा घुमड़ता हुआ उभरता भी है लेकिन कवयित्री उसे हवा में उड़ाना नहीं चाहती। वह दूरी का स्वांग सा करती हुई आध्यात्मिक पाश में उसे जकड़ लेना चाहती हैं। एक भाव गुम्फन देखिए—

'रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता;
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता।
उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का।
एक सूत्र सबके बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करुण-काव्य वह लिख जाता।'

उन्हें ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे कुछ भूल आई हैं और रह रह कर उनके मानस में किसी अज्ञात की सुधि बार-बार उठती है—

'कहीं से, आई हूँ कुछ भूल,
कसक-कसक उठती सुधि किसकी।
रुकती सी गति क्यों जीवन की,
क्यों अभाव छाये लेता।
विस्मृति सरिता के कूल।'

प्रिय को पाने की लालसा निरन्तर तीव्रतर होती जाती है। सुधि से तो काम नहीं चलता है कितनी विवशता है कि प्रियतम को वे अपने पलकों में नहीं बाँध पातीं—

'अलि कैसे उनको पाऊँ,
वे आँसू बनकर मेरे।
इस कारण ढुल ढुल जाते,
इन पलकों के बन्धन में,
मैं बांध बांध पछताऊँ।'

प्रियतम तो नित्य प्रति मानस में स्मृति बनकर खटकता रहता है। वह कितना निष्ठुर है कि पास ही नहीं आता? पर उन्हें तो यह निष्ठुरता भी अच्छी लगती है क्योंकि उनकी निष्ठुरता की याद सदैव अन्तर में कसकती रहती है और प्रिय किसी न किसी बहाने याद आता रहता है। धीरे-धीरे उनकी यह प्रणय भावना दार्शनिक रहस्यवाद का रूपग्रहण कर लेती है। वे निरन्तर अपने इष्ट की ओर खिंचती जा रही हैं। मृत्यु से उन्हें डर नहीं है क्योंकि वह तो जीवन के विकास की सीढ़ी है। अमरता की उन्हें चाह नहीं क्योंकि वह जीवन का ह्रास है। आत्मा अमर है पर जब आत्मा प्रियतम परमात्मा में लीन हो जाती है तो उसकी यह अमरता नष्ट हो जाती है। यह भाव देखिए—

'बिखर कर कनकनके लघुप्राण,
गुनगुनाते रहते यह तान।
अमरता है जीवन का ह्रास,
मृत्यु जीवन का चरम विकास।'

दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन पग एक समान।
अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खींचती हमें इष्ट की ओर।'

सम्पूर्ण बसुधा की वस्तुएँ उसी सत्ता की ओर इंगित कर रही हैं। सब का अस्तित्व इसी की चिर व्यापकता तथा अनन्तता पर अवलम्बित है—

'स्मित तुम्हारी से छलक यह ज्योत्स्ना अम्लान,
जान कब पाई उसका हुआ कहाँ निर्माण।'

तथा—

'तोड़कर वह मुकुर जिसमें रूप करता लास,
पूछता आधार क्या प्रतिबिम्ब का आवास।'

वे भी अपने को उसी सत्ता की चिरविरहिणी समझती हैं और उसी की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती हैं। वे उससे भिन्न नहीं है क्योंकि जैसे सिन्धु के बीचि-विलास अपना कुछ परिचय नहीं दे सकते उसी प्रकार कवयित्री बुद्बुद् प्राण भी उसी महासमुद्र में लीन होते और उसी से प्रकट होते हैं—

'सिन्धु को क्या परिचय दें देव
बिगड़ते बनते बीचि- विलास ?
क्षुद्र हैं मेरे बुद् बुद् प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश !'

इसी भाव को और भी आगे बढ़ाकर कहती हैं :-

'तुम असीम विस्तार ज्योति के, मैं तारक सुकुमार,
तेरी रेखा-रूपहीनता, है जिसमें साकार ।'

तथा :—

"मैं तुझ से हूँ एक, एक है जैसे रश्मि-प्रकाश,
मैं तुझ से हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों घन से तड़ित-विलास;
मुझे बाँधने आते हो लघु सीमा में चुप चाप,
कर पाओगे भिन्न कभी क्या ज्वाला से उत्ताप ?"

यह एक कटु सत्य है कि असीम में मिल जाना ही जीवन का चरम एवम् वास्तविक विकास है। यथा :—

"विश्व जीवन के उपसंहार ।
तू जीवन में छिपा वेणु में ज्यों ज्वाला का वास,
तुझ में मिल जाना ही है जीवन का चरम विकास,
पतझर बन जग में कर जाता
नव बसन्त संचार !"

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि महादेवी जी आत्मा को नित्य मानती हैं। उसके अमरत्व में आस्था रखती हैं। परन्तु क्षण-क्षण परिवर्तित दिखाई देने वाले जगत् की क्षण-भंगुरता को वे बौद्ध मत के समान ही स्वीकार करती हैं। यह सत्य है कि आत्मा का अमरत्व तभी तक बना रहता है जब तक वह परमात्मा में लीन होकर मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेती। वे कहती हैं :—

'जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तब देव ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल !'

—'नीहार'

कवयित्री ने खण्ड में अखण्ड तथा सीमित में असीम को समझने का पूर्ण प्रयास किया है। अनन्त तब तक प्राप्तव्य माना नहीं

माना जा सकता, जब तक शान्त न हो। महादेवी वर्मा में एक बहुत ही प्राञ्जल कवि हृदय है। उनकी काव्य प्रवृत्तियों की विविधता में भी एक ऐसी एकरूपता है, जो हिन्दी के अधिकांश कवियों को प्राप्त नहीं। वे जानती हैं कि—

"विश्व में वह कौन सीमा हीन है,
हो न जिसका खोज सीमा में मिला!
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान् हो?"

कौतूहल के पश्चात् जिज्ञासा आई, फिर रंजित कल्पना और अन्ततः कोमलतम सूक्ष्म सौन्दर्य-भावना। माधुर्य की गूढ़ अनुभूति में सौन्दर्य का उनका आकर्षण उत्तरोत्तर अन्तर्मुखी होता गया और वास्तविक अनुभूतियों को गूढ़तम स्तरों में छिपी आन्तरिक उथल-पुथल को उन्होंने विविध रंगों, ध्वनियों और असारधसा लयमयता में झंकृत किया। किन्तु उनकी भाव-धारा में करुण उच्छ्वास, अश्रु और वेबसी की ग्रन्थि है। उनके अन्तरतम में सहेजे उदात्त सपने धुँधली सी, मीठी मीठी, मादकता उदासी में भरकर कविता में उभरे। 'रश्मि' के गीतों में यह दुःख पतिंगे के समान जल जल उठता है। इस दुख की अभिव्यक्ति में एक अधीरता, आतुरता और अस्थिरता सी है।

'मृग मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पगधर,
रुग्द हृदय के पट लेता कर।'

वे मिलन और चिर तृप्ति चाहने वाली कवयित्री नहीं हैं। वे तो चिर अतृप्ति की अमर साधिका हैं। वैराग्य को साधे वे चिरन्तन लोकोत्तर आलम्बन की ओर बढ़ती दीख पड़ती हैं जिसकी खोज में तृप्ति नहीं, चिर विरह है:—

सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन !

\+ + + +

है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना !
मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर;
रहने दो प्यासी आँखें
भरतीं आँसू के सागर !'

उनके मानस में निरन्तर 'अलि सी मंड़राती विरह पीर है। पीर को संजाये अन्तर में वे विरहिणी रहना चाहती हैं; क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया है कि वास्तविक प्रणय साधना के हेतु मिलन की नहीं विरह की कामना श्रेयस्कर होती है। सुख की प्राप्ति में नहीं। तृप्ति से प्यास और भी द्विगिनत होती है। वास्तविक तृप्ति, वास्तविक सुख तभी प्राप्त होता है जब मधु से ही मन फिर जाये। इसी से तो वे अपनी प्यासी आँखों को चिर अतृप्त बने देने रहना चाहती हैं। उन्हें ज्ञात है कि प्रणय जो कभी सुख का अनुभव कराता था अब विरह का पारावार बन गया है :—

'विरह का तम हो गया अपार,
मुझे अब वह आदान प्रदान;
बन गया है देखो अभिशाप
जिसे तुम कहते थे वरदान !'

अब तो जैसे प्यार की ये मदभरी बातें सब स्वप्न बन गई हैं। मिलन बेला जा चुकी है, केवल उसकी मधुर स्मृति अन्तर को सालती रहती है :—

'अलि अब सपने की बात—
हो गया है वह मधु का प्रात !
जब मुरली का मृदु पंचम स्वर,
कर जाता मन पुलकित अस्थिर,
कम्पित हो उठता सुख से भर,
नव लतिका सा गात !

जो बसन्त बीत गया है उसकी समाधि पर बैठी बैठी कवयित्री अश्रु कण बहा रही है। मिलन के क्षण, प्रेम की बातें अब केवल अतीत की बातें बन कर रह गई हैं :—

'बीते बसन्त की चिर समाधि !
जग-शतदल से नव खेल, खेल
कुछ कह रहस्य की करुण बात, (करुण)
उड़ गई अश्रु सा तुझे डाल
किस के जीवन से मिलन रात !
रहता जिसका अम्लान रङ्ग—
तू मोती है या अश्रु हार !'

वह सर्वदा शून्यता का अनुभव करती रहती हैं। परन्तु इस सूनेपन की भी वह साम्राज्ञी हैं और उसमें प्राणों का ही दीप बनाकर दीवाली मनाती रहती हैं। इस दीवाली मनाने का आयोजन इस हेतु किया गया है कि कभी उनका प्रियतम से मूक-मिलन हुआ था। परन्तु आज वह सब कुछ स्वप्न हो चुका है। आज तो उन्हें पीड़ा के साम्राज्य में ही रहना है जहाँ मिटना ही निर्वाण है। जन्म से ही उनको तो वियोग मिल गया है और वे चिर विरहिणी बन बैठी हैं :—

किसी निर्मम कर का आघात
छेड़ता जब वीणा के तार,
अनिल के चल पंखों के साथ
दूर जो उड़ जाती झंकार,

जन्म ही उसे विरह की रात,
सुनावे क्या वह मिलन प्रभात !'

और भी—

'जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास;
चुरा लाया जो विश्व समीर
वही पीड़ा की पहली सांस !

छोड़ क्यों देते बारम्बार,
मुझे तम से करने अभिसार ?'

लेकिन यह पीड़ा उन्हें अत्यन्त प्रिय है और वे इसे छोड़ना नहीं चाहतीं। बात यह है कि विरही के लिए पीड़ा का ही एक मात्र सहारा होता है। यदि वह भी न रहे तो फिर उसका जीवित रहना ही दुर्लभ हो जाए। उनका कथन है—"दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है परंतु दुख सबको बाँटकर, विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि की मोक्ष है।"

निस्सन्देह उनका यह कथन यथार्थ है। दुख से जीवन में जो बल प्राप्त होता है, उससे आत्मा उज्ज्वल बनती है। उपास्यदेव की आराधना में जितना ही कष्ट अनुभव होगा उतनी ही आत्मा उसके निकट पहुँचेगी। 'नीहार' और 'रश्मि' में उनका यही दुःखवाद तीव्र रूप में प्रकट हुआ है। लेकिन फिर भी महादेवी जी का एक स्वप्न है, जिसकी स्निग्धता से वे भली भाँति परिचित हैं।

उनका विश्वास है कि आज का विषाद किसी दिन सुख में अवश्य परिवर्तित होगा। कभी न कभी तो उन्हें प्रिय की मुस्कान पुनः देखने को मिलेगी। इसी साध को लिये वे अपने निष्फल स्वप्नों को साधे निरन्तर बढ़ रही हैं :—

'सुख-दुख की बुद् बुद् सी लड़ियाँ
बन बन उसमें मिट जातीं,
बूँद बूँद होकर भरती वह
भरकर छलक छलक जाती!
इस आशा से मैं उसमें
बैठी हूँ निष्फल सपने घोल,
कभी तुम्हारे सस्मित अधरों—
को छू वे होंगे अनमोल!

इस प्रकार 'रश्मि' का गीतकाव्य एक आशा जनित निराशा के के साथ समाप्त होता है। महादेवी जी यथार्थ में प्रणय पथ की अमर साधिका हैं जिनका दर्शन है हँसते-हँसते पीड़ा को अन्तर में छुपाये, प्रिय पथ पर बढ़ते जाना। निराशा आती है, हृदय झंझोर जाती है पर उनकी गति में अवरोध नहीं आता, निराश होते हुए भी एक आशा का दीप टिमटिमा रहा है जो सदैव उन्हें बल देता रहता है। 'रश्मि' में पन्त जी की 'गुञ्जन' की भाँति महादेवी जी की फिलासफी (दर्शन) भरी है जिसका पूर्ण उत्कर्ष हमें उनकी 'नीरजा' और 'साध्य गीत' में देखने को प्राप्त होगा। कविता के क्षेत्र में देवी जी आज भी वहाँ हैं जहाँ कल थीं। 'रश्मि' में उनके जीवन की आस्थाएँ, उनका दार्शनिक चिन्तन वय् प्राप्त कर चुका हैं। इसके सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है:—

"रश्मि में मेरी कुछ नई और कुछ पुरानी रचनाएँ संग्रहीत हैं। इसके विषय में मैं क्या कहूँ। यह मेरे इतने निकट हैं कि

उसका वास्तविक मूल्य आँकना मेरे लिये सम्भव नहीं, आँखों में देखने की शक्ति होने पर भी उनसे मिलाकर रखी हुई वस्तु कहीं स्पष्ट दिखाई देती है! हाँ इतना कहने में मुझे संकोच नहीं होगा कि मैं स्वयं अनित्य होकर भी जिन प्रिय वस्तुओं की नित्यता की कामना करने से नहीं हिचकती यह उन्हीं में से एक है।"

अध्याय ५

नीरजा

'नीरजा' महादेवीजी वर्मा के अनुभूति एवं चिन्तन प्रधान अट्ठावन (५८) गीतों का संकलन है। उनके दूसरे संकलनों 'नीहार' और 'रश्मि' की भाँति यह भी काव्यांगों की दृष्टि से मुक्तक गीति-काव्य के अन्तर्गत आती है। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त होने पर जैसा परमानन्द एक साधक को होता है उसी प्रकार का परितोष-भाव 'नीरजा' के अनेक गीतों में परिलक्षित होता है। 'स्नातक' जी के शब्दों में सचमुच 'नीरजा' के विरह, दुख, वियोग और अद्वैतपरक गीतों में एक ऐसी चमक है जो एक साथ मानस को आलोक से परिपूर्ण कर देती है जैसे रात्रि के तमाच्छन्न आकाश में उल्का का प्रकाश सहसा फैलकर उजियाले की दिव्य छटा दिखाता है वैसे ही इन गीतों का आलोक भी, जहाँ कहीं गम्भीर चिन्तन में कवियित्री नहीं उतरी हैं, वहाँ काव्य के चरम सौन्दर्य का दर्शन कराता है।''

'नीरजा' कवयित्री की काव्यानुभूति की तीसरी सोपान हैं। 'नीरजा' तक आते-आते देवीजी का कुतूहल, उनकी रंजित कल्पना क्षीण से क्षीणातर होकर चिन्तन और अनुभूति के रूप में परिवर्तित हो गई है, कवयित्री के मानस में केवल कोरी जिज्ञासा के स्थान पर आनन्द और उल्लास का साम्राज्य फैल गया है। जो भावनाएँ 'नीहार' में मूक थीं वे मुखरित हो गई हैं, जो जिज्ञासायें बन गई थीं उनका यहाँ तक आते-आते समाधान हो गया है और

उन्हें अब एक प्रकार की शांति और विश्वास का अनुभव होता है। उनका दार्शनिक चिन्तन 'नीरजा' तक पहुँचते-पहुँचते पर्याप्त रूप में मँज चुका है, उसमें गम्भीरता समा गई है। अब निःसंदेह वहाँ काव्यांग के साथ एक प्रकार की नैसर्गिक रसानुभूति भी उपलब्ध होती है। श्री रायकृष्णदास जीं के शब्दों में—" 'नीरजा' में 'नीहार' का उपासना-भाव और भी सुस्पष्टता और तन्मयता से जाग्रत हो उठा है। इसमें अपने उपास्य के लिये केवल आत्मा की करुण अधीरता नहीं, अपितु हृदय की विह्वल प्रसन्नता भी मिश्रित हैं। 'नीरजा' यदि अश्रु मुखी वेदना के कणों से भीगी हुई है तो साथ ही आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है। मानो, कवि की वेदना, कवि की करुणा अपने उपास्य के चरण-स्पर्श से पूत होकर आकाश-गंगा की भाँति इस छायामय जग को सींच देने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है।" इस प्रकार 'नीरजा' अश्रु मुखी वेदना के कणों के साथ आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है:—

'प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर !
दुख से आविल सुख से पंकिल,
बुद् बुद् से स्वप्नों से फेनिल,
बहता है युगयुग से अधीर !'

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है कि 'नीरजा' के गीत अनुभूति और चिन्तन प्रधान होने के कारण 'नीहार' और 'रश्मि' के गीतों से अधिक आत्म-चेतना की जागृति गीति-काव्य की आत्मा है। अपने हृदय का हर्ष-विषाद, अश्रु-हास को प्रकट करने का गीत एक ऐसा सरस माध्यम है जिसमें हमारी भावना और अनुभूति को प्रतिफलित होने का पर्याप्त अवकाश मिलता है। स्वयं उन्होंने लिखा है 'गीत का चिरन्तन विषय रागात्मिकावृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख दुखात्मक अनुभूति से ही है। साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है

जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।' महादेवी जी का काव्य में पदार्पण का युग छायावाद का उत्कर्षकाल था पर देवी जी ने छायावादी काव्य प्रणाली की अभिनव मान्यताओं को स्वीकार करके भी उसमें अपना व्यक्तित्व सबसे पृथक् रखा। इस व्यक्तित्व की स्थापना में उन्हें छायावादी प्रवृत्तियों में नूतनता का संचार करना पड़ा जो उनकी रहस्यानुभूति का मूल बीज है। साथ ही साथ छायावाद के मूल दर्शन को जिस समग्रता के साथ इन्होंने पहचाना कदाचित् 'प्रसाद' के अतिरिक्त अन्य किसी छायावादी कवि ने उतनी व्यापकता से उसे ग्रहण नहीं किया। छायावाद के दर्शन का मूल तत्व उन्होंने सर्वात्मवाद में बताकर अपनी काव्य धारा में केवल प्रकृति के प्रति ही प्रीति व्यंजित नहीं की प्रत्युत जड़ चेतन सभी में सार्वत्रिक प्रीति एवम् प्रणय निवेदन देखा। इसीलिए उन्हें छायावादी होने पर भी रहस्यवादी कोटि में मूर्धन्य स्थान प्राप्त है। रहस्यवाद का प्रसार चिन्तन क्षेत्र में ही माना जाता है। अपनी प्रथम रचना 'नीहार' से ही महादेवी जी अद्वैतवाद का सहारा पाकर इस ओर अग्रसर हुई हैं, किन्तु 'नीरजा' में आकर ये चिंतन मात्र से अद्वैत भावना को पल्लवित नहीं करतीं। अनुभूति का आश्रय भी उनका सम्बल बनकर उन्हें रहस्योन्मुख करता है। 'नीरजा' के गीतों में वे अपने प्रियतम को अन्तर में बसा देख कर तुष्ट होती हैं।

मधुर कसक सा आज हृदय में
आन समाया कौन ?
आज क्यों तेरी वीणा मौन ?
झुकती आतीं पलकें निश्चल,
चित्रित निद्रित से तारक चल,
सोता पारावार दृगों में
भर भर लाया कौन ?
आज क्यों तेरी वीणा मौन !

तथा—

कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?
स्वर्ण स्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में !
कौन तुम मेरे हृदय में ?'

रहस्यवादी काव्य में आत्मा-परमात्मा के विरह का वर्णन उनके मिलन और दर्शन की अपेक्षा अधिक मार्मिक और आकर्षक होता है। महादेवी जी विरहिणी प्रेमिका हैं। अतः विरह वर्णन 'नीरजा' में बहुत ही साध्य है। विरह में हृदय की वृत्तियाँ अधिक निखरती हैं तथा हृदय अधिक संवेदनशील रहता है। महादेवी जैसी अमर विरहिणी प्रेमिका तथा साधिका के लिए तो विरह प्रेम का अधिक निखरा हुआ और उत्तम स्वरूप है। विरहिणि केवल स्मरण मात्र से ही जीवन की उपादेयता और सार्थकता का अनुभव कर लेती है। जीवन को विरह का जल जात बताते हुए 'नीरजा' के विरह जन्म उपादानों से ही निर्माण का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

"विरह का जल जात जीवन, विरह का जल जात !
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात,
जीवन विरह का जल जात !
आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल कण से बने घन सा क्षणिक मृदुगात,
जीवन विरह का जल जात !"

संसार को चेतनता से युक्त करने वाला असीम, अज्ञात प्रियतम अणु अणु में व्याप्त रहते हुए भी हमें अपने से दूर ही लगता है और विरही आत्मा आदि काल से करुण विलाप करता हुआ वियोगाग्नि में पलपल जलता रहता है—

'पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं!

× × × ×

अलि कुहरा सा नभ, विश्व
मिटे बुद् बुद्-जल सा;
यह दुख का राज्य अनन्त
रहेगा निश्चल सा;
हूँ प्रिय की अमर सुहागिनी
पथ की निशानी नहीं!
मैं प्रिय पहचानी नहीं!'

हृदय की यह वृत्ति और भी सरल एवम् स्वाभाविक होती है। आत्मा परमात्मा के साथ प्रायः अनेक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। अद्वैत भावना के साथ देवी जी ने हृदय की सच्ची अनुभूति निम्नांकित गीत में अंकित की है। सरल भावों की अभि-व्यंजना के साथ-साथ कला का मूल्यांकन भी करिये—

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुम से हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ!
नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,

तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ,
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!"

प्रिय को पास पाकर आत्मा में अहंकार भाव उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत वह तो अपने को भूलकर पागल सा हो जाता है और अपने को दीन से भी दीन समझने लगता है। आत्मसमर्पण का भाव ही वहाँ रह जाता है। प्रिय के साथ तादात्म्य सुख ही उसका एक मात्र धेय रहता है, उसके परिचय की आवश्यकता नहीं रहती। एकाकार होने पर तो दोनों एक रूप हो जाते हैं, गुणों का भाव तो अन्तर में रहता है। स्वर्ग और अमरता दोनों ही इस स्थिति में पहुँचने पर निःशेष हो जाती हैं।

'तुम मुझ में प्रिय! फिर परिचय क्या!
तारक में छवि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति
भर लाई हूँ तेरी चँचल
और करूँ जग में संचय क्या
तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या!'

निराला जी के 'तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग और मैं चंचलगति सुर-सरिता' का ध्यान हमें इसगीत को पढ़ने पर अनायास ही हो आता है। वास्तव में प्रेयसि और प्रियतम का अभिनय यह कैसा? दोनों तो एक रूप एक स्वरूप हैं। माया का पर्दा पड़े रहने से दोनों में पार्थक्य दिखाई देता है। मोह पाश को समझने पर वास्तविकता का ध्यान हो जाता है—

'चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू, मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं, सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !'

आत्मा परमात्मा का पारस्परिक सम्बन्ध कितना निगूढ़ है यह हमें 'नीरजा' के अनुभूति-पूर्ण गीतों में देखने को मिलता है। आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रणय निवेदन कितना तीव्रतर हो चुका है, आत्मा की परमात्मा से मिलन की साध कितनी स्वाभाविक है। आत्मा का कथन कितना मार्मिक एवम् सरल है जब वह कहती हैं—

'तुम्हें बांध पाती सपने में
तो चिर जीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में !

× × ×

साँसें कहतीं अमर कहानी,
पल पल बनता अमिट निशानी,
प्रिय ! मैं लेती बाँध मुक्ति,
सौ सौ लघुतम बन्धन अपने में !
तुम्हें बाँध पाती सपने में !'

प्रेयसि आत्मा और प्रियतम परमात्मा को संदेश भेजना चाहती है परन्तु वह अपने प्रिय की आकर्षक चितवन, उसकी स्मृति में इस प्रकार खोई हुई है कि प्रयास करने पर भी उसे कुछ लिखकर भेजने में असमर्थ है। वह लिखना क्या चाहती है और क्या क्या लिख जाती है ? वास्तव में प्रेमिका की यह अवस्था कितना अनोखा तथा कितनी स्वाभाविक भी है।

"कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती !
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती !"

उसकी बेसुधी की अवस्था पागलपन तक पहुँच चुकी है। लोग कहते हैं कि उसने मदिरा पी ली है पर उसने तो मधुशाल देखी ही नहीं, उसने तो केवल अपनी आँखे प्रियतम की मादक स्मित में धो डाली हैं—

मैंने कब देखी मधुशाला ?
कब माँगा मरकत का प्याला ?
कब छल की विद्रुम सी हाला ?
मैंने तो उनकी स्मित में
केवल आँखें धो डाली !
क्यों जग कहता मतवाली ?'

प्रियतम की आभा तो उनके अणुअणु से प्रतिबिम्बित हो रही है। अद्वैत वाद के अनुसार आत्मा परमात्मा का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव का सम्बन्ध माना गया है ! यही भावना महादेवी जी के गीत के एक चरण में देखिए—

'दर्पणमय है अणु अणु मेरा,
प्रतिबिम्बित रोम रोम तेरा;
अपनी प्रतिछाया से भोले !
इतनी अनुनय मनुहार न कर !
कहता जग दुख को प्यार न कर !'

दोनों एक दूसरे से अविच्छिन्न भाव से बंधे हैं। आत्मा यदि निस्सीम में लीन हो सकती है तो निस्सीम भी सीमाबद्ध हो सकता है। देखिए किस प्रकार असीम ससीम के लघु हृदय में आबद्ध हो गया है।

'मैं मिटी निस्सीम प्रिय में,
वह गया बंध लघु हृदय में;
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह !'

प्रियतम की छाया प्रेयसी को सर्वत्र सर्वथा घेरे रहती है। हंसने में तथा रोने में दोनों अवस्थाओं में प्रियतम का स्मरण किसी न किसी प्रकार प्रेयसी साधिका कर ही लेती है। वैयक्तिक सुख दुखों से आगे बढ़ कर देवी जी सम्पूर्ण विश्व को संवेदना के सहारे छू लेना चाहती हैं ! विश्व के सम्पूर्ण अणुअणु को वे अपने भावों से तथा उनके द्वारा प्रिय-दर्शन तथा प्रिय-चिंतन से परिचित करना चाहती हैं।

'हँसने में छू जाते तुम,
रोने में वह सुधि आती;
में क्यों न जगा अणु अणु को,
हँसना रोना सिखलाऊँ !'

प्रिय के बहाने प्रेमिका सिकता से भी प्यार करने लगती है। पथ की रेणु में भी उसे अपरिचित प्रियतम के पद चिह्न दिखाई देते हैं। समर्पण तथा विनम्रता की सीमा देखिए कि किस प्रकार देवी जी उसी रेणु को अंजन कर आँखों में बसाना चाहती हैं।

'पथ की रज में है अंकित,
तेरे पद चिन्ह अपरिचित;
मैं क्यों न इसे अंजन कर
आँखों में आज बसाऊँ !'

देवी जी का प्रियतम किसी मंदिर में नहीं है जहाँ वे मीरा की भाँति नाच सकें। वे तो वाह्य पूजा के विधान को भी स्वीकार नहीं करती। उनकी दृष्टि में पूजा या अर्चन व्यर्थ है। जब उनका लघुतम जीवन ही उस असीम का सुन्दर मन्दिर है। जब उनकी श्वासें नित्य प्रिय का अभिनन्दन करती रहती हैं, जब पद रजधोने के

लिए लोचनों के जलकण उनके पास हैं, जब उनका पुलकित रोम ही अक्षत है और पीड़ा ही चन्दन है। जब स्नेह भरा मन झिलमिलाते दीप की भाँति जलता रहता है, जब दृगतारक ही कमल पुष्प का काम देते हैं, जब अधर 'प्रिय-प्रिय' जपते हैं और पलकों का नर्तन ताल देता है, तब बाह्याडंबर की क्या आवश्यकता है? एक भाव गुम्फन देखिए—

"क्या पूजा क्या अर्चन रे?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे!
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनंदन रे!
पद रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल कण रे!
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चंदन रे!
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे!
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे!
धूप बने उड़ते रहते हैं, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे!
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे!"

आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन 'नीरजा' के गीतों में प्रचुर मात्रा में है। वैयक्तिक सुख दुख की सीमा को पार कर जब आत्मा दुख वेदना के द्वारा भी सुख और हर्ष का अनुभव करने लगती है, तभी भावात्मक रहस्यवाद का चरम उत्कर्ष काव्य में आता है। भावात्मक रहस्यवाद के चित्र-प्रस्तुत करने वाले कवि को लौकिक सुख-दुख को अलौकिक में लीन करने की क्षमता होना अनिवार्य है। महादेवीजी ने स्वयं लिखा है—'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिससे अनायास ही मेरा हृदय सुख दुख में सामंजस्य का अनुभव करने लगा, यही कारण है कि 'नीरजा' में व्यक्त वेदना के गीत आनन्द का पथ प्रशस्त करते हैं, दुख का नहीं। यह वेदना अलौकिक होकर आत्मानंद से परिपूर्ण हो जाती है और प्रियतम तक ले जाने में सहायता होती है। "कौन तुम मेरे हृदय में' गीत

में इसी प्रकार की मधुर वेदना के रूप को अंकिन किया गया है। वेदना द्वारा ही प्रियतम की प्राप्ति की गई है।

'पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में।'

प्रिय की दी हुई वेदना इतनी मधुर हो गई है कि सुखदुख में कोई अन्तर ही नहीं रह गया है। वेदना का आवेग बढ़ने पर उसमें एक अलौकिक प्रतिभा सिंचन शक्ति जागृत हो गई है।

'एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी
मधुर वेदना से भर अन्तर,
दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय,
उपल बनें पुलकित से निर्झर;
मरु हो जावे उर्वर गायक!
गा लेने दो क्षण भर गायक!'

सुख और दुख दोनों ही एक समान प्रियतम का पथ अवलोकन करने में संलग्न हैं और प्रियतम है कि उसका वास्तविक पता ही नहीं चलता। एक श्वास में यदि उसके आगमन का अनुभव कर पाती हूँ तो दूसरे ही क्षण ऐसा प्रतीत होता है कि वह मेरी निश्वास द्वारा मुझ से दूर चला जा रहा है। प्रियतम कुछ इस प्रकार घुलमिल गया है कि उसके आने जाने जा भान ही नहीं हो पाता है।

'श्वासें कहतीं 'आता प्रिय'
निश्वास बताते 'वह जाता';
आखों ने समझा अन जाना
उर कहता चिर यह नाता;
सुधि ने सुन 'वह स्वप्न सजीला
क्षण क्षण नूतन बन आता,
दुख उलझन में राह न पाता
सुख दृग-जल में बह जाता!'

आत्मा का अलौकिक प्रियतम के विछोह में निराश होना तथा अश्रु बहाना स्वाभाविक ही है। महादेवी जी अलौकिक प्रियतम की लौकिक साधिका के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं पर वे सर्वथा लौकिक सीमाओं से ऊपर उठकर अलौकिक के पथ में बिछी जाती हैं।

'मैं बनी मधुमास आली!
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु में छिटकी पुलक की चाँदनी;
उमड़ आई री दृगों में
सजनि कालिन्दि निराली!'

और अब वेदना और भी गहन हो उठी है। जिस दर्पण—मन के दर्पण में वे अपने 'प्रिय' का स्वरूप निहारती रहती थीं अब तो वह भी चूर चूर हो गया और उन्हें केवल प्रियतम के स्थान पर अपनी ही छाया ने आ घेरा। अर्थात् प्रियतम के विरह का आवेग इतना प्रबल हो चुका है कि उन्हें सर्वत्र विषाद की भावनाएँ ही घेरती दृष्टिगोचर होती हैं।

'टूट गया वह दर्पण निर्मम!
उसमें हंस दी मेरी छाया,
मुझ में रो दी ममता माया,
अश्रु हास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँख मिचौनी
प्रिय! जिसके परदे में 'मैं' 'तुम'!
टूट गया वह दर्पण निर्मम!'

प्रिय तो उनका सर्वस्व है, फिर उनसे वे अपने आँसुओं का क्या मोल करेंगी। अपने 'प्रिय' से तो 'मोल' 'व्यवहार' की बातें न तो शोभनीय ही होती हैं और न स्वाभाविक ही।

आँसू का मोल न लूँगी मैं !
यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पन्दन;
यह जग क्या ? लघु मेरा दर्पण;
प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन;
मेरे सब सब में प्रिय तुम,
किससे व्यापार करूँगी मैं ?
आँसू का मोल न लूँगी मैं !'

प्रिय के नाते सम्पूर्ण विश्व ही तो उनका हो गया है, फिर व्यापार भाव का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। सर्वात्मभाव का यहाँ उत्कर्ष देखने को मिलता है। वेदना और दुख की स्थिति को महादेवी जी सदैव उच्च स्थान देती हैं। 'दुःख मेरे निकट-जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।' दुख के आत्मिक रूप को उन्होंने अपनी कविता में मुखरित किया है। प्रियतम के आह्वान में भी दुःख मार्ग का संकेत इस बात का द्योतक है कि वे दुख को त्याग, उत्सर्ग और समर्पण का साथी संगी मानती हैं। दुखवाद 'नीरजा' के गीतों में जहाँ कहीं व्यक्त हुआ है वहाँ लौकिक सीमाओं से ऊपर अलौकिक आनंद पथ को प्रशस्त करता हुआ ही है—

"तुम दुख बन इस पथ से आना !
शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन'
क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय को बिंधवाना !"

तथा—

'तुम चुपके से आ बस जाओ,
सुख दुख सपनों में श्वासों में;
पर मन कह देगा 'यह वे हैं'
आँखें कह देंगी 'पहचाना'!

दुख में अपने अस्तित्व को लीन करके आत्मानंद लाभ करना ही जीवन की सार्थकता है, 'मिटने वालों की बेसुध रंगरलियाँ' ही विश्व में सौरभ, राग, आलोक और वस्यकी सृष्टि करती है।

'मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू लड़ियाँ देखो,
मेरे गीले पलक छुओ मत मुर्झाई कलियाँ देखो।

दुख में सम्पूर्ण विश्व अपना सा प्रतीत होता है। तिल तिल मिट कर ही सम्पूर्ण जीवन का निर्माण होता है। श्वासों को खोकर ही दिव्य से जीवन-मुक्ति का व्यापार करते हैं।

"दुख में जाग उठा अपनेपन का सोता संसार;
सुख में सोई री प्रिय-सुधि की अस्फुट सी झंकार;
हो गये सुख दुख एक समान !
बिन्दु बिन्दु ढुलने से भरता उर में सिन्धु महान;
तिल तिल मिटने से होता है चिर जीवन निर्माण;
न सुलझी यह उलझन नादान !
पल पल के झरने से बनता युग का अद्भुत हार;
श्वास श्वास खोकर जग करता नित दिन से व्यापार
यही अभिशाप यही वरदान !"

जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि देवी जी को तीन वस्तुएँ बहुत प्रिय हैं—तम, प्रियतम, और सूनापन। तीनों का एक दूसरे से अभिन्नतम सम्बन्ध है। उनके प्रिय को तम के पर्दों में आना आता है, ऐसा उनका अपना विश्वास है। तम का यहाँ अर्थ है विरह रूपी अन्धकार। विरह की दशा में प्रिय स्मृति के बहाने सदैव हृदय पटल पर अङ्कित रहा है। सुख मानव का वास्तविक स्वरूप नहीं। सुख में हम अपने को पूर्णतः भूले रहते हैं और सदैव हमें अहम् भाव घेरे रहता है, परन्तु दुख में हमारे हृदय का परिष्कार हो जाता है, और हम पुनीत होकर आराधना क्षेत्र में उतर आते हैं। इसी से साधिका महादेवी को विरह रूपी तम अधिक प्रिय है।

"तम हो तुम हो और विश्व में
मेरा चिर परिचित सूनापन,
मेरी छाया हो मुझ में लय
छाया में संसृति का स्पन्दन,
मैं पाऊँ सौरभ सा जीवन
तेरी निश्वासों में घुल मिल !"

इस दुख से संतप्त होने पर आत्मा की क्षिपिता इतनी हो जाती है कि वह सब कुछ सहने में अपने को समर्थ पाती है। मृत्यु का भी भय उसे रंचमात्र भी आतंकित नहीं करता। संसार की समस्त विभीषिकाओं पर विजय प्राप्त कर परमात्मा के मिलन के लिये उन्मुख आत्मा सतत् अपने पथ पर अग्रसर होती रहती है। आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व के साथ इसमें प्रकृति या विश्व का अस्तित्व भी रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता हुआ दृष्टिगत होता है। द्वैत रहित होकर ही संकल्प विकल्प की द्विविधा मिटती है। अभिन्नता आ जाने पर जड़-चेतन सभी कुछ तद्रूप भासने लगता है—

"यह क्षण क्या द्रुत मेरा स्पन्दन,
यह रज क्या नव मेरा मृदु तन,
यह जग क्या लघु मेरा दर्पण,
प्रिय तुम क्या चिर मेरे जीवन !"

'नीहार' और 'रश्मि' के गीतों में प्रकृति उनके साथ सहानुभूति प्रकट करती थी परन्तु 'नीरजा' के गीतों से ज्ञात होता है कि यहाँ तक आते आते देवी जी को विश्वास हो चुका है कि प्रिय आगमन की बेला अब सन्निकट आ पहुँची है, अतः उनके आगमन से पूर्व चिर सुहागिनी का आभरण उन्हें अपने अङ्ग प्रत्यंग पर लगाना है। इसी से तो महादेवी जी बसन्त रजनी को शृङ्गार करने के लिए उत्साहित करती हैं—

'तारक मम नव वेणी बंधन
शशि फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि वलय सित धन अवगुंठन
मुक्ताहल अविराम बिछा दे चितवन से अपनी
पुलकती भार वसन्त रजनी।'

'नीरजा' की मूलभावना 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल' वाली कविता में हमें देखने को प्राप्त होती है। यहाँ पर दीपक कवि के व्यक्तित्व उसके प्राणों का प्रतीक मात्रा है। अपने जीवन के अणु-अणु को दीपक की 'लौ' की भाँति जलाती हुई कवयित्री महादेवी जी अपने प्रियतम का पथ अलौकिक करना चाहती हैं। अपने मोम की भाँति गलाकर आलोक फैलाने वाली दीपशिखा में विश्वकल्याण और संसार सेवा का जो उदात्त आदर्श दृष्टिगत होता है वह केवल काव्य का ही नहीं प्रत्युत संसार का आदर्श है—

'मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
युग युग प्रतिदिन, प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा धुल रे मृदु तन,
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल!"

जितना उनके प्राणों का दीपक जलता जायेगा उतना ही उनका अज्ञात प्रिय उनके समीप आता जायेगा—

"तू जल जल होता जितना क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल!
मदिर मदिर मेरे दीपक जल!
प्रियतम का पथ आलोकित कर!"

भावपक्ष के साथ ही साथ 'नीरजा' की काव्य सामग्री भी बहुत समृद्ध है। प्रकृति के अनेक दृश्य चित्र जहाँ उनकी भावनाओं को उत्तेजित करते हैं वहाँ साथ ही साथ प्रकृति वर्णन के भी सुन्दरतम स्थल प्रस्तुत करते हैं। 'नीरजा' के गीतों के साथ लोक गीतों और उर्दू शैली से रूपान्तर करके नवीन गीतों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। 'नीरजा' छन्द, लय, संगीत, ध्वनि, ताल आदि की दृष्टि से छायावादी युग की श्रेष्ठतम रचना मानी जा सकती है। 'नीरजा' में गीतिकाव्य का चरम विकास हमें देखने को प्राप्त होता है, ऐसा मेरा अपना विश्वास है।

——

अध्याय ६

सान्ध्य गीत

'सान्ध्य गीत' में महादेवी जी की ४५ काव्य रचनाएँ संकलित हैं। 'सान्ध्यगीत' वास्तव में आपके जीवन का सान्ध्यगीत ही है, क्योंकि आपके काव्य की 'दीपशिखा' कुछ हल्की जान पड़ रही है। यहाँ आपका मौन अधिकाधिक गहरा और गम्भीर होता गया है। पहले जैसी आत्म प्रवंचना, अन्तर्द्वन्द्व, आशा निराशा, 'सान्ध्यगीत' की रचनाओं में दृष्टिगत नहीं होती है। 'सान्ध्यगीत' तक पहुँचते पहुँचते उनका दुःखवाद क्रन्दन, सजल नयन, दीर्घ विश्वास से होता हुआ निस्तब्ध हो चुका है, अथवा इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि 'सान्ध्यगीत' में यह दुःखवाद शान्त, स्निग्ध और कोमल रूप धारण कर चुका है। 'सान्ध्यगीत' के वक्तव्य में आप कहती हैं।

'दुःखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्तक्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है, जिसमें संयम का नितान्त, प्रभाव है, उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में है, जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की संभावना रहती है, उसका प्रकाशन एक दीर्घ निःश्वास में भी है, जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती, और उसका प्रकटीकरण निःस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्तक्रन्दन के पीछे छिपे हुए संयम से बांधना होगा, तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भावना

उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।' इस वक्तव्य की सहायता से हम आपके दुःखवाद का इतिहास समझ सकेंगे। क्रन्दन, भीगा आतुर हृदय और गीले नयन दीर्घ निःश्वास, फिर निस्तब्धता—यह विकास का स्वाभाविक क्रम मानना होगा। महादेवी के अपने शब्दों में देखिए—

'सान्ध्य गीत' में नीरजा के समान ही कुछ स्फुट गीत संग्रहीत हैं। नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली ऊषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। 'रश्मि' को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था। परन्तु नीरजा और सान्ध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थितियों को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख दुख में सामंजस्य का अनुभव करने लगा। धीरे-धीरे सुख दुख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अब अन्त में मेरे मन ने न जाने कैसे उस बाहर भीतर में एक सामञ्जस्य सा ढूँढ़ लिया है, जिसने सुख दुख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।'

मन की उत्तेजना शांत होने पर, कुतूहल भावना के शांत हो जाने पर तथा मन में संवेदन शक्ति के जागृत होने पर सम्पूर्ण विश्व एक समान लगाने लगते हैं। जैसे—

'विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा
दुःख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ न सीखा!
मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की भावना ले!'

ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे सम्पूर्ण विश्व में उनकी अपनी ही प्रतिच्छाया हो। इसका एक मात्र कारण है सम्पूर्ण प्रकृति में

प्रिय के सम्बन्ध से चेतन सत्ता का आरोप तथा उससे अपने हृदय का अभिन्न रागात्मक सम्बन्ध एक गीत का देखिए—

'घुल गई इन आँसुओं में देव जाने कौन हाला,
झूमता है विश्व पी पी घूमती नक्षत्र माला।'

छायावाद में प्रकृति का कई रूपों में उपयोग हुआ है। कहीं वह सचेतन मान की बनकर सम्मुख आई, कहीं स्वतन्त्र चित्रण के केन्द्र के रूप में और कहीं मानव मन में उठती सुख दुःखात्मक अनुभूतियों के व्यक्तिकरण में सहायता देने के लिए। यह अन्तिम रूप ही प्रमुख है जिसमें मानव ने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। छायावाद में कहीं तो भावनाएँ ही प्रकृति चित्रण का माध्यम हुई हैं—

'प्रिय! सान्ध्य गगन
मेरा जीवन!
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भी ने स्वप्न रँगीले घन!
साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन!'

और कहीं प्रकृति चित्रण ही से भावनाएँ व्यक्त हुई हैं—

'आढ़े मेरी छाँह
रात देती उजियाला,
रज कण मृदु-पद चूम
हुए मुकुलों की माला!
मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही हैं।'

और कहीं दोनों का समानुपात हुआ है। प्रकृति और मानवीय भावनाओं का जहाँ पूर्णतः तादात्म्य हो उठा है उसके उदाहरण में दो छन्द देखिए।

'आज मेरे नयन के तारक हुए जल जात देखो!
अलस नभ के पलक गीले,
कुन्तलों से पोंछ आई;
सघन बादल भी प्रलय के
श्वास से मैं बाँध लाई;
पर न हो निस्पन्दता में चंचला भी स्नात देखो!'

तथा—

'री कुँज की शेफालिके!
गुद गुदाता बात मृदु उर,
निशि पिलाती ओस मद भर,
आ भुलाता प्रात-मर्मर,
सुरभि बन प्रिय जायगा पट—
मूँद ले दृग द्वार के!'

प्रकृति के रूपों, दृश्यों और भावों को महादेवीजी ने एक चेतन व्यक्तित्व दे दिया है। इसे यों कहें कि प्रकृति उनके साथ ही उनके प्रियतम के प्रति आत्मा निवेदन में सहायक होकर समर्पित हो गई है, तो अधिक संगत होगा। 'सान्ध्यगीत' में वे एक स्थान पर लिखती हैं—

"जाग जाग सुकेशिनी री!
अनिल ने आ मृदुल छोले,
शिथिल वेणी-बन्ध खोले,
पर न तेरे पलक डोले,
बिखरती अलकें झरे जाते
सुमन वरवेषिनी री!

× × × ×

रूपरेखा उलझनों में,
कठिन सीमा बन्धनों में,
जग बँधा निष्ठुर क्षणों में;
अश्रुमय कोमल कहाँ तू
आ गई परदेशिनी री।"

यही रूप उनके काव्य में अधिक प्रमुखता रखता है। वैसे महादेवी जी भी अन्य कवियों की भाँति ब्रह्म की ओर जाती हुई प्रकृति के सौन्दर्य से आकर्षित होकर उसमें कुछ देर खो जाती हैं—

"आज सुनहली बेला!
आज क्षितिज पर जाँच रहा है तूली कौन चितेरा!
मोती का जल सोने की रज विद्रुम का रंग फेरा!
क्या फिर क्षण में,
सान्ध्य गगन में
फैल मिटा देगा इसको
रजनी का श्वास अकेला?"

परन्तु ऐसी कविताओं में भी अन्त में पहुँच कर वे अपने जी की जलन को व्यक्त कर देती हैं। बात वास्तव में यह है कि मन की व्यथा का व्यक्ति-करण इन्हें इतना प्रिय है कि उसे वे बचा नहीं सकतीं, सर्वत्र उनकी छात्रा आ ही जाती है। प्रकृति का सबसे सुन्दर स्वरूप वहाँ देखने को प्राप्त होता है जहाँ कवयित्री ने प्रकृति के साथ अपने जीवन को एकाकार कर दिया है। इस दृष्टि से ऊपर दिया गया 'प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन' सबसे उत्कृष्ट बैठता है। इसी प्रकार के और भी खंड रूपक 'सान्ध्यगीत' में देखने को प्राप्त होते हैं—

'मैं नीर भरी दुःख की बदली!
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली!'

इस प्रकार महादेवी जी में प्रकृति के अनेकों रंगीन चित्र हैं पर वे सब या तो उनकी भावना से रंगे हैं या उनमें उनकी भावना व्याप्त है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति महादेवी जी के जीवन में एकाकार होकर उनमें विरह मिलन की अनुभूतियों के चित्रण में सहायक हो गई है। अब हम उनके रहस्यगीतों की ओर उन्मुख होते हैं। प्रकृति में मानवी भावों की छाया या उसके साथ मानव भावना का तादात्म्य महादेवी जी की सम्मति में छायावाद है और जब प्रकृति में एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोप कर उसके प्रति आत्म निवेदन किया जाता है, तब रहस्यवाद हो जाता है। अर्थात् रहस्यवाद छायावाद की दूसरी सीढ़ी है, ऐसा महादेवी जी का मत है। उनके काव्य में चिन्तन का प्राधान्य है और चिन्तन दार्शनिकता की ओर अग्रसर करता है, जिसके भाव प्रकाशन को हम रहस्यवाद कहते हैं। आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं। माया के आवरण के कारण आत्मा अपने विशुद्ध स्वरूप को भूल बैठती है। यदि साधना द्वारा माया के आवरण को हटा दिया जाये तो उसे परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। साधना और विरह के द्वारा साधक अपने प्रिय की ओर निरन्तर बढ़ता जाता है और उस पथ पर चलते हुए अपने अभिमान का समर्पण भी करना पड़ता है, उसे विरह की तीव्र वेदना भी सहनी पड़ती है। देवी जी लिखती हैं—

'यह लो प्रिय ! निधियों मय जीवन,
जग की अक्षय स्मृतियों का धन,
सुख-सोना, करुणा-हीरक-कण,
तुम से जीता आज तुम्हीं को हारती !
प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती !'

यह विरह की तीव्र वेदना ही रहस्यवादी कवि के काव्य का प्राण होती है। ऐसे स्थलों पर वह लौकिकता के रूपकों को अपनाने के लिए बाध्य होता है। जैसे—

'क्या न तुमने दीप बाला
यह जला निज धूम पीकर,
जीत डाली मृत्यु जीकर,
रत्न सा तम में तुम्हारा
अंक मृदु पद का संभाला !'

महादेवी जी ने स्वयं इस सम्बन्ध में कहा है कि रहस्यवाद में मर्मस्पर्शी व्यंजना के लिए लौकिकता का आधार अत्यन्त आवश्यक होता है। उनके शब्दों में 'जायसी की परोक्षानुभूति चाहे जितनी ऐकान्तिक रही हो परन्तु उनकी मिलन-विरह की मधुरस्पर्शी अभिव्यंजना क्या किसी लोकोत्तर लोक से रूपक लाई थी ? हम चाहे आध्यात्मिक संकेतों से अपरिचित हों परन्तु उनकी लौकिक कला-रूप सप्राणता से हमारा पूर्ण परिचय है। कबीर की ऐकान्तिक रहस्यानुभूति के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। महादेवी जी अपने को उसी एक मात्र सत्ता की चिर विरहिणी समझती हैं और उसी की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती हैं। उनका प्रियतम नींद में उनके पास आता है तो उन्हें भान होता है।

'अश्रु मेरे मांगने जब
नींद में वह पास आया !
स्वप्न सा हंस पास आया !
हो गया दिव की हंसी से
शून्य में सुर चाप अंकित;
रश्मि रोमों में हुआ
निस्पन्द तम भी सिहर पुलकित;

× × ×

अंक में तब नाश को
लेने अनन्त विकास आया।'

पर दूसरे ही क्षण उन्हें ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनका सम्पूर्ण सौन्दर्य प्रसाधन तथा अभिनव श्रृंगार जो कि उन्होंने विराट की मिलन उत्कंठा में प्रकृति के उपकरणों द्वारा किया है, व्यर्थ हो गया है क्योंकि प्रियतम है कि रीझ ही नहीं सका—

'क्यों वह प्रिय आता पार नहीं?
शशि के दर्पण में देख देख,
मैंने सुलझाये तिमिर केश;
गूँथे चुन तारक-परिजात,
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष;
क्यों आज रिझा पाया उसको,
मेरा अभिनव श्रृंगार नहीं?'

'सान्ध्यगीत' में देवी जी को पूर्ण विश्वास हो चुका है कि सर्वत्र प्रियतम की छाया ही, उसकी एक मात्र शक्ति ही लीला करती हुई देखने में आती है और स्वयं वे भी उस विराट प्रियतम की मूक छाया काया से पृथक् नहीं हो सकती, ठीक उसी प्रकार वे भी प्रियतम से भिन्न नहीं हैं तथा उनके शरीर तथा मस्तिष्क में जो भी क्रिया कलाप होते हैं वे सब उसी के कारण हैं—

'मैं किसी किसी की मूक छाया हूँ न क्यों पहचान पाता!
उमड़ता मेरे दृगों में बरसता घनश्याम में जो,
अधर में मेरे खिला नव इन्द्र धनु अभिराम में जो,
बोलता मुझ में वही जग मौन में जिसको बुलाता!'

साधिका के प्राण अपने 'प्रिय' से मिलन के लिए अधीर हो उठे हैं। उसके हृदय में क्रान्ति का ज्वर समा गया है। उसके नेत्र क्षितिज के उस पार रहस्य को देखने को लालायित हैं। यही हृदय के आवेग की सीमा हो जाती है—

'फिर विकल हैं प्राण मेरे !
तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है !
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?
क्यों मुझे प्राचीर बनकर,
आज मेरे श्वास घेरे !'

विकलता इतनी तीव्रतर हो चुकी है कि उन्हें अपनी श्वासें ही प्राचीरें सदृश दिखाई देती हैं। आत्मा की परमात्मा से मिलन की उत्कंठा कितनी स्वाभाविक और कितनी आवेग पूर्ण है। और वे चिरसत्य को सम्बोधन करके कहती हैं—

'हे चिर महान् !
मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप;
तन तेरी साधकता छूले,
मन ले करुणा की थाह नाप !
उर में पावस दृग में विहान !'

और वे उस चरमसत्य से पूर्णरूपेण साक्षात्कार करने के हेतु कटिबद्ध हो जाती हैं और उनका पथ का बाना देखते ही बनता है—

"चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझ को दूर जाना !
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प होले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रोले;
आज पी आलोक को डोले तिमिर घोर छाया,
जाग या विद्युत शिखाओं में निठुर तूफान बोले !
पर तुझे है नाश-पथ पर चिन्ह अपने छोड़ जाना !
जाग तुझ को दूर जाना !"

यहाँ रहस्यवाद की पूर्ण सृष्टि हुई है। वे अपने सुप्त मानस को चेतनावस्था में लाने का प्रयत्न करती हैं क्योंकि उन्हें यात्रा पर

जाना है। वह यात्रा विराट के साक्षात्कार के अतिरिक्त और क्या हो सकती है। और अब आते आते उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया है कि प्रियतम उनका है और वे चिर प्रियतम की हैं। डर का स्थान अब पूर्णतः समाप्त हो गया है। उनका प्रिय तो चिरन्तन है और इसी में वे भी चिर सुहागिनी हैं।

'प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं!
श्वास में मुझको छिपाकर वह असीम विशाल चिर घन,
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध सा बन,
छिप कहाँ उसमें सकी
बुझ बुझ जली चल दामिनी मैं!'

चिरन्तन प्रिय को पाकर उनका सुहाग भी अमर हो गया है और वे अमर सुहाग पाकर इतनी कोमल एवम् अनुराग पूर्ण हो चुकी हैं कि उन्हें प्रत्येक वस्तु कोमल और पुलकित दीख पड़ती है। इसी से वे कहती हैं—

'सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी!
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी!
किसको त्यागूँ किसको माँगूँ,
है एक मुझे मधुमय विषमय;
मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय!
पालूँ जग का अभिशाप कहाँ
प्रतिरोमों में पुलकें लहरीं!''

समस्त विश्व का सुख दुःख प्रियतम के कारण मधुर बन जाता है और साधिका का स्पर्श पाते ही काँटे, कलियाँ और प्रस्तर सब रसमय हो जाते हैं। उनकी आत्मा न जाने कितने समय से परोक्ष प्रियतम से एकाकार करने को क्रन्दन कर रही थी पर माया के

कारण दोनों का मिलन सम्भव न हो सका। पर अब वे कहती हैं कि बड़ी साधना और प्रयास से मैं अपने प्राणों के क्रन्दन तथा मन की लालसाओं और इच्छाओं को बन्द कर सकी हूँ और अब एक रस होकर मेरा यह लघु जीवन निःसीम प्रियतम में समा गया है।

'है युगों की साधना से
प्राण का क्रन्दन सुलाया;
आ लघु जीवन किसी
निःसीम प्रियतम में समाया!"
राग छलकाती हुई तू आज इस पथ में न हँसना!

प्रतिपल प्रतिक्षण उन्हें किसी अतीत का स्मरण हो आता है। माया में फसने से पूर्व आत्मा परमात्मा में लीन थी और यही स्मरण आत्मा को अब भी माया से आवेष्ठित होकर भी हो आता है। आखिर युगों का चिर बन्धन कैसे टूटे? स्मरण होने पर ऐसा प्रतीत होती है।

'मेरा प्रतिपल छू जाता है
कोई काला तीत;
स्पन्दन के तारों पर गाती
एक अमरता गीत!
भिक्षुक सा रहने आया दृग तारक में आकाश!'

प्रियतम के पद चिन्हों का आभास पाकर उनके अलसित शरीर में विद्युत सी चमक जाती है और इनके एक एक अश्रुकल में शत् शत् स्वप्न झांकने लगते हैं। उनके हृदय की सम्पूर्ण उदासी प्रसन्नता में परिवर्तित हो जाती है और उनके नयनों में अनेकों सुरभित स्वप्न साकार हो उठते हैं—

'अलसित तन में विद्युत सी भर,
वर बनते मेरे श्रम सीकर;
एक एक आँसू में शत शत
शत दल स्वप्न खिले!
सजनि प्रिय के पद चिन्ह मिले!'

महादेवी जी अनन्त प्रियतम की अनन्त साधिका हैं जिनका धर्म है पथ पर अड़िग बढ़ते जाना। उनके पथ का केवल पाथेय उनके प्रियतम की स्मृति ही है और उनका हृदय दीपक का प्रकाश है जो निरन्तर दीपक की लौ की भाँति क्षीण होता जाता है। प्रियतम के अनुसंधान में तथा उसको पाने के हेतु कष्टों का आना अनिवार्य है, अतः रहस्यानुभूति तथा आत्मनिवेदन के साथ दुःख बाद का सम्मिश्रण भी देखने को मिलता है। पर दुःखवाद तो उस अग्नि के सदृश है जिसमें गल-गल कर साधक का मन स्वर्ण की भाँति अधिकाधिक निरखता है। महादेवी जी प्रियतम की सुधि को मानस में बसाये विरह पथ पर बढ़ रही हैं—

"दिन रात पथिक थक गए लौट,
फिर गए मना कर निमिष हार;
पाथेय मुझे सुधि मधुर एक,
है विरह पन्थ सूना अपार!"

अपने दुख को सम्बोधित कर महादेवी जी कहती हैं कि विरह की घड़ियाँ उन्हें मधु की यामिनी सदृश लगती हैं। 'नीहार' आदि 'रश्मि' की भाँति अब उनका हृदय विरह से आकुल नहीं हो जाता है प्रत्युत उसमें सहने की क्षमता अधिक आ गई है और अब उसे विरह भाने लगता है।

"विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी सी!
दूर के नक्षत्र लगते पुतलियों से पास प्रियतर,
शून्य नभ की मूकता में गूँजता आह्वान का स्वर,
आज है निःसीमता
लघु प्राण की अनुगामिनी सी!"

विरह की मादकता तो उन्हें इतनी भली लगने लगती है कि अब तो उन्हें उजयाली अच्छी ही नहीं लगती है। पीड़ा का चसका इतना अधिक हो गया है कि तिमिर, विरह, दुःख शब्दों से उन्हें अधिक सान्त्वना प्राप्त होती है। अब तो अपने अश्रु भी मीठे लगते हैं—

"क्या तिमिर कह जाता करुणा ?
क्या मधुर दे जाती किरण ?
किस प्रेम मय दुख से हृदय में
अश्रु में मिश्री घुली ?
मधु से भरा विधु पात्र है,
मद से उनींदी रात है;
किस विरह में अवनत मुखी
लगती न उजियाली भली ?"

और वे आगे चलकर इन्हें भावों को बढ़ाती हुई कहती हैं कि मिलन का नाम मत लो क्योंकि मिलन के पश्चात् तो विरह की पीड़ा का आनन्द ही आता और साधना समाप्त हो जाती है। उन्हें तो चिर विरह ही प्यारा है, चिर विराट की भाँति। उनका यदि कोई इस संसार में साथी है तो केवल अंधेरा—

"शलभ मैं शापमय वर हूँ !
किसी का दीप निष्ठुर हूँ !
ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ शृंगार माला,
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रंग शाला;
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ !

शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा;
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला-केवल अंधेरा;
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ !"

आँसू, करुणा और शूलों को गले लगाती हुई वे अपनी मिटती साधों को किस प्रकार निम्नांकित रूपक में उतारती हैं—

'शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !
अर्चना हों शूल भोले,
क्षार-दृग-जल अर्घ्य होले;
आज करुणा-स्नात उजाला
दुःख हो मेरा पुजारी ।'

उनको वेदना में संतोष प्राप्त होता है क्योंकि बिना उल्लास तथा संतोष के काव्य की रचना सम्भव ही नहीं है। काव्य रचना की मूल प्रेरणा सुख से ही होती हो, पर अपनी रुचि भिन्नता के कारण उनका विषय चाहे जैसा कुछ हो। महादेवी जी ने अपनी सारी उत्कण्ठा, विह्वलता तथा उद्वेग को लेकर अपने जीवन के अतिथि का अनुसन्धान करना चाहा है। वे अपने दीपक को युग-युग तक निष्कम्प जलने का वरदान ही मांगती हैं—

'प्रिय मेरा चिर दीप जिसे छू
जल उठता जीवन,
दीपक का आलोक शलभ
का भी इसमें क्रन्दन !
युग युग जल निष्कम्प इसे जलने का वर पाना !'

वे निरन्तर जल-जल कर केवल चिर अनुरागिनी रहने का ही वरदान मांगती हैं। यदि इतना ही इन्हें प्राप्त हो जाय तो सब कुछ मिल जाएगा। प्रियतम के प्रति अनुराग का रहना तथा उसकी स्मृति लिए तिलतिल क्षीण होना आत्मा की चरम साधना है।

"दीप सी युग युग जलूँ पर वह सुभग इतना बता दे,
फूँक से उसकी बुझूँ तब क्षार ही मेरा पता दे!
वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं!
सजल सीमित पुतलियाँ पर चित्र अमिट असीम का वह
चाह एक अनन्त बसती प्राण किन्तु ससीम सा यह;
रज कणों में खेलती किस
विरज विधु की चाँदनी में?"

महादेवी जी ने अपने जीवन की साधना को विभिन्न रूपों में अंकित किया है। कहीं पर वे अपने को तिलतिल जलती हुई दीप शिखा की भाँति निरन्तर मिटने वाली सधिका कहती हैं और कहीं अपनी समता उन्होंने सजल बदली से की है। कारण दोनों का एक ही है। वे चिर साधना में लीन रहना चाहती हैं। तृप्ति और मिलन की कामना उन्हें नहीं है, वे तो चिर विरह, चिर अतृप्ति और अश्रु शृंगार को ही अपना साथी मानती हैं। वे कहती हैं—

'जन्म से यह साथ है मैंने इन्हीं का प्यार जाना;
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना;
इन्द्र धनु से नित सजी सी,
विद्यु हीरक से जड़ी सी,
मैं भरी बदली रहूँ
चिर मुक्ती का सन्मान कैसा!'

सारांश यह है कि महादेवी जी में दुःख वाद मिश्रित रहस्य-वाद का स्वाभाविक विकास 'सान्ध्यगीत' में दृष्टि गोचर होता है। कहना अनुचित न होगा कि वे कबीर और जायसी के पश्चात् हिन्दी में रहस्यवाद की परम्परा को आगे बढ़ाने वाली एक मात्र कवयित्री हैं। मीरा की सी तीखी और सरल अनुभूति यद्यपि उनमें नहीं है, परन्तु कल्पना के मधुर संयोग से उन्होंने जिस भावना लोक में अपने प्रियतम के साथ आँख मिचौनी खेली है और प्रकृति

के माध्यम से उससे साक्षात्कार किया है, वह मीरा से भी उन्हें ऊँचा उठा देता है। लोगों को उनकी अस्पष्टता से बड़ी शिकायत है, परन्तु यह महादेवी जी को नहीं युग की विशेषता है। छाया-की प्रतीकात्मक पद्धति के कारण अस्पष्टता सभी में है। एक कारण इस अस्पष्टता का और भी है और वह यह कि साधना की जिस ऊँची सोपान से उनका आत्म निवेदन हुआ है वह साधारण पाठक को एकदम बुद्धिगम्य नहीं होता। उनके नारी हृदय ने कहीं भी संयम को नहीं लांघा है। पर यदि उनके जीवन और उनकी साधना को हम समझ लेते हैं तो हमें उनकी कविता समझने में कोई भी कठिनाई न होगी।

———

अध्याय ७

यामा

(एक विश्लेषण)

"महादेवी जी के काव्य में वैराग्य भावना का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भाँति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में भी दुख की मुद्रा नहीं मिलती) किन्तु बौद्ध सन्यासियों और सन्यासिनियों सरीखी एक चिन्ता मुद्रा, एक विरक्ति, एक तड़प, शांत के प्रति एक अशांति महादेवी जी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है। किन्तु इस कारण उनकी कविता में एक रूपता 'मोनोटनी' नहीं आई है, जैसा कुछ लोग आरोप करते हैं। उनमें प्रचुर वैभिन्य है।"

—नन्द दुलारे वाजपेयी

'यामा' महादेवी वर्मा के चार गीति-काव्यों—'नीहार' 'रश्मि' और 'सान्ध्यगीत' जिनका विवेचन पिछले अध्यायों में क्रमशः किया जा चुका है—का बृहद् संग्रह है। इसका विभाजन चार यामों के रूप में किया गया है। ये सब की सब मुक्तक पद्य और गीत रूप में हैं जिनकी संख्या १८५ है। साथ ही साथ 'यामा' में महादेवी जी लिखित भूमिकाएँ और कितने ही उनके द्वारा बनाये गये चित्र हैं जिनसे उनके काव्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। स्वयं यामा के सम्बन्ध में महादेवी जी लिखती हैं—'यामा में मेरे अन्तर्जगत के चार यामों का छायाचित्र है। ये याम दिन के हैं या रात के यह कहना मेरे लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यदि ये दिन के हैं तो इन्होंने मेरे हृदय को श्रम से क्लान्त बनाकर विश्राम के लिये आकुल नहीं बनाया और यदि रात के हैं तो इन्होंने अन्धकार

में मेरे विश्वास को खोने नहीं दिया अतः मेरे निकट इनका मूल्य समान है और समान ही रहेगा।'

यामा केवल एक संग्रह काव्य-पुस्तक ही नहीं है प्रत्युत उसमें महादेवी जी का सम्पूर्ण काव्य व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। उनके काव्य में दो पृथक् धाराएँ देखने को मिलती हैं—एक छायावाद और दूसरा रहस्यवाद। इन दोनों काव्य सूत्रों को हमें ध्यान पूर्वक देखना होगा। हिन्दी काव्य के क्षेत्र में सर्व प्रथम महादेवी जी ने जब पदार्पण किया तब उसमें छायावाद का पूर्ण उत्कर्ष था परन्तु उनकी रचनाएँ छायावादी सीमाओं पर आधारित तथा छायावादी आवरण गृहण करते हुए भी पूर्णतः छायावादी शैली के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकती हैं। "मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक चेतनता का सर्वथा भाव होना ही छायावाद ही व्याख्या कही जा सकती है। यदि वह सौन्दर्य सूक्ष्म नहीं है और स्वतंत्र व्यक्तित्व द्वारा किसी कहानी का विषय बन सकता है तो उसे हम छायावाद के अन्तर्गत नहीं रख सकते हैं। छायावाद की इस सीमान्त पर हमें बायरन और स्काट—अंग्रेजी कवियों की रचनाएँ देखने को प्राप्त होती हैं जिन्होंने प्रकृति के अनिर्वचनीय सौन्दर्य को पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित किया है। अतः ये प्रकृत छायावादी काव्य निर्माता नहीं कहे जा सकते हैं (नन्द दुलारे वाजपेयी)। दूसरी ओर हमें वर्डसवर्थ की काव्य शैली अंग्रेजी में देखने को प्राप्त होती है। वर्डसवर्थ की प्रकृति के प्रति इतनी सार्वत्रिक प्रीति है कि वह व्यक्त सौन्दर्य के प्रति विमुग्ध होकर, भावमयता में खोकर सर्वथा निस्पन्द सा होकर रह जाता है।

'I gaze And gaze but little thought,
What wealth did they bring to me!'

और इससे आगे चलकर वह अपने विचारों में ही खो जाता

है। प्रकृति का सौन्दर्य उसे अपने में पूर्णतः लीन भी नहीं कर सकता है—

The Rainbow comes and goes,
And lovely in the Rose,
The moon doth with delight
Look round her when the heavens are bare,
waters on a starry night
Are beantiful and fair,
The sunshine is a glorious brith;
But yet I know, where'er I go,
That there hath past away glory from the earth.

"Words worth."

अतः वह भी प्रकृत छायावादी नहीं कहा जा सकता है।

प्रकृत छायावादी तो अंग्रेजी साहित्य में केवल 'शैली' ही को माना जा सकता है जो कि प्राकृतिक सूक्ष्म सौन्दर्य भावना का एक मात्र अधिष्ठाता ठहरता है। जिसे कुछ व्यक्ति हवाई किले बनाने वाला कवि ठहराते हैं और कुछ समीक्षक उसे नास्तिक कहकर पुकारते हैं, और पुकारते थे। एक अंग्रेजी लेखक ने 'शैली' के सम्बन्ध में लिखा है—

'Perey Byss he shelley, the most ardent in temperament and revolutionary in out look of the Romantics is the most purely visionory poet in English literature.'

छायावाद का यही सीमान्त मेरे विचार से भी ठहरता है। हिन्दी के अधिकांश समीक्षक छायावाद और रहस्यवाद के बीच कोई विशेष अन्तर ही नहीं मानते हैं। सर्व श्री 'प्रसाद' जी रहस्यवाद के सम्बन्ध में लिखते हैं—"विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह

प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य-लहरी के 'शरीरं त्वं शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा 'अहं' का 'इदम्' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।"

विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतन शक्ति की भावना सार्वजिक भी हो सकती है और एक एक सुन्दर वस्तु गत भी हो सकती है। आत्मा का शरीर समस्त सृष्टि प्रसार ही है। प्रकृति में कुछ भी असुन्दर नहीं है, इस सत्य को स्वीकार कर लेने से व्यक्ति भेद की उत्पत्ति नहीं होती पर साथ ही साथ प्रसाद जी के मतानुसार प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं (आत्मा) का इदम् (प्रकृति) से समन्वय करने का प्रयत्न व्यष्टि सौन्दर्य को स्वीकार करता है। इस प्रकार प्रसाद जी ने व्यष्टि सौन्दर्य अर्थात् छायावाद की भावना तथा समष्टि सौन्दर्य-रहस्यवाद की भावना में कोई भी अन्तर नहीं रखा है। परन्तु इन दोनों ने दो पृथक् काव्य शैलियों को जन्म दिया है। व्यष्टि सौन्दर्यानुभूति एक सर्वग्राह्य और सार्वजनिक वस्तु भी हो सकती है परन्तु समष्टि सौन्दर्यानुभूति सर्व साधारण की वस्तु कदापि नहीं बन सकती। रहस्यवाद चिन्तन तो उच्चतर अनुभूति है। इसमें इन्द्रियानुभूति की सहज प्रगति या विकास के लिए स्थान नहीं। रहस्यानुभूति एक अति विरल वस्तु है, अतः उसकी काव्य-प्रक्रिया भी उतनी ही दुरुह और दुःसाध्य है।

'विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप करना रहस्य काव्य की प्रथमसोपान है'—नन्ददुलारे बाजपेयी। इसके अन्तर्गत सुख दुख का सामंजस्य भी आजाता है जिसे प्रसादजी ने 'अपरोक्ष अनुभूति भी कहा है। महादेवी जी इसे छायावाद की सीमाओं में बाँधती हैं। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की

एक रूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं एक ही कारण, एक ही मूल्य है।" संसार के दुख सुख राग-विराग आदि जितने भी अन्तर्द्वन्द्व हैं सब को एक चेतन-सत्ता अथवा शक्ति से संबद्ध करके देखने का प्रणय ही निश्चय ही रहस्यवाद के अन्तर्गत रखी जानी चाहिए। इस व्याख्या के अन्तर्गत महादेवी जी की रचनाएँ वास्तव में नहीं आतीं। यद्यपि यामा में उन्होंने भूमिका में लिखा है। पहले बाहर लिखने वाले फूल को देखकर मेरे रोमरोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे हृदय में ही खिला हो, परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रयत्न अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी। फिर यह सुख दुख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अन्त में अब मेरे मन में न जाने कैसे उस भीतर बाहर में एक सामंजस्य ढूँढ़ लिया है, जिसने दुख सुख को इस प्रकार बुन दिया कि एक से प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।' परन्तु उनकी रचनाओं में उनकी अन्तर्मुखी भावनाएँ ही अधिक उभरी हैं। प्रकृति के रूपों, दृश्यों और भावों को महादेवी जी ने चेतना का प्रेरक न रखकर प्रत्येक को अलग अलग व्यक्तित्व दे दिया है—

'निशा को, धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधुमदिरा का मोल!'

यद्यपि यहाँ व्यक्त सौन्दर्य की झलक हमें प्राप्त होती है परन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह गौण हो गया है और उनकी अन्तर्मुखी भावनाएँ प्रधान—

'बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर!'

आगे चलकर सारी प्रकृति और उसके समस्त उपकरण एक निखिल वेदना की अनेक रूप अभिव्यक्ति के लिए भाँति-भाँति की दौड़ लगाते हैं। रहस्यवाद के इस स्तर से ऊपर उठने पर हम प्राकृत अनुभूति के क्षेत्र से निकल कर परोक्ष अनुभूति के क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। महादेवी जी के काव्य की यही भूमि रही है। यद्यपि उनकी परोक्ष अनुभूति में निरन्तर विकास तथा गम्भीरता देखने को मिलती है परन्तु निश्चय ही प्रारम्भ से अन्त तक यही अज्ञात अनुभूति तथा उसके साथ अभिन्न तादात्म्य ही उनके काव्य की आत्मा रही है। उन्होंने स्वयं इस कथन को स्वीकार किया है। समय को नापने की जो परिपाटी है उसके अनुसार 'नीहार' से लेकर 'सान्ध्यगति' तक का समय एक युग से भी अधिक है। तब से संसार कितना बढ़ चुका है इसका मुझे ज्ञान है और मेरा जीवन कितना चल चुका है इसका मुझे अनुभव है; परन्तु जीवन के उस तुतले उपक्रम से लेकर अब तक मेरा मन अपने प्रति विश्वासी ही रहा है। मार्ग चाहे जितना अस्पष्ट रहा, दिशा चाहे जितनी कुहराच्छन्न रही, परन्तु भटकने दिग्भ्रान्त होने और चली हुई राह में पग-पग गिनकर पश्चाताप करते हुए लौटने का अभिशाप मुझे नहीं मिला है। मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है; केवल इतना ही नहीं वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गए हैं। उस समय के अज्ञातनामा भाव और विश्वास प्रयोग की अनेक कसौटियों पर कसे जाकर, अनुभव की सहस्र ज्वालाओं में तपाये जाकर केवल नाम पागये हैं। उनकी आत्मा वही रही इसमें मुझे सन्देह नहीं।"

उनकी सहजभाव से लिखी गई पंक्तियाँ—

'विसर्जन ही है कर्णाधार
वही पहुँचा देगा उस पार !'

आज तक उनके काव्य के प्राण हैं। उनके जीवन में परोक्ष के प्रति कुतूहल तथा उसमें एकाकार होने का विश्वास आदि से अन्त तक चला आ रहा है। समय तथा अनुभव उनके इस विश्वास न तो डिगा ही सका और न ही इसमें रंचमात्र भी परिवर्तन ला सका। वे स्वयं 'यामा' की रचनाओं के सम्बन्ध में स्पष्ट करती हैं—

"इन रचनाओं के सम्बन्ध में ज्ञातव्य समझकर जो कुछ 'रश्मि' और 'सान्ध्य गीत' में कह चुकी हूँ उसमें मुझे आज भी विश्वास है। इस युग में अपने प्रति भी विश्वास बचा रखने का क्या मूल्य है इसे मेरा हृदय नहीं मस्तिष्क भी जानता है। भार तो विश्वास का भी होता है और अविश्वास का भी; परन्तु एक हमारे सजीव शरीर का भार है जो हमें ले चलता है और दूसरा सजीव शरीर पर रखे हुए जड़ पदार्थ का जिसे हम ले चलते हैं। इन रचनाओं में यदि नवीनता होती तो दूसरों को इनके सम्बन्ध में कुछ सुनने की उत्सुकता होती और यदि मेरे दृष्टिकोण को कोई नवीन दिशा मिल गई होती तो उसे स्पष्ट करने की मुझे स्वयं आकुलता होती; परन्तु इन दोनों कारणों के अभाव में मैं पिछला कथन ही दोहराये दे रही हूँ।" उसी कथन को दोहराती हुई वे लिखती हैं—

"नीहार के धुंधलेपन में सभीत सी भारती मन्दिर की जिस पहली सीढ़ी पर आखड़ी हुई थी अब तक वहीं हूँ। न कभी पैरों में अन्तिम सोपान तक पहुँचने की शक्ति आई और न उत्सुक हृदय ने लौट आने की प्रेरणा ही पाई। इन असंख्य ऊँची सीढ़ियों पर आने जाने वाले पूजार्थियों ने निरन्तर देखते देखते ही मेरे

विषय में अनेक प्रश्नों का समाधान कर लिया होगा; उनका कुतूहल अति-परिचय जनित उपेक्षा में परिवर्तित हो चुका होगा। अब मैं अपने विषय में कौनसी नवीन बात कहूँ।'' एक दिव्य व्यक्तित्व पर आस्था रखने वाले सगुण साकार के अनुयायी होते हैं। महादेवी जी की अधिकांश रचनाएँ इसी तथ्य के अन्तर्गत रखी जाती हैं। वे स्वयं भी लिखती हैं—'मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस हो नहीं पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद का नाम दिया गया।' मधुरतम व्यक्तित्व की यह नियोजना महादेवी जी के काव्य में मौजूद है। साथ ही साथ उनकी रचनाओं में भक्तों और निर्गुणियों की रूढ़ि भी कम नहीं है। आत्मनिवेदन के रूप में एक उदाहरण यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

'प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती !
श्वासों में सपने कर गुम्फित,
बन्दनवार वेदना-चर्चित,
भर दुख से जीवन का घट नित,
मूक क्षणों में मधुर भरूँगी आरती !

दृग मेरे यह दीपक झिलमिल,
भर आँसू का स्नेह रहा ढुल,
सुधि तेरी अविराम रही जल,
पद-ध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती !'

ऊपर यह मैं कह आया हूँ कि महादेवी जी के काव्य को छायावादी युग की विशेषताओं के अन्तर्गत पूर्णतः नहीं रखा जा

सकता। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति पंत जी की भाँति उनमें आकर्षण नहीं प्रत्युत वे प्रकृति के एक-एक रूप को साकार व्यक्तित्व देकर उनके व्यापारों की कल्पना की समृद्धता अवश्य प्रकट होती है। "कल्पना बाहुल्य भी छायावाद की एक विशेषता है परन्तु महादेवी जी की कल्पनाएँ सीधी न होकर दुर्गन्ध हैं और कहीं कहीं तो उनके प्रतीकों का कल्पित व्यापार हमारे सौन्दर्य संस्कारों के पूर्णतः प्रतिकूल बैठता है और कहीं-कहीं वह इतना दुर्बोध हो जाता है कि हम ईप्सित सोन्दर्य की झाँकी ही नहीं कर सकते हैं।"—नन्ददुलारे बाजपेयी।

उदाहरणार्थ--

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर, जब रोती थी उजियाली॥'

यह प्रभात का दृश्य है। रजनी का तारों की झिलमिल जाली ओढ़ कर जाना कितनी मार्मिक कल्पना है परन्तु उजियाली का रोना हमारी अभ्यस्त कल्पना के विरुद्ध दीखता है। उजियाली तो सदैव हँसा करती है पर सम्भव है यहाँ महादेवी जी का अभिप्राय प्रातःकाल के ओसकणों तथा नमी से है जिसको उन्होंने आँसू के रूप में देखा है और उसे रोना कह दिया है। कहीं-कहीं पर उनकी कल्पनाएँ तथा चिन्तन एक दूसरे के विपरीत बैठता है। देखिए दो भाव—

"मृत्यु का प्रस्तर-सार उर चीर,
प्रवाहित होता जीवन नीर;
चेतना से जड़ का बन्धन,
यही संसृति की हृत्कम्पन!' —'रश्मि'

यहाँ मृत्यु को उन्होंने चेतन मानकर जड़ कहा है। अतः उसके प्रस्तर से हृदय को चीर कर जीवन का नीर प्रवाहित हो रहा है। यहाँ उनकी कल्पना अत्यन्त क्लिष्ट हो उठी है क्यों यदि मृत्यु

जड़ है तो उसके हृदय होना तथा उसे चीर कर जीवन नीर निकालना कुछ ठीक समझ में नहीं आता। इसका समाधान हम इस प्रकार कर लेते हैं कि मृत्यु का अर्थ है इस संसार से जीवन का अन्त तथा मृत्यु को अन्धकार के रूप में भी इसी सम्बन्ध से स्वीकार किया जाता है अतः उसके हृदय को कठोर वज्र के सदृश कह दिया गया है। वैसे मृत्यु जीवन का ही एक अंग है इसीलिए उसमें हृदय की कल्पना की जा सकती है। हृदय का होना केवल चेतन वस्तु में ही सम्भव हो सकता है। इसी को स्वीकार करती हुई वे 'रश्मि' में लिखती हैं—

'अमरता है जीवन का ह्रास,
मृत्यु जीवन का चरम विकास !'

यद्यपि मृत्यु को जीवन का सोपान मान लेना 'पूर्व की कल्पना' (मृत्यु जड़ है) के विपरीत बैठती है पर बहुत कुछ अंशों में पहली कठिनाई का समाधान भी हो जाता है। कह नहीं सकता कहाँ तक मेरा यह अर्थ और विश्वास इस सम्बन्ध में ठीक है ?

इसके कारण मेरी समझ में इस प्रकार आते हैं कि प्रथम तो उनकी कविताएँ इतनी अन्तर्मुखी हो उठी हैं कि वे प्रकृति के स्वाभाविक स्पंदनों और संकेतों को भूल जाती हैं तथा द्वितीय यह कि वे काव्य के एक-एक बन्द को एक-एक चित्र के रूप में उतारना चाहती हैं और चूँकि वे अपनी मानसिक वृत्तियों को भी उन्हीं वस्तु व्यापारों द्वारा ध्वनित करना चाहती है अतः उनके चित्र ठीक प्रकार से संश्लिष्ट नहीं हो पाते हैं और उनका कार्य उनके लिए दुःसाध्य हो जाता है। पर जहाँ देवी जी ने चित्रांकण का सीधा रास्ता पकड़ा है वहाँ उनके चित्रण बहुत ही मार्मिक हो उठे हैं—

'स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास, देव वीणा का टूटा तार।
मृत्यु का क्षण भंगुर उपहार, रत्न वह प्राणों का शृङ्गार॥
नई आशाओं का उपवन, मधुर वह था मेरा जीवन !'

और जहाँ उन्होंने कल्पना के दुरूह उपमानों को त्याग कर सरलता के साथ रूपाकंण किये हैं वहाँ उनके चित्रण बहुत ही स्वाभाविक हो उठे हैं—

'जाग जाग सुकेशिनी री,
अनिल ने आ मृदुल हौले शिथिल वेणी बंध खोले;
पर न तेरे पलक डोले। बिखरती अलकें झरे जाते
सुमन वर-वेषिनी री।
छाँह में अस्तित्व खोये, अश्रु से सब रंग धोये।
मंद प्रभ दीपक संजोये, पथ किसका देखती तू,
अलस स्वप्न निवेशिनी री!'

यह सौन्दर्य चित्रण कितना स्वाभाविक एवं मार्मिक बन पड़ा है पर इसमें भी आध्यात्मिक भावों का अभाव नहीं कहा जा सकता। अतः उनके सौन्दर्य चित्रण छायावाद की परम्परा के अन्तर्गत पूर्ण रूप से नहीं रखे जा सकते हैं। 'सान्ध्यागीत' में यह दार्शनिक एकाग्रता और भी उच्चतर हो उठती है। इसीसे इन गीतों की रहस्यभावना ही प्रधान हो गई है, उपयुक्त रूपयोजना उन्हें प्राप्त न हो सकी है। नन्ददुलारे जी के शब्दों में "प्रसाद के 'आँसू' निराला की 'स्मृति' जैसी उदात्त और एकतान कल्पना तथा 'पल्लव' का सा सौन्दर्योन्मेष महादेवी जी में नहीं है, किन्तु वेदना का विन्यास, उसकी वस्तुसत्ता ('आब्जेक्टिविटी') का बहुरूप और विवरण पूर्ण चित्रण जितना महादेवी जी ने दिया है, उतना वे तीनों कवि नहीं दे सके हैं।" 'सान्ध्यगीत' की प्रथम कविता में सान्ध्य-गगन और जीवन का बिम्ब प्रतिविम्ब स्वरूप महादेवी जी के काव्य में चित्रांकण कला का एक सफल उदाहरण है, भले ही प्रकृत भावोच्छ्वासों का प्रवेश उसमें न हो। प्रसाद जी में सौन्दर्य संवेदन ने दोनों स्वरूप 'आनन्द' और 'वेदना' का एक सा प्रसार

मिलता है परन्तु महादेवी जी में उसके पिछले अंश की ही प्रधानता है। स्वयं महादेवी जी ने इसके सम्बन्ध में कहा है—

"जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।" इसके अतिरिक्त 'बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।' इस दुख के स्वरूप को और भी स्पष्ट करतीं हुई वे लिखती हैं," दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।' दुःख में उन्हें सब कुछ अपनासा प्रतीत होता है, ऐसा उनका विश्वास है—

'दुख में जाग उठा अपने पन का सोता संसार;
सुख में सोई री प्रिय सुधि की अस्फुट सी झंकार;
हो गए सुख दुख एक समान !
बिन्दु बिन्दु ढुलने से भरता उर में सिन्धु महान;
तिल तिल मिटने से होता है चिर जीवन निर्माण;
न सुलझी यह उलझन नादान !'

पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे उन्होंने दुख के आध्यात्मिक स्वरूप और सुख के भौतिक स्वरूप को सामने रखकर ही विचार किया है। किन्तु इसके विपरीत सुख का एक आध्यात्मिक और दुख का एक भौतिक दृष्टिकोण भी है, सम्भवतः उस तक उनकी दृष्टि नहीं गई है।"—नन्ददुलारे बाजपेयी। महात्मा बुद्ध ने दुःखवाद को आध्यात्मिक अर्थ में आंका है, उसी प्रकार भारतीय

दर्शनों ने 'आनन्द' का आध्यात्मीकरण कर लिया है। अतः भौतिक आधार पर सुख और दुख का जो कंट्रास्ट (व्यतिरेक) महादेवी जी ने दिखाया है, वह निश्चय ही उनकी व्यक्तिगत सात्विकता का ही परिणाम हो सकता है। इससे उनके काव्य को एक अपूर्व माधुर्य, एक सुन्दर क्रान्ति प्राप्त हो गई है। महादेवी जी की वेदना जो पहले व्यक्तिगत भावुकता के रूप में दृष्टिगत होती है, क्रमशः निखरती गई है। भावुकता का एक सुन्दर उदाहरण देखिए—

'चाहता है यह पागल प्यार, अनोखा एक नया संसार !
कलियों के उच्छ्वास शून्य में ताने एक वितान,
तुहिन कणों पर मृदु कंपन से सेज बिछादें गान—
जहाँ सपने हों पहरेदार, अनोखा एक नया संसार।"

रूढ़िगत भावना वहाँ देखने में आती है जहाँ महादेवी जी ने रहस्यमय आध्यात्मिक सत्ता को स्थूल उपास्या का रूप दे दिया है अथवा जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य का स्थान-स्थान पर प्रतिशोध किया गया है। एक भाव देखिए—

'नहीं अब गाया जाता देव
थकी अँगुली हैं, ढीले तार,
विश्व वीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार।'

किन्तु नीचे के पथ में रूढ़ि रहित आध्यात्मिक निरूपण भी देखिए—

"पीले मुख पर संध्या के वे किरणों की फुलझड़ियाँ।
विधु की चाँदी की थाली मादक मकरन्द भरी सी
जिसमें उजियाली रातें लुटती घुलतीं मिसरी सी।
भिक्षुक से फिर जाओगे जब लेकर यह अपना धन,
करुणामय तब समझोगे, इन प्राणों का महँगापन।'

जहाँ पर वेदना तप तपकर निखर उठती है, वहाँ रूढ़ि का

लेश भी नहीं दीखता और काव्य ऊँचे धरातल पर आ पहुँचता है। वेदना की छटा देखिए—

"मैं भरी बदली रहूँ
चिर मुक्ति का सन्मान कैसा।
युग युगान्तर की पथिक मैं छू कभी लूँ छाँह तेरी,
ले फिरूँ सुधि दीप सी, फिर राह में अपनी अँधेरी;
लौटता लघु पल न देखा
नित नये क्षण-रूप-रेखा,
चिर बटोही मैं, मुझे
चिर पंगुता का दान कैसा।"

इस अवस्था की अनुभूतियों का वैविध्य और काव्य मनोहारिता महादेवी जी में उच्च श्रेणी की है। कोई भी छायावादी कवि इतने संयम के साथ इस स्थल पर आ कर नहीं रुक सका।

सारांश में डा० रामविलास शर्मा जी के कथनानुसार 'अन्तर्मुखी अनुभूति, अमांसल सौन्दर्य, रहस्य चिन्तन, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, पंखों और पंखड़ियों से चुराई हुई कला, वायवी वातारण—ये महादेवी जी के काव्य की विशेषताएँ हैं। तथा नगेन्द्र जी तो 'फ्रयड' (Freud) की भाँति सम्पूर्ण प्रणय-काव्य को अतृप्त काम प्रेरणा से उत्पन्न होता हुआ मानते हैं। और यह सिद्धान्त बहुत कुछ अंशों में ठीक भी है। बहुत कुछ हमारे अवचेतन मन पर अतृप्त काम प्रेरणाओं का प्रभाव रहता है जो साकार प्रत्यक्ष होकर हमें प्रकृत जीवन में किसी न किसी रूप में प्रभावित करती रहती है। श्रीमती शचीरानी गुर्टू जी भी कहती हैं—'उनके भीतर कुछ दुराव सा है जो उन्हें यथार्थ के निकट आने से रोकता है और यह दुराव अनजाने में ही क्रमशः बढ़ता गया है। वह दूरी का स्वांग करती हुई उसे आध्यात्मिक पोश में जकड़ लेना चाहती हैं। अतः उनके सम्पूर्ण काव्य के पीछे उनका नारीत्व छुपा है। उनके काव्य में जो कुछ कोमलता तथा स्निग्धता

दीख पड़ती है उसका एकमात्र कारण है उनका नारीत्व तथा उनकी रहस्यभावना का कारण है उनकी अन्तर्मुखी अनुभूति जिसका कारण चाहे बौद्ध दर्शन का प्रभाव हो अथवा अतृप्त काम प्रेरणा, तथा अमांसल सौन्दर्य के प्रति उनका चिरन्तन आकर्षण तथा उसमें चेतनता का आरोप पुनः यह बात भी निश्चय रूप से कही जा सकती है कि उनके काव्य में उनकी अन्तर्मुखी भावनाएँ, उनका दुःखवाद तथा उनकी परोक्ष के लिए तड़प अधिक निखर सकी है और उनके व्यक्तित्व ने शुद्ध प्राकृतिक सौन्दर्य को जैसे दबा सा लिया है। उनका काव्य उनका आत्मनिवेदन मात्र है, ऐसा वे स्वयं भी स्वीकार करती हैं। वास्तव में उनका काव्य पूर्ण छायावाद के अन्तर्गत रखा जा सकता है अथवा पूर्ण आध्यात्मवाद के अन्तर्गत यह ठीक प्रकार से नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन दोनों वादों के सम्बन्ध में बहुत से मत देखने में आते हैं। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि जो कुछ भी महादेवी जी ने लिखा है वह अत्यन्त सुन्दर, अनुभूतिपूर्ण, प्रेरक तथा दुःख सुख का सामंजस्य लिए हुए है। उसमें अमांसल सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं—

"महादेवी जी अपने गीतों में 'देवी' के रूप में नहीं, एक 'मानवी' के रूप में दर्शन देती हैं। वे अपनी भाव-व्यञ्जना में इस धरती पर काम करने वाली मनुष्य नामक प्राणी ही नहीं है, वरन् उसका एक भेद नारी भी है। उनका नारीत्व सामाजिक सीमाओं के अन्दर विकास के लिये पँख फड़फड़ाता है। उसकी यह व्याकुलता अनेक सांकेतिक रूपों में उनकी कविताओं में प्रकट होती है। नारीत्व के इन तत्वों को निकाल दीजिये, उनका काव्य-साहित्य उतना ही नीरस और निर्जीव हो जायेगा जैसा उन कवियों का जो पुरुष होकर रमणी कंठ की नकल करते हुए कहते हैं—

'लाई हूँ फूलों का हास,
लोगी मोल, लोगी मोल।'

अन्त में मैं यह कह सकता हूँ कि यदि उनमें छायावादी युग की एक विशेष प्रवृत्ति, निराशा वादी पलायन वाद, के दर्शन होते हैं तो साथ ही साथ उनके काव्य अनुष्ठान में जो 'यामा' में बहुत अंशों में पूरा सा हो चुका है, जीवन और सौन्दर्य की आकांक्षा का स्वस्थ मानव वादी पक्ष भी देखने में आता है। 'यामा' में संकलित 'सान्ध्यगीत' की यह रचना—

'चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !'

निश्चय ही हमें आगे बढ़ने की चेतना प्रदान करती है।

———

अध्याय ८

दीपशिखा

प्रारम्भ से ही हम यह देखते चले आये हैं कि किस प्रकार महादेवी जी के काव्य में पीड़ा, करुणा तथा वेदना का सर्वत्र प्रभाव रहा है तथा किस प्रकार वे सदैव अपने परोक्ष 'प्रिय' की चिरन्तन साधना में तिल तिल मिट जाने को ही अपना सौभाग्य मानती रही हैं ? सर्वत्र महादेवी जी के काव्य में प्रणय निवेदन है परन्तु उसमें कामुकता तथा माँसल सौन्दर्य का पूर्णतः अभाव ही है अथवा इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि सर्वत्र उनकी व्यक्तिगत माननिक सात्विकता तथा नारी सुलभ लज्जा एवम् सहनशीलता ने उनके काव्य की पवित्रता को दूषित होने से बचाये रखा है। मीरा की भाँति वे भी माधुर्य भाव की उपासिका हैं। माधुर्यभाव की उपासना पद्धति में प्रिया और प्रियतम का सम्बन्ध माना जाता है। भगवान के साथ भक्तों तथा साधकों ने माता-पिता, स्वामी-सखा अथवा प्रियतम-प्रियतमा के रूप में अपना सम्बन्ध स्थापित किया है। इन सभी सम्बन्धों में प्रियतम-प्रियतमा का सम्बन्ध सबसे अधिक निकटता का सम्बन्ध माना जाता है तथा यह सबसे अधिक आनन्द प्रद भी है, क्योंकि इसमें परस्पर के भाव प्रकाशन में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं रहता। गोपियों की कृष्णोपासना भी इसी रूप की थी इसीलिए वे कृष्ण के अत्याधिक निकट थीं। महादेवी जी एक नारी हैं और नारी के लिए इस सम्बन्ध से अधिक और कोई सम्बन्ध स्वाभाविक नहीं बन सकता। अतः महादेवी 'विराट सत्ता' को 'प्रियतम' कह कर सम्बोधित करती

हैं। कभी कभी अपने प्रिय के सौन्दर्य का वर्णन करते समय वे उसे 'सुन्दर', 'चिर सुन्दर' और उसकी उपेक्षा को प्रकट करते समय निष्ठुर, निर्मोही, निर्मम इत्यादि कह कर भी पुकारती हैं। परन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि वे सर्वत्र गम्भीर दीख पड़ती हैं, नियन्त्रण का अभाव अथवा किसी प्रकार की उच्छृंखलता उनके काव्य में नहीं आने पाई है। डा० इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में—"वे सूक्ष्म ब्रह्म की उपासिका हैं, जहाँ कि उनकी कोई प्रति-द्वन्द्विनी नहीं है और जहाँ असीम पथ पर उन्हें स्वयं आगे बढ़ना है। इसीलिए उनकी पूजा भी स्वयं मन के अन्दर ही होती है।" इसीलिए वे कहती हैं—

'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो!
रजत शंख घड़ियाल स्वर्ण वंशी वीणा स्वर,
गए आरती बेला को शत शत लय से भर;
× + × ×
इस ज्वाला में प्राण रूप फिर से ढलने दो!
झञ्झा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हल चल,
तब तक यह जायेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा जल,
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो!'

—'दीपशिखा'

वही साधना जो अभी तक अविश्वास तथा भय का मिश्रण लिए चल रही थी अब दीपशिखा में आकर पूर्ण हो चुकी है। संसार उनके प्रणय पर उनकी आध्यात्मिक अनुभूति पर अविश्वास कर बैठता है पर वे उसका उत्तर इस प्रकार से देती हैं—

'जाने क्यों कहता है कोई,
मैं तम की उलझन में खोई?

मैं कण कण में ढाल रही अलि! आँसू के मिस प्यार किसी का।
मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का॥'

—'दीपशिखा'

पर जब इस उत्तर से भी प्रश्न कर्त्ताओं को तुष्टि नहीं प्राप्त होती है तब प्रति प्रश्न पद्धति पर उत्तर देती हुई प्रश्न करने वालों को सहज भाव से समझाती हैं—

'जो न प्रिय पहचान पाती!
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत सी तरल बन?
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन?
किस लिए हर सांस तन में
सजल दीपक राग गाती?
चाँदनी के बादलों से स्वप्न फिर फिर घेरते क्यों?
मदिर सौरभ से सने क्षण दिवस रात बिखरते क्यों?
सजग स्मित क्यों चितवनों के
सुप्त प्रहरी को जगाती?
कल्प युग व्यापी विरह को एक सिहरन में संभालें,
शून्यता भर तरल मोती से मधुर सुधि-दीप वाले,
क्यों किसी के आगमन के
शकुन स्पन्दन में मनाती?
मेघ पथ में चिन्ह विद्युत के गए जो छोड़ प्रिय-पद,
जो न उसकी चाप का मैं जानती सन्देश उन्मद,
किस लिए पावस नयन में
प्राण में चातक बसाती?

—'दीपशिखा'

महादेवी जी का काव्य जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है गीति-काव्य के अन्तर्गत रखा जाता है। हृदय की गहन अनुभूति तथा उसमें मिला आत्मनिवेदन की अभिव्यक्ति गीति काव्य में ही अधिक सफलता से हो सकती है। गीति परम्परा आदि काल से

ही चली आती है। गीत को काव्य का वास्तविक रूप ही समझना चाहिए। स्वयं महादेवी जी इस तथ्य पर प्रकाश डालती हुई लिखतीं हैं—"सुख दुख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। इसमें कवि को संयम ही परिधि में बंधे हुए जिस भावातिरेक की आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नहीं, कारण हम प्रायः भाव की अतिशयता में कला की सीमा लांघ जाते हैं और उसके उपरान्त भाव के संस्कार मात्र में मर्म स्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्त क्रन्दन के पीछे छिपे दुखातिरेक को दीर्घ निश्वास में छिपे हुए संयम से बांधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा। गीत यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख दुख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है इसमें सन्देह नहीं।" गीत के प्रायः दो प्रयोजन मिलते हैं, एक आत्म निवेदन और दूसरा मनोरञ्जन। मीरा, सूर, तुलसी जयदेव इत्यादि के आत्मनिवेदन प्रायः गीत बनकर हमारे सामने आये हैं। आत्म निवेदन के समय हृदय अपने उपास्य देव के लिए अति आतुर हो उठता है तथा अपने विचारों के प्रति आत्म ग्लानि से परिपूर्ण होकर अपने उपास्य की महत्ता स्वीकार कर लेती है। जब तुलसीदास जी कहते हैं—'अब लौं नसाहिं, अब न नसैहों, तो वे अपने अपराधों को स्वीकार करने के साथ अपने इष्ट की महत्ता भी स्वीकार करते दीख पड़ते हैं। साथ ही साथ गीत का आविष्कार मनोरंजन के दृष्टिकोण से भी माना जाता है। प्रायः ग्रामीण स्त्रियाँ आटा पीसते समय तथा कूए पर जल भरते समय तथा धार्मिक और सामाजिक उत्सवों पर गीत गाती देखी जाती हैं। गीत में हृदय को आकर्षित करने की शक्ति अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक रहती है। अतः गीत एक ओर आत्मनिवेदन का साधन बन कर हमारे समक्ष आता है और दूसरी ओर मनोरञ्जन

का साधन बन कर हमें प्रेरित भी करता है। डा० नगेन्द्रजी लिखते हैं—'उसको प्रयोजन के अतिरिक्त प्रेरणा भी कहना उचित है। परन्तु मनोरञ्जन भी कम प्राचीन नहीं है। आखेट-प्रिय आदम पुरुष के वियोग में उसकी गृहिणी आदिम नारी ने आज से न जाने कितने युग पूर्व अपने एकाकी मन और गृह कर्म से भारी शरीर को हल्का करने के लिए गीत का आविष्कार किया था। 'कामायनी' के पाठकों को याद होगा कि मनु के मृगयार्थ वन में चले जाने पर श्रद्धा का हाथ तकली से और मन अनायास गीत की कड़ी से उलझ जाता था।" इस प्रकार गीत मानव हृदय के हर्ष विषाद का सहज वाहक है। महादेवी जी स्वयं भी कहती हैं—

'गीत का चिरन्तन विषय रागात्मिकता वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख दुःखात्मक अनुभूति ही रहेगा।.....साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।'

पर 'दीपशिखा' में संकलित ५१ गीतों को देखने से पूर्ण विश्वास हो जाता है कि इन गीतों में महादेवी जी का एक मात्र प्रयोजन आत्म निवेदन ही है, मनोरंजन करना नहीं। 'दीपशिखा' के गीतों में हमें स्पष्टतः तीन भाव धाराएँ देखने को मिलती हैं—(१) दीपशिखा की भाँति पलपल जलना, (२) विश्व के प्रति करुणा और संवेदना का भाव तथा (३) इस जलन और सुख दुख के सामंजस्य के पीछे किसी विराट एवम् अज्ञात सत्ता का मधुर संकेत। डा० नगेन्द्र ने फ्रायड़ के (Repressed libido) के अनुसार जलने की चिर भावना तथा मानसिक असन्तोष को 'अतृप्त काम प्रेरणा' के कारण माना है। वे कहते हैं—'विशेषतः काव्य के और उससे भी अधिक प्रणय काव्य के—मूल में अतृप्त काम की प्रेरणा मानने में आपत्ति के लिए स्थान नहीं है।' यद्यपि 'अतृप्त काम की प्रेरणा' का सिद्धान्त बहुत अशों में हमारे जीवन की दिशाओं के

संचालन में योग देता है परन्तु यह सिद्धान्त सर्वथा सर्वत्र माननीय नहीं हो सकता, ऐसा मेरा अपना विश्वास है। यहाँ तक कि फ्रायड (Freud) के अनुयायी युग (earl Gustab jung—the founder of Analytical Psychology) ने फ्रायड के सेक्स (Sex–काम) पर पूर्ण विश्वास न करते हुए उसके स्थानपर विचार शक्ति, काम प्रेरणा, जीवन शक्ति तथा शक्ति संचय की प्रेरणा—अर्थात् सम्पूर्ण इच्छा शक्ति को रखा है। उसका यह समन्वय हमारे चेतन मन की भावधाराओं के विश्लेषण के लिए अधिक वैज्ञानिक ठहराता है। अतः हम जीवन के दुख, असंतोष या किसी भी प्रकार के क्रिया-कलाप को पूर्णतः काम प्रेरणा के धरातल पर रखकर नहीं जाँच सकते। मानव मन की चेतन अवस्था का ठीक पता लगाने के हेतु अन्य सिद्धान्तों का भी सहयोग अनिवार्य रूप से लेना पड़ेगा। अतः मुझे डा० नगेन्द्र जी के उपर्युक्त विश्लेषण से असन्तोष नहीं होता है। कहां तक मेरा विचार ठीक है, कह नहीं सकता ? इसी सीमांत पर हम महादेवी जी के करुण काव्य का विश्लेषण करेंगे। महादेवी जी का एकाकी जीवन उनके काव्य में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है। किसी अभाव ने उनके जीवन को निरन्तर मिटने का पाठ पढ़ाया है। प्रारम्भ से ही उन्हें दीनों, दलितों तथा छोटे (जिन्हें हम ऐसा समझते आये हैं) प्राणियों के प्रति मोह तथा दया रही है। बौद्ध दर्शन के दुःखवाद ने उनकी करुण तथा संवेदना को और भी अधिक निखार दिया है। स्त्रियों की दयनीय दशा के प्रति उनके मन में विद्रोह भरा पड़ा है जो यथार्थ रूप में हमें उनके गद्य में—(शृङ्खला की कड़ियाँ शीर्षक पुस्तक में) देखने को प्राप्त होता है। संसार और समाज की कुरुतियों से उनके मन ने कभी भी समझौता नहीं किया है। साथ ही साथ उन्होंने बड़ी लगन एवम् श्रद्धा से आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन किया है तथा अपने आस पास के प्राणियों से साथ परिवार का सा सम्बन्ध जोड़ा है। पीड़ित वर्ग की सक्रिय सेवा में, गांधी जी के दर्शन के प्रभाव के

कारण, आनन्द लिया है। अतः इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यदि हम उनके काव्य की भाव धाराओं का विश्लेषण करें तो समस्या स्पष्ट से स्पष्ट तर हो जाती है। यद्यपि जीवन में महादेवी जी को बहुत प्यार और दुलार मिला पर इस व्यक्तिगत जीवन के विरोध में उन्होंने रोते, सिसकते तथा उपेक्षित जीवन भी देखे जिन्होंने उन के मन में प्रतिक्रिया के रूप में करुण तथा संवेदना को जगाया तथा दूसरी ओर उन्हें संसार के सुखों के प्रति, भगवान बुद्धि की भाँति उदासीन भी बना दिया। बौद्ध भिक्षुणी बनने की उनकी लालसा परोक्ष प्रियतम को पाकर तथा उसके सम्बन्ध से सम्पूर्ण विश्व में सुखदुख का सामञ्जस्य स्थापित करके शांत हो गई। निरन्तर आध्यात्मवाद के अध्ययन तथा स्वतः अनुभूति के कारण उनका जीवन व्यष्टिगत से समष्टिगत होता चला गया तथा उनकी परोक्ष के प्रति जिज्ञास दृढ़ विश्वास तथा आत्म-समर्पण के भाव में परिवर्तित होती चली गई। स्वयं देवीजी ने लिखा है—"कवि ही नहीं प्रत्येक कलाकार को, अपने व्यष्टिगत जीवन को गहराई और समष्टिगत चेतना को विस्तार देने वाली अनुभूतियों को भावना के साँचे में ढ़ालना पड़ा है। हमें निष्क्रिय बुद्धिवाद और स्पन्दनहीन वस्तुवाद के लम्बे पथ को पार कर कदाचित् फिर चिर संवेदन रूप सक्रिय भावना में जीवन के परमाणु खोजने होंगे ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारणा है। रहस्य भावना को लक्ष्य करते हुए उन्होंने लिखा है—"हमारी अन्तः शक्ति भी एक रहस्य से पूर्ण है और बाह्य जगत का विकास क्रम भी, अतः जीवन में ऐसे अनेक क्षण आते रहते हैं जिनमें हम इस रहस्य के प्रति जागरूक हो जाते हैं। इस रहस्य का आभास या अनुभूति मनुष्य के लिए स्वाभाविक रही है अन्यथा हम सभी देशों के समृद्ध काव्य साहित्य में किसी न किसी रूप में इस रहस्य भावना का परिचय न पाते।" बुद्धि के प्रति ममत्व और दर्शन के अध्ययन का प्रभाव उन पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है—'इन गीतों ने पराविधा की अपा-

र्थिवता ली, वेदान्त के अध्ययन की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सब को कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।'

इस प्रकार 'दीपशिखा' के गीतों की तीनों भावधाराएँ एक दूसरे से कार्य-कारण सम्बन्ध में बंधी हुई हैं और कवयित्री का जीवन प्रत्येक भावधारा से पूरी तरह अभिव्यक्त होता है। अब हम उनकी प्रत्येक भावधारा को उदाहरण सहित देखने का प्रयास करेंगे कि उसमें कितनी तीव्रता है! इससे पूर्व कि हम उनकी अनुभूति के एक-एक अंग को प्रस्तुत करे, मैं सर्व प्रथम इस सम्बन्ध में सर्वश्री डाक्टर नगेन्द्र जी विचार रखना चाहता हूँ। उनके मतानुसार उनकी अनुभूति में स्पन्दन तो है पर उसमें तीव्रता नहीं। वे लिखते हैं—इस दृष्टि से हमें निराश होना पड़ेगा। कारण स्पष्ट है। इस अनुभूति के मूल में जो काम का स्पन्दन है, उसके ऊपर कवि ने चिन्तन और कल्पना के इतने आवरण चढ़ा रखे हैं कि स्वाभावत: उसकी तीव्रता दब गई है और उसको टटोलने पर बहुत नीचे गहरे में एक हल्की सी धड़कन मिलती है। साथ ही अनुभूति को पुञ्जीभूत होने का भी अवसर नहीं मिला। उसका वितरण प्रयत्न पूर्वक किया गया है, इसलिये यह तीव्र न रहकर हल्की-हल्की बिखर गई है। स्पष्ट शब्दों में इन गीतों में लोक गीतों की जैसी मांस की ऊष्ण गन्ध प्राय: नि:शेष होगई है। दूसरी ओर बुद्धि जीवी महादेवी जी में सन्त वा भक्त कवियों का विश्वास और समर्पण भी सम्भव नहीं हो सका। इसलिए उनके हृदय में अज्ञात के प्रति भी जिज्ञासा ही उत्पन्न हो सकी है, पीड़ा नहीं। कुल मिलाकर यह कहना होगा कि दीप शिखा की प्रेरक अनुभूति छाँह सी सूक्ष्म और मोम सी मृदुल तो हैं, परन्तु हूक सी तीव्र नहीं।" यह

मैं पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ कि उनकी जलन, उनकी पीड़ा तथा उनके विरह में गम्भीरता पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलती है जिसका कारण है बौद्ध दर्शन का प्रभाव तथा उनका बुद्धिवाद। काम प्रेरणा के स्पन्दन के सम्बन्ध में मैंने अपने विचार स्पष्ट कर दिये हैं। मैं इस बात से तनिक भी सहमत नहीं कि प्रत्येक विरह विशेषतः नारी के विरह के मूल में अतृप्त काम प्रेरणा कारण के रूप में अवचेतन मन में निवास करती है। यही लांछन मीरा पर भी थोपा जा सकता है। भक्त या साधक को तो केवल अपनी साधना तथा अपने साध्य से ही काम रहता है, संसार उसके लिये अज्ञात सा बन जाता है। महादेवी जी के दुख और विषाद के पीछे जो कारण अधिक उचित हो सकते हैं उनका मैं विश्लेषण पूर्ण रूप से कर ही चुका हूँ। अतः यहाँ केवल यही कहूँगा कि महादेवी जी की भक्ति तथा साधना उच्चकोटि की है जिसमें त्याग के लिये सर्वत्र स्थान है। वे मिलन नहीं चाहती, विरह ही उनका चिर संगी है। भगवान बुद्ध के कथानुसार प्राणी का वास्तविक स्वरूप हमें उसके विषाद के क्षणों में ही देखने को प्राप्त होता है। विरह जीवन की वह अवस्था है जहाँ प्राणी अपने से सबसे अधिक समीप होता है जहाँ वह अपने अस्तित्व का ठीक-ठीक अनुमान लगा सकता है। विरह के क्षणों में प्राणी के हृदय में अधिक सात्विकता देखने को मिलती है तथा विरह ही भक्ति तथा साधना की परिपक्व अवस्था भी मानी जाती है। विशेष कर नारी के जीवन में तो यह और भी अधिक चरितार्थ होता है। नारी स्वभाव से कोमल होती है तथा उसमें त्याग और श्रद्धा दोनों की मात्रा पुरुष की अपेक्षा अधिक रहती है। भगवान को भी वही साधक, वही भक्त अधिक प्रिय होता है जो केवल साधना के पथ पर मिटना जानता है पर अपने इष्ट के सामने भी हाथ फैलाना अपना अपमान समझता है। संसार के दुखों से बोझिल कवयित्री के हृदय ने परोक्ष सत्ता में अपने को लीन करना चाहा है। पर परोक्ष में मिलकर

वे अपने दुख को नष्ट नहीं करना चाहतीं क्योंकि दुःख के द्वारा ही तो उन्हें अज्ञात की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिली है। जिस दुख ने काव्य में आकर अश्रु छलकाये हैं उसी ने गद्य में पहुँच कर विद्रोह भी उत्पन्न किया है। काव्य में महादेवी जी अन्तर्मुखी होकर रह गई हैं जब कि गद्य में वे बहिर्मुखी तथा यथार्थवादी हो उठी हैं। अतः उनका प्रणय निवेदन, विरह काव्य एक उच्चकोटि का गीति-काव्य है जिसमें आकुलता के साथ-साथ गम्भीरता मिश्रित है तथा प्रणय के साथ-साथ चिर विरह का मिश्रण किया गया है। साथ ही साथ उनके समर्पण भाव पर तो हम किसी प्रकार से आशंका कर ही नहीं सकते। उनका समर्पण तो अनुकरणीय बन गया है। समर्पण के भाव ही ने तो उन्हें चिर विरह में जलने को बाध्य कर दिया है। मिटने को ही उन्होंने अपने जीवन में निर्माण कर लिया है—

"नभ मेरा सपना स्वर्ण रजत,
जग संगी अपना चिर परिचित,
यह शूल फूल का चिर नूतन
पथ मेरी साधों से निर्मित!
इन आँखों के रस से गीली,
रज भी है दिव से गर्वीली!
मैं सुख से चंचल दुख बोझिल
क्षण क्षण का जीवन जान चली!
मिटने को कर निर्माण चली!"

प्रिय की वेदना में उनके तन और मन पर्याप्त रूप में जल चुके हैं। करुणा और स्नेह से दीपक की लौ की भाँति निरन्तर जलते हुए दीपशिखा में कवयित्री अपने एकाकीपन में तन्मय और विश्वास से परिपूर्ण दीख पड़ती हैं—

'मोम सा तन घुल चुका अब दीप सा मन जल चुका है !
विरह के रंगीन क्षण ले,
अश्रु के कुछ शेष कण ले,
बरुनियों में उलझ बिखरे स्वप्न के फीके सुमन ले,
खोजने फिर शिथिल पग
निश्वास दूत निकल चुका है !
चलपलक हैं निर्निमेषी,
कल्प पल सब तिमिर वेषी
आज स्पन्दन भी हुई उर के लिए अज्ञात देशी !
चेतना का स्वर्ण जलती
वेदना में गल चुका है !'

महादेवी जी के ही शब्दों में—'जीवन और मरण के इन तूफानी दिनों में रची हुई यह कविता ठीक ऐसी है जैसे झंझा और प्रलय के बीच में स्थित मन्दिर में जलने वाली निष्कम्प दीपशिखा।'

प्रिय के एक संदेश तथा एक इंगित पर उनके प्राण शतवार मचल चुके हैं तथा इतने अन्तर्द्वन्द्वों के बीच भी उनका मनदीप की भाँति निरन्तर जलता रहा है। वे कहती हैं—

'अब कहो संदेश है क्या ?
और ज्वाल विशेष है क्या ?
अग्नि पथ के पार चन्दन चाँदनी का देश है क्या ?
एक इंगित के लिए
शतवार प्राण मचल चुका है।'

उन्हें अपने परोक्ष प्रियतम में पूरा-पूरा विश्वास है। दीपशिखा में उनके हृदय का भय, निराशा विश्वास और सुख में परिवर्तित हो गये हैं। साधना को तो उन्होंने चिर संगिनी ही मान लिया है फिर पीड़ा, अन्धकार तथा झंझावात से डर कैसा—

'प्राण लौ की आरती ले,
धूम लेखा स्वर्ण अक्षत
नील कुमकुम वारती ले,
मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह उज्ज्वल भारती ले,
मिल अरे बढ़ आरहे यदि प्रलय झंझावात !
कौन भय की बात !'

और अन्त में सम्पूर्ण विश्वास और साधना की शक्ति के साथ वे कह उठती हैं—

'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो !
इस ज्वाला में प्राण रूप फिर से ढलने दो !
झञ्झा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी
जब तक लौटे दिन की हल चल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा जल,
दूत सांझ का इसे प्रभाती तक चलने दो !'

दीपशिखा उनकी अनुभूति का अन्तिम अथवा अगला कदम है जहाँ दुख अपना दर्शन कर चुका है तथा उसका स्थान सुख ने ले लिया है, अविश्वास जहाँ अपना स्थान खोकर विश्वास और चेतना को समर्पण कर बैठा है। उनकी पीड़ा की ज्वाला यहाँ दीपशिखा के रूप में हमारे सामने आती है जो पृथ्वी के कण कण को आलोक वितरित करके अपना घुल जाना ही वरदान मानती है। 'नीहार' का अन्धकार यहाँ आकर प्रकाश बन उठा है तथा व्यक्तिगत पीड़ा ने लोक व्यापी रूप धारण कर लिया है। यहाँ उनका जीवन अधिक लोक व्यापी बन गया है तथा उनके मन ने पूर्णतः सुख दुख का सामंजस्य स्थापित कर लिया है—

'आँसू के सब रँग जान चली !
दुख को कर सुख-आख्यान चली !
जिसका मीठा तीखा दर्शन,
अंगों में भरता सुख सिहरन,
जो पग में चुभकर कर देता
जर्जर मानस चिर आहत मन !
कण्टक का मृदु मन जान चली !
गति का दे चिर वरदान चली !'

उन्होंने अपनी करुणा तथा संवेदना के बल पर सम्पूर्ण सृष्टि से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया है—

'अलि मैं कण कण को जान चली !
सब का क्रन्दन पहचान चली !
कुछ दृग में हीरक जल भरते,
कुछ चितवन इन्द्र धनुष करते,
टूटे सपनों के मन को से
कुछ सूखे अधरों पर झरते !
× × × ×
आँसू के सब रँग जान चली !
दुख को कर सुख आख्यान चली !'

तीसरी भावधारा के रूप में हमें निश्चय ही महादेवी जी के काव्य शास्त्र में मधुर अनुभूति और सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं। यह मधुर अनुभूति तथा सूक्ष्मता दीपशिखा में आकर अपनी चरम-सीमा को पहुँच चुकी है। एक स्थान पर कवयित्री महादेवी जी एक मधुर संकेत की ओर इंगित करती हुई लिखती हैं—

'खोजता तुम को कहाँ से आ गया आलोक सपना
चौंक खोले पङ्ख तुमने याद आया कौन अपना
कुहर में तुम उड़ चले किस छाँह को पहचान।'

इस प्रकार के मधुर संकेतों के उदाहरण 'दीपशिखा' में कई

प्राप्त हो सकते हैं तथा साथ ही साथ दुख सुख के सामंजस्य के पीछे किसी सत्ता की प्रेरणा भी देखने को मिलती है उनके अश्रुओं तथा विषाद को मधुर से मधुरतम बना दिया है तथा जो सदैव उनको उनकी साधना में निश्चल बढ़ते रहने का साहस देती रहती है। देखिए एक भाव—

'मिट मिट कर हर साँस लिख रही शत शत मिलन विरह का लेखा;
निज को खोकर निमिष आँकते अनदेखे चरणों की रेखा;
पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी
युग युग की पहचान बन गया।
देते हो तुम फेर हास मेरा निज करुणा-जल-कण से भर;
लौटाते हो अश्रु मुझे तुम अपनी स्मित से रंगोमय कर;
आज मरण का दूत तुम्हें छू
मेरा पाहुन प्राण बन गया!'

इस प्रकार महादेवी जी की अनुभूति ने नीहार से दीपशिखा तक आते आते निरन्तर सूक्ष्मता ग्रहण की है। अब ऐसा प्रतीत होता है जैसे दीपशिखा में रात की स्याही धुल रही है और शनैः शनैः प्रकाश किरणें झिलमिला रही हैं। दीपशिखा में आकर इस रूप में कवयित्री की भावधारा ने एक नया मोड़ ग्रहण किया है। दीपशिखा में हम उन्हीं के मुख से सुनते हैं कि 'रात की पराजय रेखा धोकर ऊषा ने किरण-अक्षत और हासरोली' से स्वस्तिवाचन करते हुए उनका विजय अभिषेक किया है। और अब वे प्रिय के मिलन मन्दिर में प्रवेश करने वाली है इसीसे तो वे अधिक मधुर हो उठी हैं। उनके मिलन की रहस्य कथा हमें कब सुनने को प्राप्त होगी कहा नहीं जा सकता।

'दीपशिखा' की एक और भी विशेषता है और वह यह कि प्रत्येक गीत का एक अर्थवाही चित्र भी पृष्ठभूमि के रूप में दिया गया है। इस प्रकार का चित्रित गीत प्रकाशन हिन्दी के लिये एक अनोखी तथा गौरव की बात है। साथ ही साथ प्रत्येक गीत कव-

यित्री की अपनी ही हस्तलिपि में मुद्रित किया गया है जिससे पुस्तक का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। महादेवी जी के गीतों में भाषा का सर्वथा ध्यान रखा गया है यद्यपि कहीं-कहीं उनकी कला को उनकी अनुभूति ने दबा सा लिया है। भाषा के रंगों को मधुर और कोमल स्पर्श से मृदुल-तरल चित्रों के रूप में आँक देना उनकी अपनी विशेषता रही है। उनके चित्रों में पारद के मोतियों जैसी कोमलता आ गई है—

'रात सी नीरव व्यथा, तुमसी अगम मेरी कहानी
फेरते हैं दृग सुनहले आँसुओं का क्षणिक पानी
श्याम कर देगी इसे छू प्रात की मुस्कान।'

'दीपशिखा' के गीतों में उनके चित्रों की ही भाँति हल्के नीले श्याम और श्वेत दो रंगों का आधिक्य मिलता है। नगेन्द्र जी के शब्दों में—"महादेवी जी के गीतों में कला का मूल्य अक्षुराण है। पन्त की कला में जड़ाव और कढ़ाई है, फलतः उनके चित्रों की रेखाएँ पैनी होती हैं। महादेवी की कला में रङ्ग धुली तरलता है, जैसी कि पंखड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।" उनके गीत चित्रों को भली भाँति देखने से यह अभाव अवश्य खटकता है कि एक तो प्रयुक्त गीत सामग्री अत्यन्त परिमित है तथा दूसरे पुनरावृत्तियों की अधिकता बहुत है। एक ही प्रकार के रंगों की झलक एक ही प्रकार के छाया चित्र तथा एक ही सी कल्पना गीत चित्रों को पीछे स्थान-स्थान पर देखने को प्राप्त होती है। कारण स्पष्ट है कि उनका कलाकार उनकी अनुभूति से दौड़ में पीछे रह गया है। पर फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर बहुत सी बारीकियाँ हमें उनके गीत चित्रों में मिल सकेगीं। उदाहरणार्थ—

'तैर तम जल में जिन्होंने ज्योति के बुद्‌बुद् जगाए,
वे सजीले स्वर तुम्हारे क्षितिज सीमा बाँध आये।
हँस उठा कब अरुण शतदल-सा ज्वलित दिनमान।'

अन्त में इतना और भी कहना आवश्यक समझता हूँ कि 'दीपशिखा' में दीगई भूमिका का महत्व भी उनके गीतों तथा चित्रों से किसी भी अंश में कम नहीं है। इसका सविस्तार वर्णन अगले अध्याय 'महादेवी की आलोचक दृष्टि' के अन्तर्गत किया जायेगा। यहाँ पर केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि भूमिकाओं में दीगई 'छायावाद' की व्याख्या हिन्दी आलोचना साहित्य में अमर रहेगी।

अध्याय ६

महादेवी की आलोचना शैली

महादेवी जी की आलोचना शैली चिन्तन की शैली है। उनकी आलोचक दृष्टि चिन्तन और अनुभूति के समन्वय पर आधारित है। साहित्य की अनेक भाव-धाराओं, उनके अनेक वादों को उन्होंने पचा पचा कर अनुभव के द्वारा बहुत ही स्पष्ट रूप में हमारे समक्ष रखा है। उनकी छायावाद, रहस्यवाद, गीतिकाव्य तथा साहित्य की गति विधि की व्याख्या हमें इनके गद्य तथा पद्य गीति काव्य को समझने में सहायक होती हैं तथा साथ ही साथ हमें उनके विश्वास की भी झलक पूर्ण रूप से प्राप्त होती है। डा० नगेन्द्र जी के शब्दों में—"उनकी आलोचना पद्धति चिन्तन की पद्धति है, जिसमें विचार और अनुभूति का संयोग है। वे जैसे बौद्धिक तत्वों को पचा पचा कर हमारे समक्ष रखती हैं। निदान बौद्धिक-तीक्ष्णता तो उनके विवेचन में इतनी नहीं मिलती, परन्तु संश्लेषण सर्वत्र मिलता है।" महादेवी जी के जीवन के अनुभवों तथा उनके काव्य के साथ हमें उनकी लेखनी से उद्भूत विवेचनात्मक गद्य प्राप्त होते हैं जो एक ओर तो उनमें साहित्य के अनेकों निगूढ़ रहस्यों को जानने की प्रेरणा प्रदान करते हैं तथा दूसरी ओर जो हमारे दृष्टि परिवर्तन में सहायक भी होते हैं। 'यामा', दीपशिखा तथा 'आधुनिक कवि' की भूमिकाएँ, पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित 'चिन्तन के कुछ क्षणों में' तथा पुस्तकाकार प्राप्त उनके कतिपय लेख काव्य के सनातन सत्यों का जितना स्पष्ट उद्घाटन करते हैं, उतना ही आधुनिक हिन्दी साहित्य, विशेषतः छायावाद की गतिविधि का

निरूपण भी महादेवी जी साहित्य को एक चिरन्तन सत्य के रूप में मानती हैं। उनकी दृष्टि में प्रत्येक कला का महत्व जीवन के इसी चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति में निवास करता है। 'दीपशिखा' की भूमिका में इसी सत्य की व्याख्या करते हुए वे लिखती हैं—"सत्य की प्राप्ति के लिये काव्य और कलायें जिस सौन्दर्य का सहारा लेते हैं वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित हैं, केवल बाह्य रूप रेखा पर नहीं। प्रकृति का अनन्त वैभव, प्राणि जगत की अनेकात्मक गतिशीलता, अन्तर्जगत की रहस्यमयी विविधता सब कुछ इनके सौन्दर्य कोष के अन्तर्गत हैं और इसमें से क्षुद्रतम वस्तु के लिये भी ऐसे भारी मुहूर्त आ उपस्थित होते हैं जिनमें वह पर्वत के समकक्ष खड़ी होकर ही सफल हो सकती हैं और गुरुतम वस्तु के लिए भी ऐसे लघुक्षण आ पहुँचते हैं जिनमें वह छोटे तृण के साथ बैठकर ही कृतार्थ बन सकती हैं।" अनेकता में एकता तथा व्यष्टि में समष्टि खोजने वाली उनकी पैनी आलोचक दृष्टि-जीवन और साहित्य दोनों के सनातन सिद्धान्तों को लेकर चलती है, जो परिवर्तनों के मध्य भी अक्षुरण रहते हैं। वास्तव में उन्होंने अन्तर्जगत का बाह्य जगत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। उनका सम्पूर्ण काव्य इसी समन्वयवाद की झाँकी के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है।

'सत्य तो यह है कि जब तक हमारे सूक्ष्म अन्तर्जगत का बाह्य जीवन में पगपग पर उपयोग होता रहेगा तब तक कला के सूक्ष्म उपयोग सम्बन्धी विवाद भी विशेष महत्व नहीं रख सकते।' यदि हम अपनी अन्तर दृष्टि का यथार्थ जीवन में ठीक तथा क्रियात्मक रूप में उपयोग कर सकते हैं तो हम सनातन सत्य को समझ सकते हैं, अन्यथा हम विवादों में पड़कर सत्य से दूर चले जाएँगे और हमें सर्वत्र भिन्नता ही भिन्नता दिखाई देने लगेगी। सत्य की अभिव्यक्ति के हेतु ही विभिन्न प्रकार की कलाओं का जन्म होता है और जो कला बाह्य सौन्दर्य में फँस कर रह जाती है तथा

आन्तरिक सौन्दर्य की उपेक्षा कर देती है वह सत्य से भटक जाने पर स्वयं भी चिर नहीं रहती। प्रत्येक कला, प्रत्येक सौन्दर्य तथा प्रत्येक जीवन प्रेरणा का महत्व जभी तक है जब तक कि उसका उद्देश्य इसी चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति करने उसके साथ समन्वय स्थापित करना है। "व्यष्टि और समष्टि में समान रूप से व्याप्त जीवन के हर्ष शोक, आशा-निराशा, सुख दुःख आदि की संख्यातीत विविधता को स्वीकृति देने ही के लिए कला सृजन होता है। अतः कलाकार के जीवन दर्शन में हम उसका जीवन व्यापी दृष्टिकोण मात्र पा सकते हैं। जो सम-विषम परिस्थितियों की भीड़ में नहीं मिल जाता, सरल-कठिन संघर्षों के मेले में नहीं खो जाता और मधुर कटु सुखदुखों की छाया में नहीं छिप जाता वही व्यापक दृष्टिकोण कवि का दर्शन कहा जायगा। परन्तु ज्ञानक्षेत्र और काव्य जगत के दर्शन में उतना ही अन्तर रहेगा जितना दिशा की शून्य सीधी रेखा और अनन्त रूप-रंगों से बसे हुए आकांश में मिलता है।" महादेवी जी के साहित्य दर्शन तथा कला दर्शन और साथ ही साथ जीवन दर्शन, जिनकी प्रेरणा स्वरूप साहित्य और कला का निर्माण होता है, का आधार है भारतीय आदर्शवाद जो जीवन और जगत की अखण्ड एकता में विश्वास करता है तथा जिस विश्व के पीछे एक अखण्ड सत्ता विराजमान है। जगत के खण्ड खण्ड में अखण्डता प्राप्त कर लेना, प्रत्येक व्यष्टि में समष्टि के दर्शन करना तथा प्रत्येक विभिन्नता में एकता स्थापित कर लेना ही सत्य का निरूपण करना है और उसकी विषमताओं में सामंजस्य ढूढ़ लेना ही सौन्दर्य की सृष्टि करना है। पर "फिर भी न जाने क्यों हम लोग अलग अलग छोटे-छोटे दायरे बनाकर उन्हीं में बैठे-बैठे सोचा करते हैं कि दूसरा हमारी पहुँच से बाहर है। एक कवि विश्व का या मानव का बाह्य सौन्दर्य देखकर सब कुछ भूल जाता है, सोचता है उसके हृदय से निकला हुआ स्वर अलग एक संगीत की सृष्टि करेगा, दूसरा विश्व की आन्तरिक वेदना

बहुल सुषमा पर मतवाला हो उठता है, समझता है उसके हृदय से निकला हुआ स्वर सबसे अलग एक निराले संगीत की सृष्टि कर लेगा, परन्तु वे नहीं सोचते कि उन दोनों के स्वर मिलकर ही विश्व संगीत की सृष्टि कर रहे हैं।" अतः सत्य काव्य वही है जिसमें अनन्तता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्तिगत भाव अव्यक्तिगत बनकर जगत के साथ तादात्म्य ढूढ़ता दीख पड़ता है तथा जिसमें रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा सुरक्षित है।

महादेवी जी ने काव्य को सत्य-रूप माना है और जो काव्य सत्य की अभिव्यक्ति करता है वही चिरन्तन काव्य है और जो चिरन्तन है उसी का सौन्दर्य भी अक्षुराण रह सकता है। महादेवी जी लिखती हैं—

'सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उनका साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त, इसीसे साधन के परिचय-स्निग्ध खण्ड रूप से साध्य को विस्मय भरी अखण्ड़ स्थिति तक पँहुँचने का क्रम आनंद की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है।'

इसका अर्थ यही हुआ कि सौन्दर्य का सम्बन्ध रूप से होने के कारण वह हमारे अत्यन्त निकट है। रूपों की अनेकता की भावना को संभाले जब साहित्यकार क्रमशः उनकी एकता की ओर अग्रसर होता है तो उसकी दृष्टि सामंजस्य स्थापित कर लेती है और यही सामंजस्य दृष्टि साहित्य की मूल प्रेरणा है और स्वभावतः आनंद रूपा भी है। साथ ही साथ "प्रत्येक सच्चे कलाकार की अनुभूति प्रत्यक्ष सत्य ही नहीं अप्रत्यक्ष सत्य का भी स्पर्श करती है, उसका स्वप्न वर्तमान ही नहीं अनागत को भी रूपरेखा में बाँधता है और उसकी भावना यथार्थ ही नहीं संभाव्य यथार्थ को भी मूर्तिमत्ता देती है। परन्तु इस सबकी, व्यष्टिगत और अनेकरूप अभिव्यक्तियाँ दूसरों तक पहुँचकर ही तो जीवन की समष्टिगत एकता का परिचय देने में समर्थ हैं।......... आज का कलाकार समष्टि का

महत्व समझता है, परन्तु इस बोध के साथ भी उसके सम्पूर्ण जीवन की स्वीकृति नहीं है। बौद्धिक धरातल पर चिर उपेक्षित मानवों की प्रतिष्ठा करते समय उसे अपनी विशालता की जितनी चेतना है उतनी अपने देवताओं की नहीं। ऐसी स्थिति बहुत स्पृहणीय नहीं, क्योंकि वह सिद्धान्तों को व्यापार का सहज साधन बन जाने की सुविधा दे देती है। जीवन के स्पन्दन से शून्य होकर सिद्धान्त जब धर्म, समाज, नीति आदि की संकीर्ण पीठिका पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं तब वे व्यवसाय-वृत्ति को जैसी स्वीकृति देते हैं वैसी जीवन के विकास को नहीं दे पाते। साहित्य, काव्य आदि के धरातल पर भी इस नियम का अपवाद नहीं मिलेगा।"

यहीं आकर साहित्य की उपयोगिता का प्रश्न भी हल हो जाता है जिसका साध्य सत्य है, साधन सौन्दर्य है और प्रक्रिया आनन्द रूप, उस साहित्य की उपयोगिता जीवन की चरम उपयोगिता है। पर उसका माध्यम स्थूल विधि निषेध न होकर आन्तरिक सामंजस्य ही है। "यह सत्य है कि संस्कृति की बाह्य रूप रेखा बदलती रहती है, परन्तु मूल तत्वों का बदल जाना तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक उस जाति के पैरों के नीचे से वह विशेष भूखण्ड और उसे चारों ओर से घेर लेने वाला विशेष वायु मण्डल ही न हटा लिया जाय।" अतः यह स्पष्ट है कि देवी जी कविता को मूल रूप में रहस्यानुभूति ही मानती हैं, इसी से तो उनका सम्पूर्ण काव्य रहस्य की छाया लिये हुए है पर यह भी सत्य है कि इस धरातल पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष का सम्बन्ध बनाये रखने के लिए बुद्धि और हृदय की असाधारण एकता चाहिए। महादेवी जी ने भी असंदिग्ध शब्दों में व्यक्त कर दिया है—

"अलौकिक आत्म समर्पण को समझने के लिये भी लौकिक का सहारा लेना होगा। स्वभाव से मनुष्य अपूर्ण है और अपनी अपूर्णता के प्रति सजग भी। अतः किसी उच्चतम आदर्श, भव्यतम सौन्दर्य या पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण द्वारा पूर्णता की इच्छा स्वाभाविक हो जाती है। आदर्श-समर्पित व्यक्तियों में संसार के असाधारण कर्मनिष्ठ मिलेंगे, सौन्दर्य से तादात्म्य के इच्छुकों में श्रेष्ठ कलाकारों की स्थिति है और व्यक्तित्व समर्पण ने हमें साधक और भक्त दिये हैं। रहस्योपासक का आत्मसमर्पण हृदय की ऐसी आवश्यकता है जिसमें हृदय की सीमा, एक असीमता में अपनी ही अभिव्यक्ति चाहती है। और हृदय के अनेक रागात्मक सम्बन्धों माधुर्यभाव मूलक प्रेम ही उस सामंजस्य तक पहुँच सकता है, जो सब रेखाओं में रँग भर सके, सब रूपों को सजीवता दे सके और आत्म निवेदन को इष्ट के साथ समता के धरातल पर खड़ा कर सके। माधुर्यभाव मूलक प्रेम में आधार और आधेय का तादात्म्य अपेक्षित है और यह तादात्म्य उपासक ही सहज कर सकता है, उपास्य नहीं इसी से तन्मय रहस्योपासक के लिये आदान सम्भव नहीं पर प्रदान या आत्मदान उसका स्वाभावगत धर्म है।" महादेवी जी भौतिक यथार्थ भाव को पूर्णतः स्वीकार तो करती हैं, परन्तु निर-पक्ष रूप में नहीं, आध्यात्मिक आदर्श के साथ। जीवन की खण्ड खण्ड विविधता ही भौतिक यथार्थ है और अखण्ड एकता ही आध्यात्मिक आदर्श। यही कारण है कि एक ओर देवी जी साहि-त्य में भौतिकता, यथार्थ वातावरण को उचित महत्व देती हैं और दूसरी ओर वह इसका आध्यात्मिकता की कसौटी पर उपयोग करती दीख पड़ती हैं। इसी प्रकार वे काव्यानंद को भी ऐन्द्रिय संवेदनों में न ढूढ़ कर प्राण चेतना के उस सूक्ष्म धरातल पर ढूढ़ती हैं जहाँ बुद्धि और चित्त, ज्ञान और अनुभूति का पूर्ण सामं-जस्य स्थापित हो जाता है, जो चिन्तन का धरातल है जहाँ सतो-

तमस और रजस पर विजयी होता है। महादेवी जी का चिन्तन अति बुद्धिवादी और अति रसवादी दोनों चरम अवस्थाओं के मध्य से होकर चलता है। "साहित्य में मनुष्य की बुद्धि और भावना इस प्रकार मिल जाती है वैसे धूपछाहीं वस्त्र में दो रंगों के तार जो अपनी अपनी भिन्नता के कारण ही अपने रंगों से भिन्न एक तीसरे रंग की सृष्टि करते हैं। हमारी मानसिक वृत्तियों की ऐसी सामंजस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं सम्भव नहीं। उसके लिए न हमारा अन्तर्जगत त्याज्य है और न बाह्य क्योंकि उसका विषय सम्पूर्ण जीवन है, आंशिक नहीं।"

और आगे भी 'जीवन का वह असीम और चिरन्तन सत्य जो परिवर्तन की लहरों में अपनी क्षणिक अभिव्यक्ति करता रहता है अपने व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही रूपों की एकता लेकर साहित्य में व्यक्त होता है। साहित्यकार जिस प्रकार यह जानता है कि बाह्य जगत में मनुष्य जिन घटनाओं को जीवन का नाम देता है वे जीवन के व्यापक सत्य की गहराई और उसके आकर्षण की परिचायक हैं, जीवन नहीं; उसी प्रकार यह भी उससे छिपा नहीं कि जीवन के जिस अव्यक्त रहस्य की वह भावना कर सकता है उसी की छाया इन घटनाओं को व्यक्त रूप देती है। इसीसे देश और काल की सीमा में बंधा साहित्य रूप में एक देशीय होकर भी अनेक देशीय और युग विशेष से सम्बद्ध रहने पर भी युग-युगान्तर के लिए संवेदनीय बन जाता है।' समन्वय तथा सत्य-निरूपण की यह व्यापक दृष्टि जो दूसरे शब्दों में संतुलन, संयम और आत्मसमर्पण की दृष्टि है जिसमें किसी प्रकार की भिन्नता, खण्डता, अतिचार और व्यक्तिगत जीवन प्रवाह के उन क्षुद्र क्षणों को स्थान नहीं जहाँ संतुलन और संयम तट के मृत्तिका खण्डों की भाँति बह जाते हैं। इस प्रकार महादेवी जी की दार्शनिक दृष्टि सर्वत्र-साहित्य में, कला में तथा जीवन प्रवाह में—सत्य की प्रेरणा

से अभिभूत हैं। इसी सत्य का प्रकटीकरण करना अथवा सत्य-का प्रकटीकरण करना अथवा सत्यमार्ग पर निरन्तर बढ़ना उनके दृष्टिकोण से जीवन का चरम लक्ष्य कहा जा सकता है। निसंदेह उनकी दृष्टि साहित्य और कला के क्षेत्र में जीवन की भाँति बहुत ही संयमित एवं संतुलित हैं। आत्मसमर्पण की भावना उनके जीवन तथा उनके साहित्य में सर्वत्र विराजमान है। सामंजस्य की चेतना लिये वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ना चाहती हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने यथार्थता तथा लौकिक सत्य की अवहेलना करदी है। उनका मन्तव्य तो केवल यह है कि ससीम-यथार्थ तथा लौकिक सत्य की अभिव्यक्ति वास्तव में परोक्ष, अलौकिक सत्य को साक्षात्कार तथा उसके साथ समन्वय द्वारा ही सम्भव हो सकती है। इस प्रकार महादेवी जी यथार्थ से आदर्शवाद चैतन्य, व्यष्टि से समष्टि, विभिन्नता से सामंजस्य तथा ससीम से निःसीम की ओर उन्मुख दीख पड़ती है।

उपर्युक्त साहित्यिक सत्य और सामंजस्य की भावना के साथ ही उन्होंने सामयिक समस्याओं का विवेचन भी आधुनिक हिन्दी साहित्य की गतिविधि के अन्तर्गत किया है। छायावाद अध्यात्म-वाद से सम्बद्ध प्रायः सभी महत्वपूर्ण प्रसङ्गों पर उन्होंने सम्यक् प्रकाश डाला है जो इस आधुनिक संक्रान्ति के काल में फैली हुई अनेकों भ्रान्तियों को दूर करने में सहायक होगा। सर्वप्रथम हम छायावाद के प्रश्न पर विचार करेंगे।

महादेवी जी के अनुसार :—

'मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते-घूमते थक कर वह अपने लिये सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊबकर उनको तोड़ने में सारी शक्तियाँ लगा देता है। छायावाद के जन्म का मूलकारण भी

मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है। उसके जन्म से प्रथम कविता के बन्दन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उस मानव अनुभूतियों का नाम छायावाद उपयुक्त ही था, और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।' इस तरह छायावाद का मूल मानव हृदय की बन्धनों के विरोध में क्रान्ति ही समझना चाहिये। छायावादी कवि अपने मानस की अभिव्यक्ति करके ही चैन नहीं पा सका प्रत्युत उसने स्वानुभूत सुख दुखों का सामंजस्य प्रकृति में सौन्दर्यपूर्ण चेतन सत्ता का आरोप कर उसके साथ करना चाहा। छायावाद ने मनुष्य हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो आदि काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप में चला आ रहा था। महादेवी जी लिखती हैं—"छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एक रूपता के समय अनेक रूपों में प्रकट महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युतरेखा, मानव की लघुता विशालता, कोमलता-कठोरता; चञ्चलता निश्चलता और मोह ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेक रूपता में, परिवर्तन शील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।" प्राचीन भावना के विपरीत छायावादी कवि ने प्रकृति के साथ अपने मानस का केवल बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का सम्बन्ध ही नही खोजा प्रत्युत वह इस भावना से बहुत आगे बढ़ गया और उसने

उसके बाह्य सौन्दर्य में एक ऐसी विराट चेतन सत्ता को खोजने का प्रयास किया जिसके अनुभव से उसे सम्पूर्ण प्रकृति, उसका, सौंदर्य उसकी विभिन्नता-सब कुछ एक अलौकिक व्यक्तित्व से अनुप्राणित जान पड़ी और इस प्रकार वह उसके साथ अपने ससीम का तादात्म्य स्थापित कर सका। अब उसमें और प्रकृति के प्रत्येक अंश में एक ही चेतन सत्ता की अनुभूति सम्भव हो सकी। "छाया-वाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त्त विश्व को मिलाकर पूर्णतया पाता है।" वास्तव में छायावाद की मूल चेतना है सर्ववाद और इसकी भावभूमि है प्रकृति, क्योंकि सर्ववाद की व्यंजना की वही एक मुख्य माध्य है। इस सामान्य चेतना पर व्यक्तिगत सुख दुख की भावना का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। वास्तव में सिद्धान्त रूप में यह चेतना समष्टिवादी होती हुई भी मूल में अथवा यथार्थ में व्यष्टिवादी ही है। छायावाद इसी व्यष्टि और समष्टि के सामंजस्य की भावना का ही वाद है। अज्ञात अनुभूति, सौन्दर्य लिप्सा, कल्पित साम्राज्य तादात्म्य, की भावना, चेतन सत्ता का अणु अणु में आभास इत्यादि छायावादी प्रवृत्तियाँ हैं। छायावाद की सबसे प्रमुख भावना है करुणा, दुःखवाद जो जन्म से ही इसके साथ चली आती है। विस्मय के द्वारा हृदय आगे कुछ खोजने को बढ़ता है तथा करुणा के द्वारा वह पथ की वस्तुओं से, चाहे वे सुखप्रद हों अथवा दुःखपूर्ण, मानवीय हों अथवा अमानवीय, अथवा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। अतः करुणा या संवेदना छायावाद की प्रधान प्रवृत्ति है जिसके अभाव में छायावादी धारा पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकती। महादेवी जी लिखती हैं—

"बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भाव न किया, हृदय की भाव्य-भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी हुई सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की, और दोनों के साथ

स्वानुभूत सुखदुःखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, छायावाद और अनेक नामों का भार संभाल सकी।" तथा 'छायावाद करुणा की छाया में सौन्दर्य के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक सर्ववाद ही।" इस युग की प्रायः सभी रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म तथा व्यक्त सौन्दर्य में किसी परोक्ष चेतन सत्ता का आभास भी रहता है और उसके व्यष्टिगत सौन्दर्य में जिज्ञासा की भावना भी, किन्तु अभिव्यंजना शैली की भिन्नता के कारण कहीं वे सौन्दर्यानुभूति की व्यापकता, कहीं संवेदन की निविडता, कहीं कल्पना के सूक्ष्म रंग और कहीं पर भावना की मर्म स्पर्शिता लेकर अनेक वादों को जन्म दे सकी है। पर छायावाद के सम्बन्ध में वे आगे कहती हैं—"छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तों का संचय न देकर हमें केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था, इसी से उसे यथार्थ रूप ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया।" "छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रहा यह निर्विवाद है परन्तु कवि के लिए यह दृष्टिकोण कितना आवश्यक है इस प्रश्न के कई उत्तर हैं। आज का बुद्धिवादी युग चाहता है कि कवि बिना अपनी भावना का रंग चढ़ाये यथार्थ का चित्र दे परन्तु इस यथार्थ का कला में स्थान नहीं, क्योंकि वह जीवन के किसी भी रूप से हमारा रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता।" अतः किसी भी यथार्थ चित्रण के लिये कवि की व्यक्तिगत भावना का रंग चढ़ना अनिवार्य है अन्यथा वह यथार्थ चित्र जीवन के चरम सत्य से कहीं दूर चला जायगा। व्यक्तिगत भावना के साथ यदि चित्रण होगा तो वह यथार्थवादी चित्रण होते हुए भी सामंजस्य की भावना से प्रेरित होगा तथा वह अधिक टिकाऊ और समष्टिरूप होगा। पुनः कहना न होगा कि महादेवी जी के चिन्तन में आध्यात्मवाद की पुट है, अतः वे

सम्पूर्ण प्रकृति और सम्पूर्ण जगत को तथा उसके साहित्य और अन्य क्रिया कलाओं को इसी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर रख कर आँकती हैं। उनकी दृष्टि में छायावादी कवि की भावना अपूर्ण ही हैं क्योंकि वह केवल काल्पनिक ही होकर रह गया है तथा उसका दृष्टिकोण बुद्धिवादी है और वह जीवन के साथ अपनी भावना का सामंजस्य पूर्ण रूपेण नहीं कर पाया है। वे लिखती हैं—"छायावाद के कवि को एक नये सौन्दर्य लोक में ही यह भावात्मक दृष्टिकोण मिला, जीवन में नहीं, इसी से वह अपूर्ण है, परन्तु यदि इसी कारण हम उसके स्थान में केवल बौद्धिक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा कर जीवन को पूर्णता में देखना चाहेंगे तो हम भी असफल ही रहेंगे।" और अब इस युग का कवि हृदयवादी हो या बुद्धिवादी स्वप्न द्रष्टा हो या यथार्थ का चित्रकार, अध्यात्म में बंधा हो या भौतिकता का अनुगत, उसके निकट यही एक मार्ग शेष है कि वह अध्ययन में मिली जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर, जड़ सिद्धान्तों का पाथेय छोड़कर अपनी सम्पूर्ण संवेदन शक्ति के साथ जीवन में घुल मिल जावे।" साथ ही एक बात और भी सामने उपस्थित होती है और वह यह कि जहाँ कहीं छायावाद की भावभूमि खूब परिपक्व हुई तथा उसने अपना सम्बन्ध एक चेतन सत्ता से भी कर लिया वहाँ भी मानव हृदय की सम्पूर्ण प्यास न बुझ सकी। स्वभावतः जहाँ मानव हृदय किसी विराट तथा असीम व्यक्तित्व की स्थापना कर लेता है वहीं उसका दूसरा कार्य आत्म निवेदन के रूप में प्रारम्भ हो जाता है। एक तो इस आत्मनिवेदन से उसके हृदय को पर्याप्त बल प्राप्त होता है तथा दूसरे उसके द्वारा वह अधिक सरलता तथा सुविधा पूर्वक विश्व के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध भी स्थापित कर लेता है। इसी प्रवृति को हम रहस्यवाद का नाम दे देते हैं। महादेवी जी इसी के स्पष्टीकरण में लिखती हैं—'परन्तु इस सम्बन्ध से मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-

जनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।" इस प्रकार आज के साहित्य की दूसरी प्रवृत्ति रहस्यवाद की स्थापना हो सकी। आज के रहस्यवाद और प्राचीन काल के रहस्यवाद में बहुत अन्तर है। वे लिखती हैं—"रहस्य-वाद नाम के अर्थ में छायावाद के समान नवीन न होने पर भी प्रयोग के अर्थ में विशेष प्राचीन नहीं। प्राचीन काल के दर्शन में इसका अंकुर मिलता अवश्य है, परन्तु इसके रागात्मक रूप के लिये उसमें स्थान नहीं। वेदान्त के द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, आदि या आत्मा की लौकिकी तथा पारलौकिकी सत्ता विषयक मत मतान्तर मस्तिष्क से अधिक सम्बन्ध रखते हैं, हृदय से नहीं, क्योंकि वही तो शुद्ध बुद्ध चेतन को विकारों को लपेट रखने का एक मात्र साधन है। योग का रहस्यवाद इन्द्रियों को पूर्णतः वश में करके आत्मा का कुछ विशेष साधनाओं और अभ्यासों के द्वारा इतना ऊपर उठ जाना है जहाँ वह शुद्ध चेतन से एकाकार हो जाता है। सूफीमत के रहस्यवाद में अवश्य ही प्रेम जनित आत्मा-नुभूति और चिरन्तन प्रियतम का विरह समाविष्ट है, परन्तु साध-नाओं और अभ्यासों में वह भी योग के समकक्ष रखा जा सकता है और हमारे यहाँ कबीर का रहस्यवाद यौगिक क्रियाओं से युक्त होने के कारण योग, परन्तु आत्मा और परमात्मा के मान-वीय प्रेम-सम्बन्ध के कारण वैष्णव-युग के उच्चतम कोटि तक पहुँचे हुए प्रणय निवेदन से भिन्न नहीं।" इस प्रकार महादेवी जी रह-स्यवाद को एक नवीन दृष्टिकोण से देखतीं हैं। उनके अनुसार

रहस्यवाद प्राचीन भावधारा की भाँति योगिक क्रिया तथा कठोर नियंत्रित साधनाओं और अभ्यासों की वस्तु न होकर हृदय का शुद्ध चेतन से रागात्मक सम्बन्ध है। प्राचीन काल की भाँति रहस्यवाद बौद्धिक चिन्तन की वस्तु नहीं प्रत्युत ससीम का असीम से रागात्मक तादात्म्य है। अतः रहस्यवाद शब्द प्राचीन होने पर भी प्रयोग की दृष्टि से पूर्ण नवीन है। इसी प्रकार का रहस्य-वाद आज हिन्दी साहित्य के छाया युग में मिलता है। इसे हम ठीक रूप में रहस्योन्मुख छायावाद कहकर भी पुकारते हैं। यही रहस्योन्मुख छायावाद, इसी प्रकार का ससीम से निःसीम का रागात्मक सम्बन्ध तथा करुणा और संवेदना द्वारा सामंजस्य की भावना उनके काव्य साहित्य में हमें देखने को मिलती है जिसका विश्लेषण विस्तृत रूप से पिछले अध्यायों में किया जा चुका है।

महादेवी जी ने छायावाद, अध्यात्मवाद तथा रहस्यवाद सभी को एक सामंजस्य की कल्पना द्वारा मिला दिया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये सोचने की भिन्न-भिन्न विचार शैलियाँ हैं तथा इनकी अभिव्यक्ति भी उनकी विशेष शैलियों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में हुई हैं परन्तु सभी शैलियाँ एक ही मधुरतम व्यक्तित्व, एक ही जिज्ञासा, एक ही विराट चेतन-सत्ता तथा एक ही सत्य का निरूपण करती हैं। सभी शैलियों का सम्बन्ध जीवन से है और जीवन स्वयं चरम सत्य की खोज में संलग्न है, अतः सभी पथ सत्य के मार्ग पर पहुँचते-पहुँचते एक दूसरे से समन्वित हो जाते हैं और अन्त में शेष रह जाती है चरम सत्य की भावना, हमारा युग स्वातंः सुखाय की सात्विकता पर विश्वास करे अथवा न करें, पर स्वस्वार्थाय की व्यवहारिकता पर उसकी निष्ठा खूब है। एक निष्क्रीय बुद्धिवाद और हृदय रहित सक्रियता भी उसका अभिशाप है। महादेवी जी लिखती हैं—

"व्यक्तिगत रूप से स्वान्तः सुखाय की मंगल भावना पर भी मेरा विश्वास है और उसके लिये आवश्यक आत्म निरीक्षण पर भी। क्षणभर में बीज को वृक्ष दिखा देने वाले ऐन्द्रजालिक का वैभव मेरे साथ नहीं और अपनी विकलांगता के बल पर याचना करने वाले भिक्षुक की दरिद्रता भी मेरे पास नहीं। मैं तो विश्वास के साथ तिल-तिल मिट कर कण कण बनाती हूँ। अतः मेरे निकट बिना मूल्य मिली जय से वह पराजय, अधिक मूल्यवान ठहरेगी जो जीवन की पूर्ण शक्ति-परीक्षा ले सके।"

सारांश में इन समस्त व्याख्याओं और आलोचनाओं के आधार पर हम यह निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि महादेवी जी की चिन्तन शैली में विचार और अनुभूति का समन्वय है। उनकी विचारधारा में कहीं भी किसी प्रकार की उलझन नहीं है; वह गम्भीर भावधारा को संभाले आगे विश्वास पूर्वक बढ़ने का क्रम जारी रखती हैं। यद्यपि उनकी आलोचनाएँ कहीं-कहीं पर दुरुह हो उठती हैं, जिसका मुख्य कारण है विषय की गम्भीरता तथा विचार की अपेक्षा चिन्तन को ग्रहण करने में कठिनाई का आना पर उसे कहीं भी उलझी हुई नहीं कहा जा सकता है। नगेन्द्र जी के शब्दों में उनकी शैली 'शुक्ल जी की शास्त्रीय गवेषणा से सर्वथा भिन्न यह शैली प्रसाद और पन्त की ठोस बौद्धिक विवेचना की अपेक्षा टैगोर की लचीली काव्य चिन्तना के अधिक समीप है।" महादेवी जी की शैली की द्वितीय विशेषता है उसकी क्रम बद्धता, जिसे नगेन्द्र जी के शब्दों में ऐतिहासिक एक-सूत्रता भी कहा जा सकता है, तथा उस सब के पीछे है सामंजस्य की भावना। एक ओर उन्होंने छायावाद की प्रकृति भावना के साथ सम्बन्ध निरू-पण किया है तथा दूसरी ओर आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों का समाज की आर्थिक परम्पराओं के साथ उनकी आलोचनाओं में

अन्तर्मुखी वृत्तियों का संतुलन है तथा उन्होंने साहित्य की भाव-धाराओं का जीवन के धरातल पर विश्लेषण करके उन्हें जीवन और उसमें व्याप्त सत्य की ओर उन्मुख होने को प्रेरित किया है। उनके सिद्धान्त सदैव हिन्दी साहित्य की गतिविधि को प्रेरणा देते रहेंगे तथा उसका उलझनों में, आलोक स्तम्भ की भाँति पथ प्रदर्शन भी करते रहेंगे।

———

अध्याय १०

महादेवी के रेखा चित्र

जितना महादेवी जी का काव्य प्रधान है उतने ही उनके रेखा चित्र भी। महादेवी जी के रेखा चित्रों की विस्तृत व्याख्या करने से पूर्व मैं सर्व श्री गोपाल कृष्ण कौल के विचार उद्धृत करूँगा।

"टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से बने 'स्कैच' चित्रकार की जीवन के प्रति होने वाली सजीव अनुभूति की साकार अभिव्यक्ति करते हैं। 'रेखाचित्र' न कहानी है और न गद्यगीत, न निबन्ध हैं और न संस्मरण; रेखाओं से जीवन के विविध रूपों का आकार देने की प्रणाली की विशेषता को अपना कर ही शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले शब्द-चित्रों को रेखाचित्र की संज्ञा प्रदान की गई। महादेवी के 'रेखाचित्र' उनके जीवन से सम्बन्धित हैं। जिन पात्रों का चित्रण इनमें हुआ है वे कलाकार की जीवन कथा का हृदय छूने वाले अंग हैं।"

वास्तव में 'रेखाचित्र' लिखने की शैली का आरम्भ चित्रकला द्वारा ही समझना श्रेयस्कर होगा। आड़ी तिरछी रेखाओं के आधार पर अंकित चित्र चित्रकार की जीवन से सम्बन्धित अनुभूति अच्छी या बुरी, दुःखान्त अथवा सुखान्त, की साकार अभिव्यक्ति करते हैं। चित्रकला का ललित कलाओं में प्रधान स्थान रखा गया है परन्तु चित्रकला द्वारा उपस्थित किए गये चित्र सूक्ष्म होने पर साधारण जनता की ग्राह्य बुद्धि से परे की वस्तु हो जाते हैं। जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत (Classical music) श्रेष्ठ एवम् उच्चकोटि

का होने पर भी साधारण प्राणी के मनोरंजन की वस्तु नहीं बन सकता उसी प्रकार उच्चकोटि के चित्र, जिसमें अनुभूति के आधिक्य के कारण सूक्ष्मता अधिक होती है, सर्व साधारण की समझ से बाहर ही रहते हैं। टेगोर की चित्रकला केवल कलाविशारदों तथा प्रदर्शनियों की ही वस्तु अधिक हैं, जनता का उससे विशेष लाभ नहीं हो सकता। यह मेरा अपना मत है। इसी से चित्रकला के रेखांकित चित्रों के अनुकरण पर साहित्य में शब्दों द्वारा रेखाचित्रों का प्रारम्भ हुआ। रेखाचित्र केवल व्यक्तियों का ही नहीं प्रत्युत स्थान, वातावरण और भावात्मक व्यक्तित्व का भी खींचा जा सकता है। 'रेखाचित्र' की कला बहुत कुछ 'फोटोग्राफी' की कला की भाँति है। जिस प्रकार कैमरामैन अपने कैमरे द्वारा किसी वस्तु, स्थान अथवा व्यक्ति का वास्तविक चित्र ले लेता है उसी प्रकार रेखा चित्रकार भी विश्व की किसी भी वस्तु का चेतन तथा अचेतन का—चित्र अपने शब्दों द्वारा बना लेता है जिसमें उसी प्रकार की वास्तविकता रहती है। पर चित्रांकन के समय रेखा-कार कैमरामैन की भाँति अपने दृष्टि कोण का पुट अवश्य देता है जिसके द्वारा उस रेखांकित चित्र में अधिक सजीवता, अधिक व्यक्तित्व की छाप पड़ जाती है। प्रत्येक प्राणी का जीवन में अपना निजि दृष्टिकोण रहता है तथा उसकी विचार शक्ति, उसके देखने का ढंग, उसकी अनुभूति तथा उसकी अभिव्यक्ति सभी कुछ मौलिक होती है। इसी कारण एक ही वस्तु के 'रेखाचित्र' विभिन्न दृष्टि-कोणों के कारण एक दूसरे से भिन्न रहते हैं। 'रेखाचित्रकार' की दृष्टि जितनी पैनी होगी तथा उसकी अनुभूति जितनी चित्रित सत्य के निकट होगी उतना ही उसके द्वारा अंकित किया गया 'रेखा-चित्र' सजीव और प्रभावोत्पादक होगा तथा जीवन के भी अधिक समीप होगा वह वस्तु या व्यक्ति में स्थित अनेक प्रभावों और प्रति-क्रियाओं के दर्शन करके केवल शरीर मात्र का ही ढांचा नहीं खींचता वरन् मन, आत्मा और जीवन की विशेषताओं का भी

नक्शा अपनी रेखाओं में प्रस्तुत करता है। रेखाचित्र आकार में प्रायः छोटे ही होते हैं क्योंकि अधिक विस्तार उसके सम्पूर्ण सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। 'रेखाचित्र' में विस्तार की अपेक्षा गठन होना अपेक्षित है। दूसरे रेखाचित्र गीत (Lyric) नही हैं जहाँ व्यक्ति गत भावनाओं का अथवा व्यक्ति और वस्तु विशेष के आकर्षणों का प्राधान्य रहता हो प्रत्युत 'रेखाचित्र' में कलाकार व्यक्ति विशेष का रेखा चित्रण करते हुए भी समाज को नहीं भुला सकता जन जीवन से अलग करके कलाकार किसी व्यक्ति विशेष का रेखाचित्र अंकित नहीं कर सकता। रेखाचित्रण के हेतु उसे जन जीवन के समीप आना ही पड़ेगा। रेखचित्र स्थूल चित्रण के साथ मानस की रहस्यमय अनुभूति को उसकी गहराई से निकाल कर प्रत्यक्ष में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करते हैं।

महादेवी जी ने अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने के हेतु शब्द और रेखाएँ—दोनों को ही अपनी कला का साधन बनाया है। चित्रण में उनकी विशेष रुचि है। उनके गीति काव्य में प्रकृति से सम्बन्धित अनेक शब्द चित्र हैं। उन्होंने अपने काव्य में अपनी रहस्यमयी भावनाओं की अभिव्यंजना के लिये छोटे-छोटे प्रतीकों द्वारा चित्र उपस्थित किए हैं। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि महादेवी जी एक कुशल चित्रकार भी हैं। 'दीपशिखा' में गीतों की पृष्ठभूमि के रूप में चित्र दिये गये हैं और चित्रों की अभिव्यक्ति गीतों में उपस्थित शब्द चित्रों द्वारा की गई है। जिस प्रकार सुन्दर चित्रकार प्रकृति के अनेकों उपकरणों को रेखांकित करके रंगों तथा अपनी कुशलता द्वारा भावना को रूप प्रदान कर देती है उसी प्रकार देवी जी अपनी रहस्यमयी भावनाओं की अभिव्यक्ति के हेतु अपने काव्य-चित्रों को प्रस्तुत करने के लिए प्रकृति के अनेकों उपकरणों का प्रतीक के रूप में प्रयोग करती हैं। वे बसन्त से आनन्द, वर्षा से करुणा, ग्रीष्म से व्याकुल तथा पतझर से दुख को संकेतों द्वारा अभिव्यक्त करती हैं तथा सुख के लिये 'मलय पवन"

मधु, 'रश्मि' आदि शब्दों का और प्राणों के लिये 'दीपक' 'दीपशिखा' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार महादेवी जी ने प्रतीकों द्वारा अपनी अव्यक्त, अनुभूति पूर्ण रहस्यमयी भावनाओं का प्रकटी करण किया है। प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति करने की ही शैली है क्योंकि जब कवि शब्दों द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाता है तभी वह ऐसे प्रतीकों का संबल लेता है। एक ओर इस प्रकार से वह अपने भावों को प्रकट भी कर देता है तथा दूसरी ओर उसकी काव्य कला में सौन्दर्य की अभिवृद्धि हो जाती है। उदाहरणार्थ—

'चाँदनी का अंग राग,
मांग में सजा पराग,
रश्मितार बांध मृदुल,
चिकुरभार री।
ओ विभावरी।'

पर अपने गीति काव्य में महादेवी जी पूर्णतः व्यक्ति प्रधान है। समाज की भावनाएँ उनके सम्पूर्ण काव्य में नहीं आ सकी हैं। सर्वत्र उनके काव्य में उनकी ही व्यक्तिगत छाया, उनके ही अश्रु-बिन्दु तथा उनकी ही अपनी अनुभूति प्रकाश में आ सकी है। उनकी सामंजस्य की भावना, उनकी सत्य की खोज सब के पीछे उनका अपना व्यक्तित्व प्रधान है। इस प्रकार के सम्पूर्ण काव्य में अपने ही सुख दुखों को लिए हुए चलती हैं। गोपाल कृष्ण कौल जी लिखते हैं—

महादेवी वर्मा अपने गीति-काव्य में व्यक्ति प्रधान हैं, समाज की अभिव्यक्ति का उसमें अभाव है। उसमें वे व्यष्टि हैं, समष्टि नहीं। वैसे उसमें प्रकृति के विराट सौन्दर्य के दर्शन किए गए हैं, जड़ में चेतन के स्पन्दन को अनुभव किया गया है, किन्तु जो चेतन का यथार्थ रूप है—जन जीवन उसके दर्शन का उसमें अभाव है।

इसलिए गीति-काव्य में उनकी व्यक्ति साधना है। प्रियतम के रूप में 'ब्रह्म' उनका साध्य, विरह उनकी साधना, और परमात्मा से मिलने को बेचैन आत्मा उनकी साधिका है। गीति-काव्य में वे प्रेमिका हैं, प्रणयिनी हैं। प्रेम की अतृप्त प्यास, विरक्तिमय अनुराग, वासनाहीन विरह पीड़ा और एक अज्ञात ईश्वरीय सौन्दर्य के प्राकृतिक सौन्दर्य में दर्शन—उनके काव्य के विषय है। वे वेदना करुण और दुःख की कवि हैं।" 'रश्मि' की भूमिका में महादेवीजी ने लिखा है कि 'संसार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी को प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगती है।' यद्यपि वेदना, करुणा तथा संवेदना द्वारा ही मानव दूसरों तक पहुँच पाता है तथा सत्य की अनुभूति भी इसी करुणा द्वारा संभव है, परन्तु महादेवी जी की वेदना ने उसके काव्य में उनके व्यक्तिगत स्वरूप को ही अधिक निखारा है। समष्टि से वे सर्वथा दूर ही रही हैं। उनके काव्य में समाज की यथार्थ और जाग्रत चेतना को स्थान प्राप्त नहीं हो सका है। वर्तमान समाज में जो दुख, दैन्य, विषमता और उत्पीड़न की झलक दिखाई देती है वह उनके गीतिकाव्य में न आ सकी क्योंकि उनमें जो दुख और वेदना है वह भी उनके अलौकिक प्रेम की विरह पीड़ा के लक्षण मात्र हैं। इसी से उन्होंने अधिकांश उपासना तथा प्रतीक भी प्रकृति से ही ग्रहण किए हैं, जन-जीवन से नहीं। सारांश में अपने काव्य में, यद्यपि वे जन-जीवन की पीड़ा, उसके हर्ष तथा उसकी कठिनाईयों से परिचित हैं। वे अन्तर्मुखी ही होकर रह गई हैं। यथार्थवादी दृष्टिकोण जिससे वे जीवन के आदि-काल से ही परिचित हैं, उनके रेखा चित्रों में ही प्रकाशन पा सका है। रेखा चित्रों में उनकी भावधारा ने जैसे करवट ले लिया है और वे

बहिर्मुखी हो उठी हैं। गीतिकाव्य में जो कला व्यक्ति-प्रधान थी, रेखा चित्रों में वही आकर समाज प्रधान बन गई है। जन जीवन में व्याप्त दुख, दैन्य, उत्पीड़न और अन्धकार के चित्रों को उन्होंने अपनी भावनाओं तथा शब्दों द्वारा रेखाओं में अंकित कर दिया है। इन रचनाओं में समाज के प्रति महादेवी जी की चेतना तथा उनके जागरूक दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं। शब्दों को चित्रों का आकार दे देकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे जीवन की विभिन्न झांकियाँ हमारे सामने उपस्थित करदी हैं। उनके रेखा चित्र मूक होने पर भी जीवन की सजीवता लिये हुए हैं। रेखाचित्रों में उनकी भावना प्रणयिनी की नहीं वरन् उसमें माता का दुलार, बहिन का स्नेह और नारीत्व की विविध अनुभूतियों की स्पष्ट अनुभूति की अभिव्यक्ति है। जगत में व्याप्त दुख, दरिद्रता, दैन्य, उत्पीड़न, अशिक्षा, शोषण आदि के प्रति असीम संवेदना तथा सहानुभूति है। साथ ही साथ शोषित वर्ग के प्रति विद्रोह की भावना भी परिलक्षित होती है। महादेवी जी के सम्पूर्ण साहित्य में यदि कहीं यथार्थ का चित्रण तथा समाज की भावनाओं का प्रतिनिधित्व मिलता है तो इन रेखाचित्रों में। रेखाचित्रों में महादेवी जी के विचार चिन्तन का धरातल परोक्ष के प्रति जिज्ञासा भाव न होकर यथार्थ जीवन का जीता जागता चित्रण ही है। वे स्वयं लिखती हैं—'समय समय पर जिन व्यक्तियों के सम्पर्क ने मेरे चिन्तन को दिशा और संवेदना को गति दी है उनके संस्मरणों का श्रेय जिसे मिलना चाहिए, उसके सम्बन्ध में मैं कुछ विशेष नहीं बता सकती कहानी एक युग पुरानी, पर करुण से भीगी है।" आगे चलकर इसी करुण कहनी की झलक वे हमें देती हैं जिसने उनके मन, उनकी आत्मा को गहरी संवेदना से भर दिया। वे लिखती हैं—"मेरे एक परिचित परिवार में, स्वामिनी ने अपने एक वृद्ध सेवक को किसी तुच्छ से अपराध पर, निर्वासन का दण्ड दे डाला और

फिर उनका अहंकार, उस अकारण दण्ड के लिए असंख्य बार मांगी गई क्षमा का दान भी न दे सका। ऐसी स्थिति में वह दरिद्र पर स्नेह में स्मृद्ध बूढ़ा, कभी गेंदे के मुरझाये हुए दो फूल, कभी हथेली की गर्मी से पसीजे हुए चार बताशे और कभी मिट्टी का एक रंगहीन खिलौना लेकर अपने नन्हें प्रभुओं की प्रतीक्षा में पुल पर बैठा रहता था। नये नौकर के साथ घूमने जाते हुए बालकों को जब वह अपने तुच्छ उपहार देकर लौटता, तब उसकी आँखें गीली हो जातीं थीं। सन्, ३० में उसी मृत्यु को देखकर मुझे अपना बचपन और उसे अपनी ममता से घिरे हुए रामा इस तरह स्मरण आये कि अतीत की अधूरी कथा लिखने के लिये मन आकुल हो उठा। फिर धीरे-धीरे रामा का परिवार बढ़ता गया और अतीत चित्रों में वर्तमान के चित्र भी सम्मिलित होते गए। उद्देश्य केवल यही था कि जब समय अपनी तूलिका फेर कर इन अतीत चित्रों की चमक। .टादे तब इन संस्मरणों के धुन्धले आलोक में मैं उन्हें फिर पहचान सकूँ।" इस प्रकार महादेवी जी के रेखाचित्र उन गहन भावनाओं के चित्र हैं जिनका सम्बन्ध समाज के किसी न किसी दलित, पीड़ित तथा शोषित वर्ग से उनके जीवन में हो चुका है। अतीत के गहन अनुभवों को, भावों को तथा उन क्षणों को जिन्होंने उनके मन पर अत्यधिक प्रभाव डाला तथा उन्हें अनुभूति प्रदान की महादेवी जी ने शब्दों द्वारा रेखांकित कर दिया है जो आज हमारे समक्ष रेखाचित्रों के रूप में उपस्थित हैं। जैसा कि उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें जीवन में कभी किसी प्रकार का अभाव नहीं खटका जिसकी प्रतिक्रिया उनके दुखवाद के दर्शन में हुई पर मैं समझता हूँ कि यह अधिक सत्य नहीं है। उन्होंने जीवन में बहुत दैन्य और उत्पीड़न देखा है, चाहे वह दुःख उनके स्वयं के जीवन में घटित न होकर दूसरों के जीवन में घटित हुआ हो पर था वह भी मन का अनुभव जिसने आत्मा और मस्तिष्क दोनों

को अप्रभावित नहीं छोड़ा। किसी भी वस्तु के अनुभव के लिए यह सर्वदा आवश्यक नहीं कि उसका स्वयं ही उपभोग किया जाए प्रत्युत दूसरों के अनुभव का भी उतना ही प्रभाव हमारे ऊपर हो सकता है जितना कि स्वयं के अनुभव का। केवल इसके लिए चाहिए एक करुण पूर्ण तथा संवेदन शील हृदय जो सहज ही दूसरों के दुःख सुखों से प्रभावित हो सके तथा उसे अपना बनाकर रख सके। इसी कारण महादेवी जी के रेखाचित्रों का उनके साहित्य में विशिष्ट स्थान है। दूसरे इन रेखाचित्रों का सम्बन्ध महादेवी जी के अपने जीवन से भी है। 'अतीत के चलचित्र' की भूमिका में वे लिखती हैं—

"इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं; उसके बाहर तो अनन्त अंधकार के अंश हैं। मेरे जीवन के परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपान्तरित हो जायगा। फिर जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है। उसी परिचय के लिये मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहना कर दूरी की सृष्टि क्यों करती! परन्तु मेरा निकटताजनित आत्म-विज्ञापन उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है। जो इसके पार नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता।"

वास्तव में महादेवी जी की दोनों पुस्तकों में—'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चल चित्र'—जीवन संस्मरण भी निहित हैं, पर फिर भी उनमें दिये गये 'रेखाचित्र' ही अधिक हैं। रेखाचित्रों

में अंकित जीवन के छोटे-छोटे चित्र ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन की झांकियाँ नहीं है जिनका उद्देश्य आदर्श भावना स्थापित करना हो वरन् वे तो भारतीय जीवन के वे कुरूप चिह्न हैं जो शोषण के कारण उठने में असमर्थ हो गये हैं, अथवा कर दिये हैं। उन रेखा चित्रों में अशिक्षित, दलित, दीन तथा उन शोषितों के जीवन की झलकियाँ हैं जिन्हें समाज नीच, हीन, अछूत तथा अशिक्षित कहकर उठाने की अपेक्षा 'दूर-दूर' कह कर ठुकरा देता है। ऐसे दीन, मलिन तथा दरिद्र चित्र महादेवी जी की करुणा तथा सहानुभूति पाकर सजीव हो गये हैं तथा उनके रेखाचित्रों के पात्र बन बैठे हैं। महादेवी जी ने ऐसे पात्रों का जीवन ही केवल अपने रेखाचित्रों में अंकित नहीं किया है बल्कि उनके अन्तरंग का भी अध्ययन करके इन रेखाचित्रों में प्रस्तुत किया है। भारतीय नारी के जीवन का अध्ययन तथा उसके ऊपर किए गये अत्याचारों के प्रति असंतोष की भावना उनके रेखाचित्रों में दी गई है। 'स्मृति की रेखाएँ' में दिया गया प्रथम रेखाचित्र एक देहाती महिला का है जिसका नाम है 'भक्ति' जो अशिक्षा और अज्ञान के कारण जीवन के विकास में सबसे पीछे रह गई है तथा जिसमें दुर्गुणों के साथ कुछ ऐसे गुण भी हैं जो अनायास ही हमारे मन को आकर्षित कर लेते हैं। यद्यपि अशिक्षा और अज्ञानता दोनों ही मानव समाज द्वारा थोपे गये दुर्गुण हैं फिर भी समाज उन्हें केवल दुर्गुण कहकर उनकी भर्त्सना करता है। यही है समाज का अत्याचार। दूसरा चित्र इसमें एक चीनी फेरी वाले का है जो अपने देश को छोड़कर अपनी खोई हुई बहिन की तलाश में कपड़े की फेरी लगाता फिरता है। विगत जीवन में उसने कितना कष्ट सहा, कितनी यातना झेली और कितनी व्यथा उठाई, इसका चित्र महादेवी जी ने अपनी सम्पूर्ण करुणा और संवेदना के आधार पर बहुत ही सजीवता लिए हुए चित्रित किया है। चीनी फेरी वाले के रेखाचित्र को हिन्दी के प्रसिद्ध संस्मरण

लेखक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने हिन्दी साहित्य का चित्र स्मरणीय 'रेखाचित्र' कहा है। इसके अतिरिक्त 'स्मृति की रेखाओं' में गाँव की दरिद्रता, पहाड़ी जीवन, धोबियों की पारिवारिक झाँकी के मन हिलाने वाले रेखा चित्र संग्रहीत हैं।

'अतीत के चलचित्र' में प्रथम रेखाचित्र एक ग्रामीण भृत्यका है जो अपने बचपन में ही घर छोड़ कर भाग आता है और महादेवी जी के परिवार में बचपन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक बहुत ही सचाई और ईमानदारी से काम करता है। वही भृत्य रामू है जिसके सम्बन्ध में उन्होंने भूमिका में भी लिखा है तथा जो उनके जीवन में अत्यधिक घुल मिल गया था। इस रेखाचित्र में रामू के चरित्र के बहुत से गुणदोष निखरकर प्रत्यक्ष हो जाते हैं। इसका दूसरा चित्र है एक बाल विधवा का जो परिवार में अत्याचार तथा उपेक्षाभाव सहते हुए घुट-घुट कर अपना जीवन व्यतीत करती है। आँसुओं से सिक्त उसके नेत्र उसके अन्तर की सम्पूर्ण वेदना को व्यक्त कर देते हैं। यह चित्र भी बहुत ही सजीव तथा मार्मिक हो उठा है। तीसरा रेखाचित्र विमाता के दुर्व्यवहार की हमें पूरी-पूरी झाँकी देता है। चौथे रेखाचित्र में धोबियों के पारिवारिक जीवन की भाँति भंगियों के पारिवारिक जीवन का चित्र है तथा साथ ही साथ भारतीय समाज की नारी सबिया का कर्मठ चित्र है, जो अशिक्षित तथा दुखित होते हुए भी त्याग और उत्सर्ग की महान् भावना से अनुप्राणित है। सब्जी वाले अन्धे अलोपी, बदलू कुम्हार तथा कर्मठ पहाड़ी महिला के रेखाचित्र भी हिन्दी सहित्य में अपने ढंग के सफल रेखाचित्र हैं। इस प्रकार इसमें ११ (ग्यारह) संस्मरण कथाएँ आसकीं हैं। इन रेखाचित्रों के चरित्र लेखिका के वर्तमान तथा विगत जीवन से संबन्ध रखते हैं। इन दोनों संग्रहों में, जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है, केवल उनके रेखाचित्र ही नहीं दिये

गये हैं प्रत्युत उनके जीवन के संस्मरण भी हैं जिन्हें व्यक्ति-प्रधान निबन्धों की संज्ञा देना ही अधिक उचित होगा। इन रेखाचित्रों में बहुत वास्तविकता तथा बल है जो हिन्दी साहित्य के लिये गौरव की बात है। आईये कुछ रेखाचित्रों की झाँकी की जाए। रामू यद्यपि अशिक्षित ग्रामीण है परन्तु उसके हृदय की सचाई और ईमानदारी क्या किसी शिक्षित और कुलशील व्यक्ति से कम है—"जब हम सघन आम की डाल में पड़े झूले पर बैठकर रामा की विचित्र कथाओं को बड़ी तन्मयता से सुनते थे तभी एक दिन हल्के से ज्वर के साथ मेरे कान के पास गिल्टी निकल आई। रामा ने एक बुढ़िया की कहानी सुनाई थी जिसके फूले पैर में से भगवान ने एक वीर मेंढ़क उत्पन्न कर दिया था। मैंने रामा को यह समाचार देते हुए कहा—'मालूम होता है मेरे कान से कहानी वाला मेंढक निकलेगा' वह बेचारा तो सन्न हो गया। फिर ईंट के गरम टुकड़े को गीले कपड़े में लपेट कर उसने कितना सेंकते सेंकते वह न जाने क्या बड़ बड़ाता रहता था जिसमें कभी, हनुमान और कभी भगवान का नाम सुनाई दे जाता था। दो दिन और दो रात वह मेरे बिछौने के पास से हटा ही नहीं—तीसरे दिन मेरी गिल्टी बैठ गई, पर रामा को तेज बुखार चढ़ आया। उसके गिल्टी निकली, चिरी गई और वह बहुत बीमार रहा पर उसे संतोष था कि मैं सब कष्टों से बच गई।" और "रामा जब अच्छा हो गया तब माँ प्रायः कहने लगी—'रामा अब तुम घर बसा लो जिससे बाल बच्चों का सुख देख सको।' 'बाई की बातें! मोय नासमिटे अपनन खों कर कनने हैं, मेरे राजा हरे बने रहें—जेई अपने रामा की नैय्या पार लगा देहें' ही रामा उत्तर दे रहा था।" इस प्रकार रामा के चरित्र में दूसरों के लिये मिटने का भाव देखने को मिलता है जो शिक्षित समाज के व्यक्ति के लिये केवल स्वप्न की सी कल्पना है। यही रामा का व्यक्तित्व हमारे लिये अनुकरणीय

हो उठता है जिसके अभाव में हम शिक्षित तथा बलवान होते हुए भी बहुत कमजोर दीख पड़ते हैं।

विमाता ने छोटी बालिका के प्रति दुर्व्यवहार को प्रदर्शित करती हुई महादेवी जी तीसरे संस्मरण में लिखती हैं—"और एक दिन आता है। चूल्हे पर चढ़ाया दूध उफना जा रहा था। बिन्दा के नन्हे-नन्हे हाथों ने दूध की पतीली उतारी अवश्य, पर वह उसकी उँगलियों से छूट कर पैरों पर गिर पड़ी। खौलते दूध से जले पैरों के साथ दरवाजे पर खड़ी बिन्दा का रोना देख मैं तो हत् बुद्धि सी हो रही। पंडिताइन चाची से कहकर वह दवा क्यों नहीं लगवा लेती, यह समझना मेरे लिये कठिन था। उस पर जब बिन्दा मेरा हाथ अपने जोर में धड़कते हुए हृदय से लगाकर कहीं छिपा देने की आवश्यकता बताने लगी, तब तो मेरे लिए सब कुछ रहस्यमय हो उठा।" इस प्रकार नन्ही बिन्दा अबोध रहने पर भी रहस्यमयी हो उठी। भारतीय समाज में विमाता का दुर्व्यवहार पाप की गठड़ी की भाँति इच्छा न होते हुए भी ढोना पड़ता है। जीवन में एकांगिता तथा स्वार्थपरता के कारण हम दूसरों को अपने पापों का प्रायश्चित करने पर बाध्य करते हैं। बिन्दा के अभी खेलने खाने के दिन हैं परन्तु दुर्भाग्य ने उसे अभी से बहुत सी बातें जान लेने और सह लेने के लिए बाध्य कर दिया है। इस प्रकार महादेवी जी ने विमाता के दुर्व्यवहार द्वारा हमारे समाज की विमाताओं की आलोचना की है। एक और चित्रण को देखने से बिन्दा के प्रति करुणा उमड़ पड़ती है और दूसरी ओर विमाता के प्रति विद्रोह की भावना। अब देखिए सबिया का चित्रण जो दुखी तथा अशिक्षित होते हुए भी उत्सर्ग की भावनाओं से अनुप्राणित है—"साँझ सवेरे बच्चों से लदी फंदी सबिया को बड़ी कठिनाई से थाली ले जाते देखकर मैंने उसे वहीं

बच्चों को खिलाकर खा लेने की बात सुझाई, उसने इस तरह सकुचा कर उत्तर दिया मानो किसी अक्षम्य अपराध की स्वीकारोक्ति हो। कहा—'बच्चिया के आंधर-धूधर आनी है, मलकिन! ओह का बिन खियाये पियाये कसत खाब।' फिर कुछ कहना व्यर्थ था, पर दुखी और दुर्बल स्त्री पर दो दो बच्चों के साथ अन्धी मां का भार लाद ले जाने वाले मैकू पर मेरा मन झल्ला उठा। पुरुष भी विचित्र है। वह अपने छोटे से छोटे सुख के लिये स्त्री को बड़ा से बड़ा दुख दे डालता है और ऐसी निश्चिन्तता से मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य ही दे रहा है। सभी कर्तव्यों को वह चीनी से ढकी कुनैन के समान मीठे-मीठे रूप में ही चाहता है। जैसे कि कटुता का आभास मिला कि उसकी पहली प्रवृत्ति सब कुछ जहाँ का तहाँ पटककर भाग खड़े होने की होती है। सबिया के अकारण शालीनता पर मेरी सकानत मानता उत्पन्न हो गई थी कि उसका समय एक प्रकार से अच्छा ही करने लगा।" और "इसी सलज्ज और कर्तव्यनिष्ट सबिया को लक्ष्य करके जब एक परिचित वकील पत्नी ने कहा—'आप चोरों की औरतों को क्यों नौकर रख लेती हैं।' तब मेरा शीतल क्रोध उस जल के समान हो उठा। जिसकी सरलता के साथ, मिट्टी ही नहीं पत्थर तक काट देने वाली धार भी रहती है। मुँह से अचानक निकल गया,—'यदि दूसरे के धन को किसी न किसी प्रकार अपना बना लेने का नाम चोरी है तो मैं जानना चाहती हूँ कि हम में से कौन सम्पन्न महिला चोर पत्नी नहीं कही जा सकती?' प्रश्न करने वाली के मुख पर कालिमा सी फैलते देख मुझे कम क्षोभ नहीं हुआ, पर तीर छूट ही नहीं, लक्ष्य पर चुभ भी चुका था। सच तो यह है कि मैं सबिया को उस पौराणिक नारीत्व के निकट पाती हूँ जिसने जीवन की सीमा रेखा किसी अज्ञात लोक तक फैलादी थी। उसे यदि जीवन के लिए मृत्यु से लड़ना पड़ा तो यह न मरने के लिये

जीवन से संघर्ष करती है।" सबिया का चरित्र महादेवी जी के चित्रण में खूब निखरा है। सबिया एक कर्त्तव्य परायण भारतीय नारी है जिसमें उत्सर्ग की भावना है, जो देना जानती है, बच्चों के लिए, पति के लिए तथा सेवा करना ही जिसका धर्म है। सबिया का जीवन रोते-रोते बीतता है पर फिर भी उसमें जीवन की भावना शेष है, वह मृत्यु नहीं चाहती वरन् जीवन के हेतु मृत्यु से भी संघर्ष करने को कटिबद्ध है। साथ ही साथ महादेवी जी ने बड़े घरों की स्त्रियों की कटु आलोचना की है जो छोटों को चोर, नीच तथा सब कुछ कहने में नहीं हिचकतीं हैं। यहाँ पर महादेवी की विचारधारा विद्रोह की सीमा तक जा पहुँची है तथा उनकी चोरी की व्याख्या, जिसको उन्होंने दूसरों की वस्तु को अपहरण करने की भावना के समकक्ष रखकर देखा है, निश्चय ही हमारे समाज की दृष्टि-परिवर्तन में सहायक होगी। 'सबिया' का 'रेखाचित्र' अपने ही ढंग का चित्रण है। यद्यपि 'रेखाचित्रों' में भी लेखिका युग चेतना के अनुरूप विद्रोहिणी नहीं बनी है, फिर भी उसमें जैसे बुद्ध की करुणा और माता के विराट मातृत्त्व के दर्शन होते हैं। वे घृणा से अधिक ममता और सहानुभूति में विश्वास रखती हैं, इसलिए ही उनकी विद्रोह की आग पर भी करुणा और सहानुभूति का हिम आच्छादित है, फिर भी कहीं,कहीं वह उभर ही आया है, विशेषतः नारी के प्रति अत्याचार को वे सहन नहीं कर सकतीं। लक्ष्मा का चित्र खींचते हुए नारी पर होने वाले पुरुष के अत्याचार के प्रति वह कह उठती हैं—"एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है, और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाये बिना नहीं रहतीं।" करुणा के चरित्र महादेवी जी ने और भी सुन्दर खींचे हैं।

'अतीत के चलचित्र' के छटे संस्करण में करुणा का एक पूर्ण चित्र देखिए—"स्मरण नहीं आता वैसी करुणा मैंने कहीं और देखी है। खाट पर बिछी मैली दरी, सहस्रों सिकुड़न भरी मलिन चादर और तेल के कई धब्बे वाले तकिये के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात् किया उसका ठीक चित्र दे सकना सम्भव नहीं है। वह १८ वर्ष से अधिक की नहीं जान पड़ती थी—दुर्बल असहाय जैसी। सूखे ओठ वाले, सांवले पर रक्त हीनता से पीले मुख में आँखें ऐसे जल रहीं थीं जैसे तेल हीन दीपक की बत्ती।" इसी संस्मरण में आगे चलकर व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान की माँ को जब समाज सहन नहीं कर पाता और जब कि उस नारी के स्त्रीत्व को लूटा गया है तथा उसे धोखा दिया गया है तब लेखिका की आत्मा विद्रोहिणी होकर बोल उठती है—"अपने अकाल वैधव्य के लिये वह दोषी नहीं ठहराई जा सकती, उसे किसी ने धोखा दिया इसका उत्तरदायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता पर उसकी आत्मा का जो अंश, हृदय का जो खण्ड उसके समान है, उसके जीवन मरण के लिये केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार नहीं करता तो केवल इसी मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को अपने बालक को अस्वीकार कर देगी? संसार में चाहे इसको कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो परन्तु अपने बालक के निकट तो यह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी? इसी कर्त्तव्य को अस्वीकार करने का यह प्रबन्ध कर रही है। किस लिए, केवल इसलिए या तो उस वंचक समाज में फिर लौट कर गंगा-स्नान कर, व्रत-उपवास, पूजा-पाठ आदि के द्वारा सती विधवा का स्वांग भरती हुई और भूलों की सुविधा पा सके या किसी विधवा-आश्रम में पशु के समान नीलाम पर चढ़कर कभी नीची, कभी ऊँची बोली पर बिके, अन्यथा एक-एक बूंद विष

पीकर धीरे-धीरे प्राण दे।" महादेवी जी की दृष्टि में ऐसा समाज जो क्रूरता तथा अत्याचार करके उसकी ओर से मुँह फेर कर अज्ञान सा बन जाता है तथा अपने अत्याचारों का भार दूसरों पर डाल देता है, वंचक समाज है जिसमें नारी की स्थिति केवल बाजार में बिक्री के लिए आई हुई वस्तु से अधिक कुछ नहीं है। पर हमी सब कुछ सह सकती हैं पर उसके हृदय की शिशु के प्रति ममता जैसी की तैसी ही बनी रहती है। संसार में वे सब कुछ त्याग सकती है पर उसके हृदय की वात्सल्य भावना को उससे कोई नहीं छीन सकता। उनकी दृष्टि में पुरुष ने स्त्री का स्तीत्व, नारीत्व तथा सब कुछ छीन लिया है वह अपना मातृत्व किसी भी प्रकार नहीं देगी। वे लिखती हैं—"स्त्री अपने बालक को हृदय से लगाकर जितनी निर्भर है, उतनी किसी और अवस्था में नहीं। वह अपनी सन्तान की रक्षा के समय जैसी उग्र चण्डी है वैसी और किसी स्थिति में नहीं। इसी से कदाचित् लोलुप संसार उसे अपने चक्र व्यूह में घेर कर वाणों से चलनी करने के लिए पहले इसी कवच को छीनने का विधान कर देता है। यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि 'बर्बरो, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगीं तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें। जो समाज इन्हें, वीरता, साहस और त्याग भरे मातृत्व के साथ नहीं स्वीकार कर सकता, क्या वह इनकी कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर पूजेगा। युगों से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नहीं सहन शक्ति के लिये ही दण्ड देता आ रहा है।" स्त्री के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए वे आगे कहती हैं—"स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुन्दर। जब वह इन विशेषताओं के साथ पुरुष के जीवन में प्रतिष्ठित होती है तब

उसका रिक्त स्थान भर लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही हो जाता है।" इस प्रकार स्त्री में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की सृष्टि की गई है। इन्हीं गुणों को लेकर वह पुरुष के जीवन में प्रवेश करती है और सदैव पुरुष को प्रेरणा देती है तथा उसे कलावन्त बनाने का प्रयास करती है। स्त्री अपनी ममता, अपने वात्सल्य तथा अपने रूप के आकर्षण के कारण ही समाज में इतना उच्च स्थान पा सकी है। वह सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके पोषण में प्रथम स्थान लेने की अधिकारिणी है। पर यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम उसे ठीक प्रकार नहीं समझ पाये हैं और सदैव अपनी स्वार्थपरता तथा लौलुपता के कारण उसका युगों से अनादर करते चले आये हैं। पर आज उसके हृदय में करुणा के स्थान पर विद्रोह जाग उठा है तथा निरीहता के स्थान पर डटकर संघर्ष करने की प्रबल आँधी पैदा होगई है। आखिर क्यों वह तिरष्कृत होकर समाज में अपना जीवन व्यतीत करे जबकि समाज की वह पोषिका है? इसी कारण महादेवी जी के चित्रों में विद्रोही वाणी भी मिलती है पर महादेवी जी के इस विद्रोह के पीछे किसी प्रकार के प्रतिकार की भावना नहीं है जैसा कि आज भी आधुनिक नारी के हृदय में दीख पड़ती है। महादेवी जी के विद्रोह में करुणा है, सामाजिक चेतना है तथा समय की ठीक-ठीक आवाज है। उनका विद्रोह ध्वंसात्मक न होकर क्रियात्मक है जिसका काम है कुरीतियों पर प्रहार करके उन्हें सामाजिक जीवन से निकालना तथा नारी के सत्यं शिवं और सुन्दरम् स्वरूप की पुरुष के मन में सृष्टि करना जिससे कि वह अपने कर्त्तव्य के प्रति पुनः पूर्ववत् जागरूक रहने का प्रयास कर सके। स्त्री में ममता भी है तथा शक्ति भी। जीवन के प्रति महादेवी जी के दृष्टिकोण की झाँकी कराने के लिये ये रचनाएँ सर्वश्रेष्ठ हैं जिनमें समय की समस्याओं को पैनी दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया है। हमारा समाज बहुत ही विकृतावस्था में पहुँच चुका है और पुरुष समाज ने स्त्री

पर अनेकों बंधन लाद दिये हैं। पतित माँ की सन्तान को, सती-साध्वी होने पर भी बिना समाज के प्रवेशपत्र के साध्वी स्त्रियों के मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार ही नहीं है। उनका अपराध अक्षम्य है, अतः उसे अपने अपराध का दण्ड भोगना ही चाहिए। ऐसी ही एक स्त्री के चरित्र की झाँकी कराते हुए महादेवी जी अपने विचार प्रकट करती हैं—"पत्नीत्व की चोरी करने वाली वह अबोध स्त्री अवश्य ही समाज के जटिल नीति शास्त्र को समझने में असमर्थ रही तभी तो उसकी जिज्ञासा भरी दृष्टि मेरे मुख पर स्थिर होकर मानो बड़े करुण भाव से बार-बार पूछने लगी—'क्या मैं पवित्र नहीं हूँ? एक ओर तो यह स्त्री है जिसकी माता को माता बनने का अधिकार ही नहीं दिया गया था और दूसरी ओर मैं हूँ जिसकी माता, नानी, परनानी, दादी, परदादी और उनकी भी पूर्वजाएँ अपने पतियों को चरणोदक ले लेकर और उनमें से कई जीवित ही अग्निपथ पार करके अपने लिए ही नहीं मेरे लिए भी पवित्रता का प्रमाण पत्र प्राप्त कर चुकी हैं। मैं अनेकों से पूजनीय मां और आदरणीय बहिन का सम्बोधन पाती रही हूँ, किन्तु इसे कौन अभागी माँ बहिन कह कर अपवित्र बनेगा? और वह जानना चाहती है, अपने अपवित्र माने जाने का कारण? यह अपने विद्रोही पति के साथ सती ही क्यों न हो जावे, परन्तु इसके रक्त के अणु अणु में व्याप्त मलिन संस्कार कैसे धुल सकेगा? स्वेच्छाचार से उत्पन्न यह पतिवृता की साधना उस शूद्र की तपस्या के समान ही बेचारे समाज की वर्णव्यवस्था का नाश कर रही है, जिसका मस्तक काटने के लिये स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम दौड़ पड़े थे।" इस प्रकार महादेवी जी के रेखाचित्रों में युग चेतना की झाँकी है। यद्यपि उसने अपने जीवन के संस्मरणों के संस्पर्श होने के कारण उनकी कुछ रचनाएँ 'रेखाचित्रों' के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकतीं तथापि उनमें भी बहुत अंशों में रेखाचित्रों के गुण मिलते हैं। गोपालकृष्ण जी लिखते हैं—

"महादेवी जी में रेखाचित्र लिखने की प्रबल शक्ति है। वे एक चित्रकार हैं और गीतिकाव्य में भावना चित्रों को प्रस्तुत करने वाली श्रेष्ठ कलाकार हैं। यद्यपि संस्मरण का संस्पर्श होने से उनकी कुछ रचनाएँ पूर्ण रेखाचित्र नहीं कही जा सकतीं, किन्तु उनमें भी रेखाचित्रों के स्फुट अंश दिखाई पड़ते हैं। हिन्दी में छायावादी शैली के गद्य, सबल रेखाचित्र और भावना में संस्मरण की दृष्टि से 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चलचित्र' उनकी सबल और एतिहासिक रचनाएँ हैं जिनमें उनका रेखाचित्रकार का रूप प्रधान है।"

इस प्रकार जितनी महादेवी जी अपने कवयित्री के स्वरूप में जगत की पार्थिव समस्याओं से दूर रहीं उतनी ही इन रचनाओं में वे समाज की समस्याओं के समीप भी। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी जी हिन्दी संसार में एक सफल संस्मरण लेखक तथा रेखाचित्रकार के रूप में देखे जाते हैं परन्तु उनके 'रेखाचित्रों' के पात्र बड़े लोग ही बन सके हैं जबकि महादेवी जी के रेखाचित्रों के पात्र साधारण स्तर के निरीह, दलित एवं शोषित प्राणी है। महादेवी जी के रेखाचित्रों की दूसरी विशेषता है पात्रों की आकृति और मुद्रा के चित्रण के साथ उनके सूक्ष्मतम भावों का भी दिग्दर्शन कराना। महादेवी के चित्रण कहानी के साथ-साथ काव्यमयी भी बन पड़े हैं जिसका कारण है उनके कवि हृदय की भावुकता। महादेवी जी के रेखाचित्रों की एक और भी विशेषता है कि उनके पात्र स्वयं या तो बोलते ही नहीं हैं अथवा बहुत ही कम बोलते हैं। लेखिका स्वयं उनके विषय में अधिक बोलती है किन्तु उसके बोलने में ही पात्र का चरित्र पूर्णरूप से निखर आता है। उनके वाक्य लम्बे-लम्बे होते हैं परन्तु उनमें किसी भी प्रकार शिथिलता नहीं दिखाई देती। उनके शब्द पैने तथा भावप्रद हैं तो तीर की भाँति हृदय पर तुरन्त चोट करते हैं।

सारांश में महादेवी जी ने रेखाचित्र लिखकर अपनी जागरूक चेतन शक्ति का परिचय हमें दिया है तथा इनके द्वारा हिन्दी साहित्य के भण्डार को भी समृद्ध किया है। देवी जी के 'रेखा-चित्र' उनके गीतिकाव्य की ही भाँति अमर रहेंगे तथा हममें करुणा और संवेदना की सृष्टि करते रहेंगे।

अध्याय ११

महादेवी और नारी समस्या

महादेवी जी का गद्य-साहित्य तीन प्रकार है—विवेचनात्मक-संस्मरणात्मक तथा नारी समस्यात्मक। विवेचनात्मक गद्य साहित्य उनकी काव्य पुस्तकों की भूमिका और कुछ स्फुट निबन्धों के रूप में हैं; संस्मरणात्मक गद्य उनके रेखाचित्रों में तथा 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चलचित्र' में दिये गये जीवन सम्बन्धी संस्मरणों में देखने को प्राप्त होता है। दोनों प्रकार के गद्य साहित्य का विवेचन हम पिछले अध्यायों में विस्तार पूर्वक कर आये हैं। अतः अब यहाँ नारी समस्यात्मक गद्य-साहित्य का विश्लेषण करना ही हमारा ध्येय है। उनका नारी समस्यात्मक गद्य-साहित्य 'शृङ्खला की कड़ियाँ' में दिया हुआ है 'शृङ्खला की कड़ियाँ' पुस्तक में उनके 'चाँद' में नारी समस्या विषयक सम्पादकीय निबन्ध एवं टिप्पणियाँ संग्रहीत हैं। चाँदनी की साड़ी पहिन, तारों की झिलमिल जाली मुँह पर डाले, संध्या की सिंदूर मुख श्री पर लगाये, जिस रहस्यवादी कवयित्री मानव जगत् से बहुत ऊँची उठकर भाव-गगन में बिहार करती है उसी गद्यकार महादेवी शृङ्खला की कड़ियों का धरातल पूर्ण यथार्थवादी, ठोस और पार्थिव है। संसार की कठोर निर्ममता और हृदयहीनता को उन्होंने देखा है। महादेवी जी के काव्य में जहाँ प्रेम और करुणा छलकती है, वहाँ उनके गद्य में प्रताड़ित नारी की परवशता, समाज की हृदयहीनता, कठोर कुरूतियों को उखाड़ फेंकने का प्रयास मिलता है, उनके काव्य और

गद्य में उनके जीवन की दो विरोधी प्रवृतियाँ देखने में आती हैं। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि कवि महादेवी और गद्य-कार महादेवी एक नहीं, दो व्यक्ति हैं। पर इसका कारण स्पष्ट है। महादेवी जी का काव्य व्यक्ति-प्रधान है अथवा इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि कविता में आपकी प्रकृति आत्म केन्द्रित है, और इसके विपरीत गद्य में उनकी विचारधारा सामाजिक अथवा समाज-केन्द्रित है। उसमें जनता का दुर्दनीय अवसाद और आकुल पीड़ा उद्वेलित हो उठी हैं। अपनी कविता में वे—

'मैं नीर भरी दुख की बदली'

का रूप धारण किये हुए हैं। इसी पंक्ति की भावधार के आधार पर हम उनके सम्पूर्ण काव्य साहित्य का अध्ययन करते हैं। उनकी कविता, सारांश में, समाज की दुर्व्यवस्था, असहाय नारी की विपन्न-स्थिति, व्यक्ति और समाज के पारस्परिक वैषम्य, रुद्ध भावनाओं, दमित इच्छाओं और प्रचलित सामाजिक कुसंस्कारों के कारण पूर्ण रूप से प्रस्फुटित न हो पाने वाले अभिशप्त जीवन का भावात्मक, आत्म केन्द्रित व्यक्तिगत निरूपण है; उनकी विश्व, पराजित प्रतिक्रिया स्वरूप कवि का एकान्त अपना रुदन है। ठीक इसके विपरीत अपने गद्य में वे समाज की भावनाओं को लेकर चली हैं। एक लेखक के उपयुक्त शब्दों में "हृदय की विशालता, भावप्रसार की विलक्षण शक्ति मर्म-स्पर्शी स्वरूपों की उद्भावना, कल्पना शक्ति पर प्रभुत्व और शब्दों की नक्काशी का समुच्चय महादेवी की गद्य शैली में ऐसा घुल मिल गया है कि अनायास ही वे जीवन और समाज की विषम प्रहेलिकाओं पर सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि डाल देती है। उनके व्यक्ति और समान के 'रेखाचित्र' बड़े सजीव एवं रंगीन हैं। कला की तूलिका से उनमें रंग भरे गये हैं, कल्पना के परिधान से उन्हें सज्जित किया गया हैं।" गद्य ने जनता के दुःखी जीवन को स्वर दिया है; उसकी आत्मा का प्रतिनिधित्व किया

है। उसने समाज के दुःख, विषाद, उसकी स्वार्थपरता और वैमनस्यता तथा उसके पापों और अभिशापों का प्रतिकार किया है। उसकी आत्मा व्यक्तिगत पीड़ा में नहीं खोगई है प्रत्युत उसने समाज के दैन्य, उसकी पीड़ा तथा उसके अत्याचारों का साक्षात्कार किया है। 'शृङ्खला की कड़ियाँ' पुस्तक में अपने समाज के शिकंजों में फंसी नारी की अन्तर्वेदना प्रकट की है। इसकी शैली आलोचनात्मक होते हुए भी भावात्मक हो उठी है। भारतीय नारी की अवस्था कुछ बहुत ही विचित्र सी है। वे लिखती हैं—"पगपग पर पुरुष से सहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र सी है, वह जितनी ही पहुँच के बाहर होती है, पुरुष उतना ही झुंझलाता है और प्रायः यह झुंझलाहट मिथ्या अभियोगों के रूप परिवर्तित हो जाती है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि जो अप्राप्य है, उसी को प्राप्त प्रमाणित करके हमें संतोष है, जो प्राप्त है, उसे प्राप्त प्रमाणित करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। पर खड़ा हुआ व्यक्ति यदि अपने गिरने की घोषणा सुनते सुनते खड़े होने के प्रयास के व्यर्थ समझने लगे तो आश्चर्य क्या। इसी कारण जब तक स्त्री स्वभाव से इतनी शक्तिशालिनी नहीं होती कि मिथ्या पराभव की घोषणा से विचिलित न हो, तब तक उसकी स्थिति अनिश्चित ही रहती है।" रूढ़ियों से बंधे हुए समाज में भारतीय नारी अपमानित, प्रताड़ित अधिकारहीन और अभिशापों से पिसा हुआ सबसे निरीह प्राणी है। मनुष्य सदैव उसे अपनी क्रीत दासी की भाँति रखना चाहता है। उसके विकास को कुंठित करने के लिए पुरुष ने उस पर अनेकानेक नियन्त्रण लगा दिये हैं। अपनी महत्तता सिद्ध करने के लिए उसने नारी के अधिकारों से वंचित कर रखा है। नारी उसके लिए केवल उपभोग की वस्तु है जिसका महत्व भी जब तक है जब तक कि वह पुरुष का मनोरंजन करती रहे, इससे अधिक पुरुष की निगाह में उसका मूल्य नहीं है। यहाँ तक कि १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में युरोप और

इटली के प्रमुख राजनीति शास्त्री मैकियावली (Machiavelli) ने भी स्त्री की भर्त्सना करते हुए उसे केवल पुरुष के मनोरंजन का साधन बताया है तथा उससे भी गिराकर एक स्थान पर तो उसे 'प्रवंचक' की पदवी से विभूषित कर दिया है। पर महादेवी जी के अनुसार—"भारतीय पुरुष जीवन में नारी का जितना ऋणी है उतना कृतज्ञ नहीं हो सका। अन्य क्षेत्रों के समान साहित्य में भी उसकी स्वभावगत संकीर्णता का परिचय मिलता रहा है। आज का यथार्थ यदि इस सनातन अकृतज्ञता का व्योरेवार इतिहास बन कर तथा पुराने अपकारों की नवीन आवृत्तियाँ रचकर ही उऋण होना चाहता तो यह प्रवृत्ति वर्तमान स्थिति में आत्मघात सिद्ध होगी।" और इसके आगे चलकर पुरुष को नारी की समस्त विकृतियों का उत्तरदायी बनाती हुई कहती हैं—"नारी जीवन की अधिकांश विकृतियों के मूल में पुरुष की यही प्रवृति मिलती है, अतः आधुनिक नारी नये नामों और नूतन आवरणों में भी इसे पहचानने में भूल नहीं करेगी, उसके स्वभाव में, परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढाल लेने का संस्कार भी शेष है और उसके जीवन में, अनुदिन बढ़ता हुआ विद्रोह भी प्रवाहशाली है। यदि वह पुरुष की इस प्रवृत्ति को स्वीकृति देती है तो जीवन को बहुत पीछे लौटा लेजाकर एक श्मसान में छोड़ आती है और यदि उसे अस्वीकार करती है तो समाज को बहुत पीछे छोड़ शून्य में आगे बढ़ जाती है। स्त्री के जीवन के तार तार को जिसने तोड़कर उलझा डाला है, उसके अणु-अणु को जिसने निर्जीव बना दिया है और उसके सोने के संसार को जो धूल के मोल लेती रही है, पुरुष की वही लालसा, आज की नारी के लिए, विशस्त मार्गदर्शिका न बन सकेगी।" जहाँ तक नारी की स्थिति का प्रश्न है वह आज इतनी संज्ञाहीन और पंगु नहीं कि पुरुष स्वयं ही उसकी गति और भविष्य के सम्बन्ध में निश्चय करले। युगों से राष्ट्रीय जागरण और प्रगति में उसका सहयोग महत्वपूर्ण और सराहनीय

रहा है तथा उसके बलिदान असंख्य हैं। समाज में आज वह अपनी स्थिति के प्रति सजग और सतर्क हो चुकी है। नारी केवल मांस पिंड़ की संज्ञा नहीं है। आदि काल से आजतक विकास पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सरल बनाकर उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर, नारी ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है वही पुरुष की सहगामिनी 'नारी' है। किसी भी "जीवित जाति ने उसके विविध रूपों और शक्तियों की अवमानना नहीं की, पर किसी भी मरणासन्न जाति ने अपनी मृत्यु की व्यथा कम करने के लिए उसे मदिरा से अधिक महत्व नहीं दिया।" भारतीय नारी आज जैसी उपेक्षित, जैसी अपमानित तथा जैसी व्यक्तित्वहीन प्राणी है वैसी वह कभी न थी। भारतीय नारी से अधिक दयनीय प्राणी है वैसी वह कभी न थी। भारतीय नारी से अधिक दयनीय प्राणी संसार में सम्भव है कोई ही मिलेगा। उसे न पुत्री के रूप में अधिकार प्राप्त है और न माता के रूप में, न पत्नी के रूप में और न बहिन के रूप में। उसके जन्म काल से ही उसकी उपेक्षा घर में होती है। पिता तथा भाई तो दूर रहे, स्वयं माता भी उसे परायी ही वस्तु समझती है और ससुराल में तो उसकी अवस्था बहुत शोचनीय हो जाती है। काठ की पुतली की भाँति उसे माता, पिता, भाई, बान्धव, सास, नन्द, देवरानी, देवर तथा ससुर इत्यादि सभी के इंगित पर नाचना पड़ता है। उसका कहलाने वाला पति भी उसे कम अपमानित नहीं करता है। देखिए किस प्रकार महादेवी जी ने उसकी दयनीय अवस्था को चित्रित किया है—"इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय, घोड़ा पाल लेता है। उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा पालित पशु-पक्षियों के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अधिकार समझता है। हमारे समाज के

पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो, विवाह के समय गुलाब सी खिली हुई स्वास्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए। उस समय, उस असमय प्रौढ़ हुई दुर्बल सन्तानों की रोगिणी पीली माता में कौनसी विवशता, कौनसी रुला देने वाली करुणा न मिले।" —शृङ्खला की कड़ियाँ

हिन्दू नारी के विभिन्न स्वरूपों को महादेवी ने देखा और परखा है। अनुभवों द्वारा आप जिस निष्कर्ष पर पहुँची हैं उनमें असत्यता के लिए स्थान नहीं है। पुरुष शासित समाज में प्रताड़ित नारी की ओर से वकालत इनसे अधिक तीखे रूप में नहीं हो सकती है। उनके भाव, उनके तीखे शब्द केवल चिन्तन द्वारा प्रतिपादित नहीं हुए हैं वरन् उनके पीछे जीवन का लम्बा एवं कटु अनुभव का इतिहास है। आरम्भ से ही महादेवी जी के हृदय में करुणा और दया व्याप्त थी जिन्होंने उन्हें जीवन में बहुत कुछ देखने और समझने का अधिकारी बनाया है। उस अनुभव में सचाई है, इसी से उनके शब्द तीर की भाँति तीखे हैं। उनके संस्मरणों में इसी प्रकार के अनुभव रखे गये हैं जिन्होंने उनके जीवन की दिशा को बहुत अंशों में प्रवाहित किया संसार में व्याप्त वेदना को उन्होंने अपने जीवन में सम्भव है इसीलिए स्वीकार किया, कि उनको जीवन के वास्तविक स्वरूप की झाँकी प्राप्त हो सके। संसार में दुःख निराशा की कमी नहीं है पर उसे देखने के लिए विशेष प्रकार की आँखें जो करुणा के आंसुओं से सिक्त हों, तथा विशेष प्रकार के हृदय, जो संवेदनशील हो, की आवश्यकता होती है और दोनों ही वस्तुएँ महादेवी जी पास जीवन के आरंभ काल से ही रही हैं। नारी के विभिन्न रूप हमारे सानने हैं। स्त्री, माता, बहिन, विधवा, वैश्या इत्यादि सभी उसके अपने करुणाजनक रूप हैं। महादेवी जी बड़े ही सहानुभूति पूर्ण ढंग से वैश्या के मसले हुए जीवन पर विचार करती हैं। एक उद्धरण देखिए। शैली में भाव-प्रवणता, काव्य का हल्का सा संस्पर्श तथा हृदय

स्पर्शी-भावना का स्वरूप है । तार्किक उक्ति के साथ काव्य शैली का भी मिश्रण देखिए—"यदि स्त्री की ओर देखा जाय, तो निश्चय ही देखने वाला काँप उठेगा। उसके हृदय में प्यास है, परन्तु उसे भाग्य के मृग-मरीचि का में निर्वासित कर दिया है। उसे जीवन भर आदि से अन्त तक सौन्दर्य की हाट लगानी पड़ी, अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचल कर आत्म-समर्पण की सारी इच्छाओं का गला घोंट कर रूप का क्रय-विक्रय करना पड़ा और परिणाम में उसके हाथ आया निराश-हताश एकाकी अंत।" "........जीवन की एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटुकारी से मुग्ध करता रहता है, झूठी प्रशंसा की मदिरा से उन्मत्त करता रहता है, उसके सौन्दर्य दीप पर शलभ सा मंड़राता रहता है, परन्तु, उस मादकता के अंश में उस बाढ़ के उतार पर उसकी ओर कोई भी सहानुभूति भरे नेत्र नहीं उठाता। उस समय उसका तिरस्कृत स्त्रीत्व लोलुपों के द्वारा प्रशंसित रूप-वैभव का भग्नावशेष क्या उसके हृदय को किसी प्रकार की सान्त्वना भी दे सकता है।"

—'शृङ्खला की कड़ियाँ'

आज हिन्दू समाज नारी की अभिशप्त परवशता की भूमिका में दम तोड़ रहा है। सम्भव है हम सभी लोगों को चारदीवारी पर नारी के किसी न किसी रूप की निर्मम हत्या से निकले हुए खून के छींटे मिलेंगे। नारी की दयनीय दशा के चित्र दूसरे राष्ट्रों में भी देखने को प्राप्त होते थे पर शनैः शनैः स्त्रियों की दशा विदेशों में सुधरती जा रही है। किसान स्त्रियों का ज़ारशाही शासन में क्या स्थान था? सम्भव है वह उपेक्षित स्थान जो आज भी भारतीय हिन्दू नारी के भाग्य में बंधा है, यद्यपि अब उनकी दशा दिन प्रति दिन सुधर रही है। स्तालिन के शब्दों में प्राचीन काल की स्त्रीयों की अवस्था का चित्र देखिए—"शादी होने के पहले परिवार में काम करने वालों में उसका स्थान पहला था। वह

अपने पिता के लिए काम करती थी और एड़ी चोटी का पसीना निकालने के बाद भी पिता के यही शब्द उसे सुनने को मिलते थे, "मैं तुम्हारा पालन कर रहा हूँ।' शादी होने के बाद वह अपने पति के लिए काम करती थी और उसकी प्रत्येक आज्ञा का सिर झुकाये पालन करती थी। उसके बदले पुरस्कार में उसे पति से यही शब्द सुनने को मिलते थे—'मैं तुम्हारा पालन कर रहा हूँ।'

महादेवी जी के विचार स्त्री समस्या पर समाजवादी है और उनकी पुष्ट समाजवादी चेतना का परिचय देते हैं। उनके इसी सम्बन्ध में क्रान्तिकारी विचारों का अवलोकन कीजिए—आरम्भ में प्रायः सभी देशों के समाज ने स्त्री को कुछ स्पृहिणीय स्थान नहीं दिया, परन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ स्त्री की स्थिति में भी परिवर्तन हो गया। वास्तव में स्त्री की स्थिति समाज का विकास माँपने का मांप दण्ड कहा जा सकता है। नितान्त बर्बर समाज में स्त्री पर पुरुष वैसा ही अधिकार रखता है, जैसा वह अपनी स्थावर सम्पति पर रखने को स्वतंत्र है, इसके विपरीत पूर्ण विकसित समाज में स्त्री पुरुष की सहयोगिनी तथा समाज का आवश्यक अंग मानी जाकर माता तथा पत्नी के महिमामयी आसन पर आसीन है।" पर अभी तक भी भारत में नारी की अवस्था ठीक मध्यकाल जैसी नहीं तो बहुत कुछ उसी प्रकार से गिरी हुई है। स्त्री पुरुष की दासी के रूप में अभी तक भी देखी जाती है। समाज तथा उसके बनाये हुए कानून स्त्री के अधिकारों की रक्षा न करके उसकी अवस्था और भी अधिक हीन बनाने में सहयोग देते हैं। कारण भी स्पष्ट है। समाज के सभी नियम पुरुषों द्वारा बनाये हुए हैं, अतः पुरुषों के स्वत्व की रक्षा करना स्वाभाविक ही है। हिन्दू समाज की उपेक्षित नारी का एक तीखा परिचय महादेवी जी के शब्दों में देखिए—

"कानून हमारे स्वत्वों की रक्षा का कारण न बनकर चीनियों के काठ के जूते की भाँति हमारे ही जीवन के आवश्यक तथा जन्म सिद्ध अधिकारों को संकुचित बनाता जा रहा है। सम्पत्ति के स्वामित्व से वंचित असंख्य स्त्रियों के सुनहले भविष्यमय जीवन कीटाणुओं से भी तुच्छ माने जाते देख कौन सहृदय रो न देगा? चरम दुरवस्था के सजीव निदर्शन हमारे यहाँ के सम्पन्न पुरुषों की विधवाओं और पैतृक धन के रहते हुए भी दरिद्र पुत्रियों के जीवन हैं। स्त्री-पुरुष के वैभव की प्रदर्शिनी मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेंक दिये जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के न होने पर न स्त्री के जीवन का कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है। जब जला सकते थे तब इच्छा या अनिच्छा से उसे जीवित ही भस्म करके स्वर्ग में पति के विनोदार्थ भेज देते थे, परन्तु अब उसे मृत पति का ऐसा निर्जीव स्मारक बनकर जीना पड़ता है जिसके सम्मुख श्रद्धा से नत मस्तक होना तो दूर रहा, कोई उसे मलिन करने की इच्छा भी रोकना नहीं चाहता।" केवल हिन्दू नारी की ऐसी हीन अवस्था घर में ही नहीं देखने को मिलती है प्रत्युत बाहर भी उसकी दशा ऐसी ही है या यूँ भी कह सकते हैं कि बाहर तो उसकी अवस्था और भी करुणाजनक है। "हिन्दू नारी का घर और समाज इन्हीं दो से विशेष सम्पर्क रहता है। परन्तु इन दोनों ही स्थानों में उसकी स्थिति कितनी करुणा है, इसके विचार मात्र से ही किसी सहृदय का हृदय काँपे बिना नहीं रहता। अपने पितृगृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है जैसा किसी दूकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है जिसके रखने और बेचने दोनों ही में दूकानदार को हानि की सम्भावना रहती है। जिस घर में उसके जीवन को ढलकर बनना पड़ता है, उसके चरित्र को एक विशेष रूपरेखा धारण करनी पड़ती है, जिस पर वह अपने शैशव का

सारा स्नेह ढुलकाकर भी तृप्त नहीं होती, उसी घर में वह भिक्षुक के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। दुःख के समय अपने आहत हृदय और शिथिल शरीर को लेकर वह उसमें विश्राम नहीं पाती, भूल के समय वह अपना लज्जित मुख उसके स्नेहांचल में नहीं छुपा सकती और आपत्ति के समय एक मुट्ठी अन्न की भी उस घर से आशा नहीं रख सकती। ऐसी है अभागी उसकी वह जन्म भूमि जो जीवित रहने के अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं देती! पतिगृह जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार में उससे कुछ अधिक परन्तु, सहानुभूति में इससे बहुत कम है, इसमें सन्देह नहीं,। यहाँ उसकी स्थिति पलभर भी आशंका से रहित नहीं। यदि वह विद्वान् पति की इच्छानुकूल विदूषी नहीं है, तो उसका स्थान दूसरी को दिया जा सकता है। यदि वह सौन्दर्योपासक पति की कल्पना के अनुरूप अप्सरी नहीं है, तो उसे अपना स्थान रिक्त कर देने का आदेश दिया जा सकता है। यदि वह पति की कामना का विचार करके संतान या पुत्रों की सेना नहीं दे सकती, यदि वह रुग्ण है या दोषों का नितान्त अभाव होने पर वह पति की अप्रसन्नता की दोषी है, तो भी उसे घर में दासत्व मात्र स्वीकार करना पड़ेगा।"

—'शृङ्खला की कड़ियाँ'

पुरुष शासित समाज में नारी की गिरी दशा का इससे अधिक परिचय और क्या दिया जा सकता है? हिन्दू नारी को न दिन में चैन मिलता है और न रात्रि में। जीवन के ऊषाकाल में ही वह वृद्धा सी दिखाई देने लगती है, उसके मुँह पर झुरियाँ पड़ जाती हैं और उसकी आँखें अन्दर को बैठ सी जाती हैं। उसका जीवन केवल भार स्वरूप दिखाई देता है। और 'साधारण रूप से वैभव के साधन ही नहीं, मुट्ठी भर अन्न भी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन से भारी ठहरता है—'अतीत के चलचित्र' महादेवी जी ने बहुत ही

शान्त और गम्भीर मन से नारी की समस्याओं पर विचार किया है। उनके नारी समस्या के प्रति किए गए निष्कर्ष समाजवादी व्यवस्था के पूर्ण अनुकूल बैठते हैं। यह तो विश्वास पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उनके दृष्टिकोण पर समाजवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनके विचार की शैली सर्वथा मौलिक है। नारी की यथार्थ दशा का उन्होंने बहुत समीप से गहन अध्ययन किया है। अतः उनके सामाजिक निष्कर्ष क्रान्तिकारी समाजवाद की ओर झुकते हैं। उन्होंने पूर्णतः आमूल क्रान्ति का मार्ग अपनाया है। महादेवी जी के मतानुसार स्त्री का कार्य क्षेत्र घर पर भी है और बाहर भी। घर के उत्तरदायित्व से वे आधुनिक स्त्री के छुटकारे के पक्ष में नहीं है। घर के दायित्वों के प्रति 'आधुनिकाओं' का विद्रोह उन्हें ठीक नहीं लगता और नहीं वे स्त्री को घर की चार दीवारी तक ही सीमित रखने के पक्ष में हैं। उनका रास्ता मध्य का रास्ता है जिसका मूलमन्त्र है।

"समाज को किसी न किसी दिन स्त्री के असन्तोष को सहानुभूति के साथ समझकर उसे ऐसा उत्तर देना होगा जिसे पाकर वह अपने आपको उपेक्षित न माने और जो उसके मातृत्व के गौरव को अक्षुराण, रखते हुए भी उसे नवीन युग की सन्देश वाहिका बना सकने में समर्थ हो।" उन्होंने घर और बाहर की समस्या को अपने सामञ्जस्य पूर्ण ढंग से सुलझाने का प्रयत्न किया है। उनकी दृष्टि में 'आधुनिका' का 'घर से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद' वाला मत ध्वंसात्मक है, रचनात्मक नहीं। इसी सम्बन्ध में देवी जी कहती हैं—"अनुकरण को चरम लक्ष्य मानने वाली महिलाओं ने भी अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये सत्पथ नहीं खोज पाया, परन्तु उस स्थिति में उसे खोज पाना सम्भव नहीं था। इन्हें अपने मूक छायावत् निर्जीव जीवन से ऐसी मर्मव्यथा हुई कि उसके प्रतिकार के लिये उपयुक्त साधनों के आविष्कार का अवकाश ही न मिल

सका। अतः उन्होंने अपने आपको पुरुषों के समान ही कठिन बना लेने की कठोर साधना आरम्भ की। कहना नहीं होगा कि इसमें सफलता का अर्थ स्त्री के मधुर व्यक्तित्व को जलाकर उसकी भस्म से पुरुष की रूक्ष मूर्ति गढ़ लेना है। फलतः आज की विद्रोह शील नारी व्यवहारिक जीवन में अधिक कठोर है, गृह में अधिक निर्मम और शुष्क, आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वाधीन, सामाजिक क्षेत्र में अधिक स्वच्छन्द, परन्तु अपनी निर्धारित रेखाओं की संकीर्ण सीमा की बन्दिनी है।" महादेवी जी के मतानुसार घर की सीमाओं से पूर्ण विद्रोह करना तथा सामाजिक स्वच्छन्दता की मांग रखना नारी जीवन की हत्या करना है। उनके मत में नारी के घर और बाहर दोनों ही कार्य क्षेत्र हैं तथा दोनों में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है जैसा कि 'आधुनिका' समझती है। वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं। स्त्री का बाह्य कार्यक्षेत्र घर को बराबर ही आवश्यक है। वे बाहर के पृथक पृथक काम गिनाती हैं। जैसे महिला साहित्य व बाल साहित्य की रचना। ये दो प्रकार के कार्य स्त्रियों से ही अधिक सम्बन्ध रखते हैं, पुरुषों से नहीं। साहित्य के निर्माण के अतिरिक्त शिक्षा, चिकित्सा तथा कानून के क्षेत्र में भी वे कार्य कर सकती हैं। वास्तव में अब नारी केवल गृह-स्वामिनी ही नहीं रह गई है प्रत्युत उसका क्षेत्र वैज्ञानिक युग में बहुत विस्तृत हो गया है। अब वह शिक्षित समाज की नागरिक है तथा उसका एक प्रमुख अंग है। अतः उसके कर्त्तव्य अब अनेकानेक हो गये हैं। भारतीय समाज में वेश्याओं की समस्या बहुत उलझी हुई है। वेश्याओं को हेय समझने वाला समुदाय बहुत विशाल है, पर उनको उस स्थिति तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व उसी समाज पर है जिसके वे उपयोगी अंग हैं, यह बात उनकी समझ में नहीं आती अथवा वे उसे समझने का साहस ही नहीं रखते हैं। वेश्याओं की समस्या पर लिखते हुए वे क्षोभ प्रकट करती हैं—"इन स्त्रियों ने, जिन्हें गर्वित समाज पतित के नाम से

सम्बोधित करता आ रहा है, पुरुष की वासना की वेदी पर कैसा घोर तम बलिदान दिया है, इस पर कभी किसी ने विचार भी नहीं किया। पुरुष की बर्बरता, रक्त-लोलुपता पर बलि होने वाले युद्ध वीरों के चाहे स्मारक बनाये जाएँ, पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुराण रखने के लिए प्रज्ज्वलित चिता पर क्षण भर में जल मिटने वाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हंसते हंसते अपने जीवन को तिल तिल जलाने वाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने कभी दो बूँद आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा × × × × कभी कोई ऐसा इतिहासकार न हुआ, जो इन मूक प्राणियों की दुःख भरी जीवन गाथा लिखता, जो इनके अंधेरे हृदय में इच्छाओं के उत्पन्न और नष्ट होने की करुण कहानी सुनाता जो इनके रोम रोम को जकड़ लेने वाली शृङ्खला की कड़ियाँ ढालने वालों के नाम गिनाता और जो इनके मधुर जीवन पात्र में तिक्त विष मिलाने वाले का पता देता।" वेश्याओं के प्रति महादेवी जी का जो दृष्टिकोण उपर्युक्त उद्धरण में रूपायित हुआ है, वह केवल सहानुभूति पूर्ण एवम् संवेदना युक्त ही नहीं वरन् प्रगति शील भी है क्योंकि वह यथार्थ पर आधारित है, जीवन सम्मत है। इस समस्या पर विचार करने वाले सभी समाज शास्त्रियों ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि वेश्यावृत्ति स्वीकार करने का कारण उन स्त्रियों की व्यक्तिगत कमजोरी नहीं, सामाजिक परिस्थिति जन्य विवशता ही है। महादेवी जी लिखती हैं—

"मनुष्य जाति के सामान्य गुण सभी मनुष्यों में कम या अधिक मात्रा में विद्यमान रहेंगे। केवल विकास के अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ उन्हें बढ़ा घटा सकेंगी। पतित कही जाने वाली स्त्रियां

भी मनुष्य जाति से बाहर नहीं है अतः उनके लिए भी मानव-सुलभ प्रेम, साधना और त्याग अपरिचित नहीं हो सकते। उनके पास भी धड़कता हृदय है, जो स्नेह का आदान प्रदान चाहता रहता है, उनके पास भी बुद्धि है जिसका समाज के कल्याण के लिए उपयोग हो सकता है और उनके पास भी आत्मा है जो व्यक्तित्व में अपने विकास और पूर्णत्व की अपेक्षा रखती है। ऐसे सजीव व्यक्ति को एक ऐसे गर्हित व्यवसाय के लिए बाध्य करना जिसमें उसे जीवन के आदि से अन्त तक उमड़ते हुए आँसुओं को अञ्जन से छिपाकर, सूखे हुए अधरों को मुस्कराहट से सजाकर और प्राणों के क्रन्दन को कंठ ही में रूंध कर धातु के कुछ टुकड़ों के लिए अपने आपको बेचना होता है, हत्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" रूप का व्यवसाय निन्दनीय है, व्यवसायी नहीं क्यों उसे तो उपस्थित परिस्थितियों में उसे करने को बाध्य होना पड़ता है। दोष तो परिस्थितियों का तथा उनकी निर्माण करने वालों का है। हमें तो वास्तव में वेश्या के जीवन से सहानुभूति होनी चाहिए क्योंकि हमारे ही कारण उसकी यह दशा हुई है। हमें उसके प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए तथा ऐसी परिस्थियाँ उपस्थित करने का प्रयत्न करना चाहिए जिनके द्वारा वह अभागी बाजारू नारी पुनः नारी के पवित्र पद पर आसीन की जा सकें तथा वह हमारे समाज की फिर से आहृत सदस्य बन सके। फ्रांस ने वेश्यावृत्ति को अवैध घोषित कर दिया है और वेश्याओं को देश के अन्य रचनात्मक कार्यों में लगाने की व्यवस्था की है। प्रायः सभी उन्नति शील देश ऐसा करते हैं। हमें आशा है हमारी सरकार भी इस सम्बन्ध में शीघ्र ही कोई दृढ़ कदम उठा-येगी। महादेवी जी के दृष्टिकोण में भी इसी प्रकार की संवेदन-शीलता तथा करुणा परिलक्षित होती है और इसी करुणा में नव निर्माण की शक्ति भी निहित रहती है। इस तरह की करुणा केवल

वायवी नहीं होती बल्कि वह जीवन के गतिशील दर्शन पर आधारित रहती है, इसी से तो जहाँ उसमें एक ओर बलिपशु के लिए अजस्र करुणा है वहीं दूसरी ओर बलि करने वाले के प्रति हिंस्र घृणा। हिन्दू समाज में विधवाओं की स्थिति भी बहुत गम्भीर तथा करुणा जनक है। विधवा के जीवन में कोई आशा नहीं रह जाती है। चारों ओर से उसे तिरस्कृत होकर भार स्वरूप जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उसी पर विचार करती हुई वे लिखती हैं। "अपने अकाल वैधव्य के लिए वह दोषी नहीं ठहराई जा सकती। उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तरदायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता। पर उस आत्मा का जो अंश, हृदय का जो खंड उसके समान है, उसके जीवन मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी स्वीकार नहीं करता, तो केवल इस मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को, अपने बालक को अस्वीकार कर देगी? संसार में चाहे इसको कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो यह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी। इसी कर्त्तव्य को अस्वीकार करने का यह प्रबन्ध कर रही है। किस लिए? केवल इसलिए कि या तो उस वंचक समाज में फिर लौटकर गंगा स्नान कर व्रत उपवास, पूजा पाठ आदि के द्वारा सती विधवा का स्वाँग भरती हुई और भूलों की सुविधा पा सके या किसी विधवा आश्रम में पशु के समान नीलाम पर कभी नीची कभी ऊँची बोली पर बिकें, अन्यथा एक बूंद विष पीकर धीरे धीरे प्राण दे।"

आगे बढ़कर अवैध सन्तान के विषय में लिखती हुई उनकी करुणा किस प्रकार नवजात शिशु के प्रति उमड़ती है, यह देखने योग्य है—"छोटी लाल कली जैसा मुँह नींद में कुछ खुल गया था

और उस पर एक विचित्र सी मुस्कराहट थी, मानो कोई सुन्दर स्वप्न देख रहा हो। इसके आने से कितने भरे हृदय सूख गये, कितनी सूखी आँखों में बाढ़ आ गई और कितनों को जीवन की घड़ियाँ भरना दूभर हो गया, इसका इसे कोई ज्ञान नहीं। यह अनाहूत, अवांछित अतिथि, अपने सम्बन्ध में भी क्या जानता है? इसके आगमन ने इसकी माता को किसी की दृष्टि में आदरणीय नहीं बनाया, इसके स्वागत में मेवे नहीं बांटे, बधाई नहीं गायी गई, दादा नाना ने अनेक नाम नहीं सोचे, चाची-ताई अपने नेग के लिए वाद विवाद नहीं किया और पिता ने इसमें अपनी आत्मा का प्रतिरूप नहीं देखा।" एक 'अवांछित अतिथि' के प्रति समाज के तिरस्कार का स्वरूप कितनी विदग्धता पूर्वक चित्रित किया गया है? इतना ही नहीं वरन् उन्होंने तो इस गिरे हुए समाज की चुनौति स्वीकार करते हुए अपनी ममतामयी, क्रोड़ में इन अभागे माँ-बेटे को आश्रय दिया और जैसे घोषणा की—'ओ धर्मध्वजिओ, तुम्हारे प्रमाण पत्रों को मैं कूड़ा करकट समझती हूँ।' महादेवीजी ने केवल नारी समस्या पर अपनी दृष्टि ही नहीं फेंकी है प्रत्युत एक सुलझे हुए समाज शास्त्री की भाँति इस समस्या पर चिन्तन किया है तथा उसका सुलझाव भी सोचा है। वे निश्चय रूप से जानती हैं कि स्त्री की परवशता का एक मात्र करना उनकी आर्थिक परतंत्रता है और इसलिये नारी के जीवन का उद्धार तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि वह आर्थिक क्षेत्र में स्वाबलम्बी नहीं हो जाती। वे 'शृङ्खला की कड़ियाँ' में लिखती है—

'अनेक व्यक्तियों का विचार है कि यदि कन्याओं को स्वावलम्बिनी बना देंगे तो वे विवाह ही नहीं करेंगी, जिससे दुराचार भी बढ़ेगा और गृहस्थ धर्म में भी अराजकता उत्पन्न हो जायेगी।

परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा प्रधान होना चाहिए, आर्थिक कठिनाइयों की विवशता नहीं।' वे इस समस्या को और भी अधिक स्पष्ट करती हैं—"स्त्री के जीवन की अनेक विवशताओं में प्रधान और कदाचित उसे सबसे अधिक जड़ बनाने वाली अर्थ से सम्बन्ध रखती है और रखती रहेगी क्योंकि वह सामाजिक प्राणियों की अनिवार्य आवश्यकता है। अर्थ का विषय विभाजन भी एक ऐसा बन्धन है जो स्त्री पुरुष दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है। समाज ने स्त्री के सम्बन्ध में अर्थ का ऐसा विषय-विभाजन किया है कि साधारण श्रम जीवी वर्ग से लेकर सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है। वह केवल उत्तराधिकारी से ही वंचित नहीं है, वरन् अर्थ के सम्बन्ध में सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की विवशता के बन्धन में बंधीहुई है। कहीं पुरुष ने न्याय का सहारा लेकर और कहीं अपने स्वामित्व की शक्ति से लाभ उठाकर उसे इतना अधिक परावलम्बी बना दिया है, कि वह उसकी सहायता के बिना संसार पथ में एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती। इस प्रकार स्त्री की स्थिति 'नितान्त परवशता की हो गयी और पुरुष की स्थिति 'स्वच्छन्द आत्मनिर्भरता' की। यह स्थिति-वैषम्य ही नारी पुरुष संबंध की विषमता के मूल में है।" नारी की तिरष्कृत अवस्था तथा विधवाओं और वेश्याओं की समस्या पर विचार करके ही उन्होंने इति श्री नहीं करदी है। साथ ही साथ अन्य सामाजिक रूढ़ियों तथा अन्ध विश्वासों पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। महादेवी जी को 'आधुनिका' की भाँति प्राचीनता से पूर्ण विरोध नहीं है। उनका विरोध तो प्राचीनता के आवरण में किए जा रहे अत्याचारों से हैं जिन्होंने भारतीय हिन्दू समाज को पँगु कर दिया है। जैसा कि हम उनके काव्य में भली भाँति देख चुके हैं कि उनकी दृष्टि समन्वय की दृष्टि

है। सामंजस्य के द्वारा वे सब आध्यात्मिक तथा सामाजिक हल खोज लेने को उत्सुक दीखती हैं। एक ओर न तो उनकी पुराण पंथियों की कुत्सित रूढ़ियों पर ही श्रद्धा टपकती है और नहीं दूसरी ओर साम्यवादियों की भाँति उनकी पूर्ण नवीनता तथा स्वच्छंदता की ओर ही रुचि है। उनकी शैली चिन्तन की शैली है जिसने सामञ्जस्य का सहारा लिया है। उनका मार्ग बुद्ध भगवान् की की भाँति मध्य का मार्ग है। एक ओर वे प्राचीन संस्कृति से पुष्ट होकर उससे बल प्राप्त करती हैं और दूसरी ओर वे नवीनता द्वारा स्वस्थ समाज का निर्माण करने में संलग्न दीख पड़ती हैं। प्राचीनता और नवीनता का संघर्ष युगों से चला आता है। उसके संबंध में विचार करती हुई वे लिखती हैं—"प्राचीनता की पूजा बुरी नहीं, उसकी दृढ़ नींव पर नवीनता की भित्ति खड़ी करना भी श्रेयस्कर है, परन्तु उसकी दुहाई देकर जीवन को संकीर्ण से संकीर्णतम बनाते जाना और विश्वास के मार्ग को चारों ओर से रुद्ध कर लेना किसी जीवित व्यक्ति पर समाधि बना देने से भी अधिक क्रूर और विचारहीन कार्य है। जीवन की सफलता अतीत से भिक्षा लेकर अपने आपको नवीन वातावरण के उपयुक्त बना लेने, नवीन समस्याओं को सुलझा लेने में है, केवल उनके अन्धानुसरण में नहीं। अतः अब स्त्रियों से सम्बन्ध अनेक प्राचीन वैधानिक व्यवस्थाओं में संशोधन तथा अर्वाचीनों का निर्माण आवश्यक है। समस्त सामाजिक नियम मनुष्य की नैतिक उन्नति तथा उसके सर्वतोमुखी विकास के लिए आविष्कृत किए गये हैं। जब वे ही मनुष्य के विकास में बाधा डालने लगते हैं तब उनकी उपयोगिता ही नहीं रह जाती। उदाहरणार्थ विवाह की संस्था पवित्र है, उनका उद्देश्य भी उच्चतम है, परन्तु जब वह व्यक्तियों के नैतिक पतन का कारण बन जावे, तब अवश्य ही उसमें किसी अनिवार्य संशोधन की आवश्यकता समझनी चाहिए।" उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि उनकी विचार

धारा में प्राचीनता के प्रति कोई आग्रह नहीं है। नवीनता को अपनाते हुए उनके विचार प्राचीनता के साथ भी यथेष्ट सम्बन्ध रखना चाहते हैं। उनके विचारों में किसी सामाजिक कुसंस्कार या जड़ता की छाया भी देखने को नहीं मिलती है। उनके विचारों में चिन्तन हैं तथा चिन्तन के साथ उदारता भी। शुष्क चिन्तन प्रायः कुतर्क की सीमा ग्रहण कर लेता है जिससे समस्या का सुलझाव नहीं हो पाता।

अवैध सन्तति की समस्या भी कम महत्वपूर्ण समस्या नहीं है। उससे उन्हें केवल सहानुभूति ही नहीं है वरन् वे तो समाज को उसे अपनाने को भी कहती हैं। महादेवी जी का दृष्टिकोण कहीं-कहीं पूर्ण, क्रांतिकारी भी हो उठता है। पुराण पंथियों की भर्त्सना करते हुए वे लिखती हैं—

"जिन मानवीय दुर्बलताओं को वे स्वयं अविरत संयम और अटूट साधना से भी जीवन से अन्तिम क्षणों तक भी न जीत लेने का आदेश वे उन अबोध बालिकाओं को दे डालेंगे जो जीवन से अपरिचित हैं। उनकी आज्ञा है, उनके शास्त्रों की आज्ञा है और कदाचित उनके निर्मम ईश्वर की भी आज्ञा है, कि वे जीवन की प्रथम अंगड़ाई को अन्तिम प्राणायाम में परिवर्त्तित कर दें, आशा की पहली किरण को विषाद के निविड़ अन्धकार में समाहित करदें, और सुख के मधुर पुलक को आँसुओं में बहा डालें।" इस प्रकार समाज की रूढ़ियों, दुःख, दरिद्रता एवम् स्वार्थ की कुटिलताओं को देखकर उनकी आत्मा-विद्रोह कर उठी है। नारी की दशा तो हिन्दू समाज में सबसे हेय है। इस पर उन्होंने खूब लिखा है तथा नारी को अपने प्राचीन पर दृष्टिपात करते हुए भविष्य का सुन्दर निर्माण करने की प्रेरणा दी है। उनकी नारी समस्या तक शैली विचारात्मक होते हुए भी भावात्मक हो गई है। भाव

के अनुकूल भाषा और शैली का रूप सदैव परिवर्तित होता है और उनके गद्य में शिथिलता नहीं आने पाती है। कवि हृदय की भावुकता और संवेदन शीलता सर्वत्र नारी विषयक निबंधों में पाई जाती है। हिन्दी गद्य साहित्य में भी देवी जी का स्थान काव्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है। नारी सम्बन्धी निबंधों तथा लेखों में तो उनकी शैली का भावावेग के कारण उच्चतम स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

अध्याय १२

महादेवी की भाषा शैली

महादेवी जी को हमने पिछले अध्यायों में गद्य तथा पद्य लेखक दोनों रूपों में अवलोकन किया है। दोनों ही रूपों में वे उच्चकोटि की लेखिका तथा महान कलाकार सिद्ध हुई हैं। अब देखना यह है कि उनकी भाषा शैली कैसी है। उनकी भाषा शैली को हम गद्य पद्य दो स्तम्भों में रखकर आकेंगे। सर्व प्रथम हम उनकी काव्य की भाषा शैली पर दृष्टिपात करेंगे। 'महादेवी जी ने श्वासों के तार में अपने सपनों को गूँथ कर वेदना चर्चित बन्दनबार बनाया है, जीवन के घट को दुखरूपी जल से भरा है। इनके दोनों नेत्र झिलमिलाते हुए दो दीपक हैं। आँसू का तेल भरा जा रहा है। और सुधिरूपी बत्ती जलकर पद-ध्वनि पर प्रकाश कर रही है। अपने अलंकारों द्वारा श्रीमती महादेवी वर्मा ने न जाने प्रकृति के कितने मनोहर चित्र खींचे हैं।'—ओमप्रकाश। महादेवी जी के काव्य में कला का जो उत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है उसकी समता में केवल प्रसाद जी का काव्य सौन्दर्य ही रखा जा सकता है। महादेवी जी का काव्य गीति-मुक्तक काव्य है। गीत लेखिका की दृष्टि से महादेवी जी को प्रसाद और निराला के मध्य की कड़ी कहा जा सकती है। प्रसाद जी के गीतों की विशेषता है भाव-प्रवणता (Emotion) निराला जी के गीतों की विशेषता है है चिन्तन (Intellect) पर महादेवी जी के गीतों में चिन्तन तथा भाव-प्रवणता दोनों का ही समावेश पूर्ण रूप से हो गया है। चिन्तन उन्हें बौद्ध दर्शन से प्राप्त हुआ है तथा भाव-प्रवणता उनकी

प्रणय-निवेदन की प्रवृत्ति के कारण है। निराला जी के गीत स्वर ताल की शास्त्रीय मर्यादा के साथ चलते हैं और साथ ही दृश्यों की शृङ्खला में भी जकड़े रहते हैं। पर प्रसाद और महादेवी जी के गीतों में संगीत शास्त्र का कोई बन्धन नहीं है। निराला जी में शब्दों में ह्रस्व-दीर्घ के विकार बहुत ही कम देखने को मिलते हैं और प्रसाद जी में ये विकार बहुत अंश में परिलक्षित होता है। पर देवी जी में प्रसाद से कम और निराला से अधिक मिलते हैं। निराला जी के भावों और गीतों में कोई विरोध नहीं तथा भाव की पूर्ति के साथ-साथ गीत भी पूर्ण होता है। प्रसाद जी में भी प्राय: भावविच्छिन्न नहीं हो पाता है, पर महादेवी जी के गीतों में भावविच्छिन्नता बहुत देखने को मिलती है। उनका एक गीत एक ही भाव की परिणति नहीं होता। उसमें एक साथ कई भाव झलक ने लगते हैं। उदाहरणार्थ—'नीहार' का एक गीत—

'कितनी रातों को मैंने
नह लाई है अंधियारी
धो डाली है सन्ध्या के,
पीले सिंदुर से लाली।'

यहाँ गीता का एक छन्द है जिसमें उनकी करुणा झांक रही है। कितनी ही रातों को उन्होंने अपने अश्रुओं से अंधियारी को नह लाया है—पर यह भाव क्रम पांचवे छन्द में टूट जाता है और वे सागर की धड़कन में तथा बूँदों के दर्पण में कुछ देखने लगती हैं। यहाँ आकर उन्हें कुछ जानने की जिज्ञासा हो उठती है। दुख के साथ कुतूहल मिश्रित हो जाता है—

'इन बूंदों के दर्पण में
करुणा क्या झाँक रही है?
क्या सागर की धड़कन में,
लहरें बढ़ आँक रही हैं?'

और फिर अन्तिम छन्द में उनका दुःख, अतृप्ति, निराशा प्रबल हो उठती है—

'फिर भी इस पार न आवे
जो मेरा नाविक निर्मम,
सपनों से बाँध डुबाना
मेरा छोटा सा जीवन।'

इस प्रकार एक ही गीत में उनकी भावधारा स्थान-स्थान पर परिवर्तित होती रहती है। पर फिर भी उसमें शिथिलता नहीं आने पाई है। छायावादी युग की काव्यकला महादेवी जी में पूर्ण-वैभव के साथ दिखाई देती हैं। शब्द की 'अभिधा शक्ति' की ओर तो उन्होंने जैसे ध्यान ही नहीं दिया है। लक्षणा, प्रतीक और व्यंजना से वह ओत-प्रोत है। कवयित्री प्रतीकों के प्रयोग में बहुत स्वच्छन्द है। एक प्रतीक एक ही अर्थ में सब स्थानों पर प्रयुक्त नहीं होता। कभी-कभी भिन्न स्थलों पर संदर्भ के अनुसार भिन्न अर्थ देता है। इसी से काव्य प्रायः दुर्बोध हो जाता है। छायावाद काव्य के व्यक्त प्रकृति के सौन्दर्य प्रतीकों को न लेकर महादेवी जी ने उन प्रतीकों की अव्यक्त गतियों और छायाओं का संग्रह किया है। इससे उनकी रचनाओं में वेदना की निवृत्ति और रहस्यात्मकता तो अवश्य बढ़ गई है, जो कि वास्तव में काव्य का गुण नहीं है, किन्तु वे स्थल कहीं-कहीं पर दुरुह भी हो गये हैं। उदाहरणार्थ एक रचना देखिए—

'उच्छ्वासों की छाया में, पीड़ा के आलिंगन में,
निःश्वासों के रोदन में, इच्छाओं के चुम्बन में,
उन थकी हुई सोती सी, उजियाली की पलकों में,
बिखरी उलझी हिलती सी मलियानिल की अलकों में,
सूने मानस मन्दिर में, सपनों की मुग्ध हंसी में,
आशा के आवाहन में, बीते की चित्रपटी में,

रजनी के अभिसारों में, नक्षत्रों के पहरों में,
ऊषा के उपहासों में, मुस्काती सी लहरों में,
जो बिखर पड़े निर्जन में निर्भर सपनों के मोती,
मैं ढूँढ़ रही थी लेकर धुँधली जीवन की ज्योति।'

लाक्षणिकता उसी समय तक ठीक रहती है जब तक वह उसके धारावाही सौन्दर्य में व्यवधान नहीं बनती है। प्रसाद और पन्त के समान वचन लिंग आदि के प्रयोगों में वे व्याकरण के नियमों से बंधना नहीं चाहती। महादेवी जी जिस नये क्षेत्र में जिस नये प्रकार से कार्य करने में संलग्न हैं उनकी कठिनाईयों का हम अनुमान कर सकते हैं। एक तो परोक्ष स्तर की निगूढ़ अनुभूतियों का संग्रह, फिर उसका परिष्करण और उन्हें उपयुक्त व्यंजना देना, तीनों ही आयास साध्य हैं। साथ ही महादेवी जी अपनी व्यंजना शैली में भी विशेषण रखती हैं। ऐसी अवस्था में हमें आश्चर्य नहीं होता यदि भाषा तुकों और छन्दों के विन्यास की ओर वे पर्याप्त सतर्क नहीं हो सकीं। सम्भव है इन्हीं कठिनाइयों को ध्यान में रखकर आचार्य नन्ददुलारे ने लिखा है "महादेवी जी की भाषा में हमें समृद्ध छायावादी चमत्कृति नहीं प्राप्त होती। तुकों के सम्बन्ध में भी काफी शिथिलता दीख पड़ती है, छन्दों और गीतों में भी एक रूपता अधिक है। भावों की काव्याभिव्यंजना देन के सिलसिले में कहीं-कहीं सुन्दर कल्पनाओं के साथ ढीले प्रयोग एक पंक्ति के पश्चात् दूसरी पंक्ति में ही मिल जाते हैं।" पर यह उक्ति उनके सभी छन्दों और गीतों के साथ चरितार्थ नहीं हो सकती। वास्तव में देखा जाए तो महादेवी जी के गीतों का एक बहुत बड़ा आकर्षण उनकी भावनामयी अनमोल साँचे में गढ़ी भाषा ही है। भाषा के माधुर्य की दृष्टि से आप आज हिन्दी के किसी भी कवि से पीछे नहीं है। पन्त जी की भाषा अत्यन्त क्लिष्ट और संस्कृत-भार से आक्रान्त है। 'निराला' के शब्दों में

'वेग' तथा लय अवश्य हैं किन्तु उनकी भाषा में यह पच्चिकारी नहीं। अन्य कवियों में इस प्रकार चुन चुनकर जड़ाई नहीं देखने को मिलेगी। भगवतीचरण वर्मा और बच्चन सर्वसाधारण के अधिक निकट हैं। पर 'इस मधुर निर्झरिणी का कलकल निनाद अद्वितीय ठहरता है।' शब्दों की शिल्पकला आपकी मौलिक विशेषता है। आपकी भाषा अलंकार भार से दबी अवश्य है पर बड़े ही चतुर कारीगर द्वारा गढ़े गये ये अलंकार हैं। एक-एक शब्द चुन चुन कर इस अनौखे शिल्पी ने सजाया है—

> 'दुख से आविल, सुख से पंकिल,
> बुद् बुद् से स्वप्नों से फेनिल,
> बहता है युग युग से अधीर!
> प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर!'

'युग युग से अधीर' कवियित्री की भाषा है। आपके अधिकार शब्द अमिश्रित संस्कृत से निकले हैं और आपकी ध्वनियाँ सदैव कोमल हैं। हिन्दी काव्य परम्परा में बिहारी, देव, केशव और मतिराम इसी श्रेणी के शिल्पी थे। शब्दों के इस मंदिर आसव से बेसुध पाठ ध्वनि-चमत्कार में लीन रहता है। कुमारी जन स्वामी ने अपने प्रबन्ध 'महादेवी वर्मा का काव्य' में लिखा है—"भाषा में संगीतात्मकता अपनी विशेषता रखती है। इसके लिये वर्ण-मैत्री, शब्द-मैत्री, पद-मैत्री, कोमला तथा उपनागरिका वृत्ति इन गुणों की आवश्यकता है। महादेवी जी के शब्द प्रयोग में 'ट' वर्ग के वर्णों का बहुधा अभाव मिलता है। 'प' तथा 'त' वर्ग के वर्ण म, र, ल, ण, न, तथा अनुस्वार युक्त वर्णों का प्रयोग बहुलता से मिलता है। उनकी रचना में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दों को देखिए—

मधुर, मधु, मदिरा, मादक, मादकता, विधु, मुस्कान, सुरभि, सुरभित, समीर, स्पन्दन, पथिक, वेदना, पाहुन, तारक, लघु, सुधि,

सुधि-सम्बन्ध, पथ, लहर, लास, लोल, झीणा, करुणा, की कोर, तुहिनकण, अश्रुकण, करुणेश, तरिणी, नाविक, सुधिवसंत, सुमन-तीर, नवल, नेहराग, स्मितपराग, मधुकन, अनजानि, बोझिल, तड़ित, इसमें म, र, ल, ण, न, अनुस्वार युक्त स्वर जैसे संदेश, संकेत, आदि शब्दों के प्रयोग में उपनागरिक वृति हमें मिलती है। 'त' वर्ग, 'प' वर्ग, 'च' वर्ग के वर्णों में स्वाभाविक कोमलता होती है। जैसे-तारक, नवल, पंथ, पथिक, बोझिल, चरण, चंचल आदि।" यह दुहराना उनके 'नीरजा' के उपरान्त गीतों में अधिक हुआ है। परन्तु प्रारम्भिक गीतों में विशेषतः 'रश्मि' के 'अतृप्ति', 'आत्म-परिचय' आदि गीतों में विलक्षण मौलिकता और सहज नवीनता के दर्शन होते हैं। बाद शनैः शनैः जैसे उनकी कविता किन्हीं बन्धन में बन्धने लगती है। और 'सान्ध्यगीत' और 'दीप-शिखा' में आकर तो वे स्वयं को पुनः पुनः विभिन्न रूपों से उद्धृत करने की वृति बढ़ती है। अब हम 'रस' की ओर मुड़ते हैं। 'शम' को भावाभाव मानकर देखें तो उनचास भाव रहते हैं जिनके सम्बन्ध में भरत जी ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में पृष्ठ ७३ पर "रसानां भावनां च नाट्याश्रितानां चार्थानाम् आचारोत्पन्नानि आप्तोपदेश-सिद्धानि नामानि भवन्ति" कहा है। रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, शोक, भय और (शम) यह नव रसांतर्गत स्थायी-भाव है। सात्विक भाव हैं आठ। इनमें से रोमांच, स्वरभेद कंप तो सभी भावों के साथ चलते हैं, स्तम्भ भय और विस्मय के साथ रहता है, स्वेद, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय भय शोक के साथ रह सकते हैं। "तैंतीस व्यभिचारी भावों में से मरण, व्याधि, ग्लानि, आलस्य, निद्रा, स्वप्न, अपस्मार, उन्माद, मद, मोह, जड़ता, चप-लता यह चौदह भाव तो शारीरिक अवस्थाओं के दृश्य हैं"— माचवे जी। स्मृति, मति वितर्क हैं ज्ञानात्मक मनोऽवस्थाओं से समानान्तर। और हर्ष, अमर्ष, धृति, उग्रता, आवेग, विषाद, निर्वेद, औत्सुक्य, चिंता, शंका असूया, त्रास, गर्व, दैन्य, अवहित्थ और

क्रीड़ा भावनात्मक मनोऽवस्थाओं से समतुल्य हैं। महादेवी जी की कविता में रति, विस्मय, शोक और शम इन स्थायी भावों की और रोमांच, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय इन सात्विक भावों की प्रधानता है। व्यभिचारियों में से मरण, ग्लानि, निद्रा, स्वप्न, उन्माद, भय, मोह, चपलता, स्मृति, वितर्क, आवेग, विषाद, निर्वेद, औत्सुभ्य, चिंता, शंका, त्रास, गर्व और क्रीड़ा—इस प्रकार से पचास में से सत्ताईस भावों का ही विशेष प्रयोग मिलता है। श्री प्रभाकर माचवे जी का भी यही मत है। उनके मतानुसार महादेवी जी के चित्रों में और गीतों में एकांगीपन आगया है। एकांगिता उनकी रचनाओं में कहीं भी विरोधी रंग (Contrast) नहीं उपस्थित करती जैसे विरह के अनन्त चित्र हैं, मिलन के चित्र भी अत्यन्त ही विरल हैं। दुःख, करुणा, वेदना, व्यथा का प्राधान्य हैं, सुख, हर्ष, आलहाद, आनन्द का उस मात्रा में बहुत ही अभाव है। जैसे उनके काव्य-व्योम में उदासी की धुँधली बदली सदा, सर्वकाल छाई रहती है।" रस की निर्मिति अथवा उसके पूर्ण परिपाक के हेतु कलाकृति के मूल में 'द्वन्द्व' का होना अत्यन्त आवश्यक भी है। 'भामह' ने तो कहा है कि काव्य के हेतु कुछ भी वर्ज्य नहीं, पर महादेवी जी 'टीस' शब्द को पसन्द नहीं करती भामह की उक्ति है—

"न स शब्दो न तद्वा च्यं न सन्यायो न सा कला।
जायते यत्र काव्यांग महो भारो महान् कवेः ॥'

'एक रसता के कारण महादेवी जी भावुकता में एक प्रकार की कुंठा, आत्मावरोध अतः विजड़ी करण निर्माण हो गया है, जिसका मनोवैज्ञानिक फल है सतत् प्रतीक्षा और निरन्तर शाश्वत् टोह की भावना।'—प्रभाकर माचवे। अब हम महादेवी जी द्वारा प्रयुक्त अलंकारों की ओर ध्यान देंगे। यद्यपि महादेवी जी ने अपने काव्य में रूपक, उपमा और अपन्हुति के द्वारा सौन्दर्य निरूपण में

विशेष सफलता प्राप्त की है। पर फिर भी सबसे अधिक आकर्षित उनके साँग रूपकों' का प्रयोग है। उनके कुछ साँग रूपक तो चमत्कार के हेतु ही रखे गये हैं। जैसे—

'रवि शशि तेरे अवतंस लोल।
सीमंत जटित तारक अमोल॥
चपला विभ्रम, स्मित इन्द्र धनुष।
हिम कण बन झरते स्वेद निकर॥
अप्सरि! तेरा नर्तन सुन्दर॥'

सबसे अधिक चमत्कार पूर्ण उनकी आरती का साँग रूपक है, जिसे पढ़कर सूरदास जी का 'हरिजू की आरती बनी' वाला पद ध्यान में आ जाता है। श्लेष तथा अनुप्रास का भी साथ-साथ पुट उस प्राचीन अप्रस्तुत को नवीन रूप में उपस्थित करता है—

'प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।
श्वासों में सपने कर गुम्फित॥
बन्दन वार वेदना चर्चित।
भर दुख से जीवन का घट नित॥
मूक क्षणों से मधुर भरूँगी भारती॥
दृग मेरे दो दीपक झिलमिल।
भर आँसू का स्नेह रहा ढल॥
सुधि तेरी अविराम रही जल।
पद ध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती॥
यह लो प्रिय निधियों मय जीवन।
जग की अक्षय स्मृतियों का धन॥
सुख सोना करुणा हरिक कण।
तुम से जीता आज तुम्हीं को हारती॥'

प्रस्तुत गीत में श्वासों के तार द्वारा अपने जीवन के स्वप्नों को गूंथ कर वेदना से युक्त बन्दनवार की सृष्टि की गयी है और मूक

चरणों को आरती के मधुर श्लोकों से परिपूर्ण किया गया है। उनके दोनों नयन दो झिलमिलाते हुए दीपक हैं जिनमें अश्रु कणों रूपी तेल भरा है और प्रिय की सुधि जिसमें दीप वर्तिका बनकर अविराम गति से जल रही है। प्रियतम की पदचाप पाकर उनके हेतु प्रकाश फैला रही है। अपने प्रिय पर वे अपनी साधों भरा जीवन वारती दीखती हैं। असंख्य धन, निधि, सोना तथा हीरक कण उन्हीं पर वार दिये गये हैं। इस प्रकार सांग रूपक और अनुप्रास तो गीत में विशेष रूप से परिलक्षित होते ही हैं, साथ में 'वारती' तथा 'स्नेह' शब्दों में श्लेष भी प्राप्त है। कहीं-कहीं सांग रूपक में समासोक्ति का भी मिश्रण हो गया है जिसके द्वारा सौन्दर्य में और भी अभिवृद्धि हो जाती है। उनका द्वितीय प्रचलित अलंकार 'समासोक्त' है। इसके द्वारा अनेकों सुन्दर चित्रों का निर्माण किया गया है। पर यह अलंकार अधिकांश संसृष्टि और संकट के रूप में प्राप्त है। उनके प्रकृति चित्रों में बहुधा करुणामयी नारी का ही रूप अंकित हुआ है। एक गीत देखिए—

'निशा को धो देता राकेश,
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल।'

—'नीहार'

यहाँ निशा और राकेश के मध्य ने कामुकता पूर्ण व्यवहार की प्रतीति स्पष्ट है। 'रश्मि' का एक और गीत का अवलोकन कीजिए:—

गुलाबों से रवि का पथ लीप।
जला पश्चिम में पहला दीप॥
विहँसती सन्ध्या भरी सुहाग।
दृगों से झरता स्वर्ण पराग॥'

यहाँ पर सन्ध्या के व्यवहार में किसी ऐसी नायिका का परिचय प्राप्त होता है जो अपने प्रियतम की साधना में निरन्तर अपने को सौभाग्यवती मानती हुई आनन्द में चूर रहती है। विहँसती, दृगों, स्वर्ण आदि शब्दों का प्रयोग इसी प्रकार के व्यवहार के द्योतक के रूप में किया गया है। गुलाबों, स्वर्ण पराग तथा दीप इत्यादि में उपमेय छिपा है और उपमान मात्र दे दिया गया है, अतः यहाँ रूपकातिश्योक्ति की सृष्टि की गई है। प्रायः उपमा और उत्प्रेक्षा की सहायता से 'संसृष्टि' की गई है। जैसे—

'मृदुल अंक धर, दर्पण सा सर।
आज रही निशि दृग इंदीवर॥'

यहाँ निशा नायिका अपने मृदुल अंक में दर्पण रखकर नयनों को अंजन लगाती है। 'दर्पण सा सर' में उपमा, 'दृग इंदीवर' में रूपक तथा मृदुल अंक में रूपकातिश्योक्ति की सृष्टि करके 'संश्लिष्ट समासोक्ति' दे दी गई है। इस प्रकार रूपकातिश्योक्ति, समासोक्ति, सांग रूपक, अतिश्योक्ति, उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा अलंकारों की बहुलता उनके प्रकृति चित्रण सम्बन्धी गीतों में प्राप्त होती है। स्थान स्थान पर उनके काव्य में अपंन्हुति, व्यक्तिरेक तथा 'प्रतीप' के भी दर्शन होते हैं। यदि हम इन स्थानों पर प्रस्तुत की अलौकिकता पर ध्यान देंगे तो हमें काव्य की दृष्टि से कोई सौन्दर्य दिखाई नहीं देगा, अतः हम उसे साधारण ही मानकर उसका चित्रण देखेंगे। नख, अधर तथा चरणों की सुन्दरता देखिए—

'जिन चरणों पर देव लुटाते
थे अपने अमरों के लोक
नख चन्द्रों की कांति लजाती
थी नक्षत्रों के आलोक।'

इसके पूर्वार्ध में तो कोई काव्य सौन्दर्य नहीं मिलता है, किन्तु उत्तरार्ध में 'प्रतीप' का चमत्कार है। और भी—

'जिन चरणों की नख ज्योति
ने हीरक जाल लजाये।'

'नख ज्योति' में हीरक जाल से अधिक सौन्दर्य का होना, प्रस्तुत से अप्रस्तुत का लज्जित होना 'प्रतीप' ही माना जाता है। अधरों के वर्णन में भी इसी अलंकार की छटा है—

'जिन अधरों की मन्द हँसी थी
नव अरुणोदय का उपमान।'

कुछ आधुनिक युग के अप्रस्तुतों का प्रयोग भी यद्यपि स्वरूपाभिव्यक्ति में अधिक सहायक नहीं होता है तथापि भावाभिव्यक्ति में सफल ही है—

'पलक प्यालों सी पी-पी देव!
मधुर आसव सी तेरी याद!
इन्हीं नीले तारों में मुग्ध
साधना सोती थी साकार!'

तथा—

'इन हीरक से तारों को
कर चूर बनाया प्याला
पीड़ा का सार मिला कर
प्राणों का आसव ढाला॥'

'आसव की याद' तथा 'प्राणों का आसव' आधुनिक काल में छाया युग की देन है। मालोपमा का उदाहरण भी देखिए—

'मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से,
स्वप्न लोक के से आह्वान।
वे आये चुप चाप गुनाने,
तब मधुमय मुरली की तान॥'

महादेवी जी ने अप्रस्तुतों को तो दूसरों से ही ग्रहण किया है परन्तु उनके मौलिक अप्रस्तुत एकदम अद्भुत तथा मनोहर बन गये हैं—

'अवनि–अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्सना के रजत पारावार में।'

तथा—

'विधुकी चाँदी की थाली
मादक मकरन्द भरी सी,
जिसमें उजियारी रातें,
लुटतीं घुलतीं मिसरी सी!'

'जलधि को मोती' तथा अवनि-अम्बर को सीप मानना तो, सूक्ष्म निरीक्षण होते हुए भी असम्भव सा प्रतीत नहीं होता पर 'उजियारी रातों' का 'मिसरी की भाँति' घुलना तथा लुटना इतना सूक्ष्म हो गया है कि न इसमें वस्तु-साम्य है, न गुण साम्य, न क्रिया-साम्य, केवल भाव साम्य ही दीख पड़ता है, प्रस्तुत अप्रस्तुत का एक मौलिक उदाहरण और भी देखिए—

'तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन जाऊँ
काटूँ वियोग फल रोते
संयोग समय छिप जाऊँ।'

'प्रभात' की चितवन और 'विधुर निशा' दोनों अप्रस्तुत वस्तुएँ हैं पर इनके द्वारा भक्त और भगवान की समस्या को जिस प्रकार सुलझाया है वह अत्यन्त सुन्दर है। भक्त जब तक भगवान् से पृथक् रहता है तब तक वह निरन्तर रोता रहता है पर जब उसके मिलन का समय आता है तो अपने प्रियतम में एकाकार होकर अपना व्यक्तित्व ही खो बैठता। यही समस्या यहाँ संयोग के समय छिपने की है। अब आप एक भावपूर्ण समासोक्ति का उदाहरण

और देखिए। इसमें भारतीय नारी की असहाय अवस्था का चित्रण मिलता है—

'जन्म से मृदु कंज उर में
नित्य पाकर प्यार लालन,
अनिल के चल पंख पर फिर
उड़ गया जब गन्ध उन्मन,

बन गया तब सब अपरिचित
हो गई कलिका बिरानी
निठुर वह मेरी कहानी!"

अब हम महादेवी जी की गद्य भाषा शैली पर आते हैं। जैसा की पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि उनकी गद्य शैली तीन प्रकार की है—(१) विवेचनात्मक, जिसमें साहित्य के विभिन्न अंगों और विवादों पर विवेचना मिलती है। (२) नारी समस्यात्मक जिसमें तर्क और बुद्धिवाद की उद्भावना-शक्ति प्रकट होती है (३) संस्मरणात्मक—इसमें मानव तथा प्रकृति का चित्रण है, काव्य का हल्का सा संस्पर्श है, मनोवैज्ञानिक चित्रण और भावावेग है। भाव के अनुसार उनकी भाषा और शैली का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। जैसा विषय वे एक बार चुन लेती हैं उसी के अनुसार भाषा, कल्पना और शब्द चयन हो जाता है। सीधा-साधा विषय प्रस्तुत कर देना उन्हें तनिक भी नहीं सुहाता है। कल्पना के मधुर स्पर्श से वे उसमें माधुर्य और चमत्कार भर देती हैं। प्रकृति की नाना वस्तुओं, वृक्ष, लताओं, सरिता और दृश्यों के वर्णन में कोमल कान्त पदावली का प्रचुरता से उपयोग किया गया है। उपमा का जैसे सम्पूर्ण कोष ही लुटा दिया गया हो—

"उस सरल कुटिल मार्ग के दोनों ओर अपने कर्त्तव्य की गुरुता से निस्तब्ध प्रहरी जैसे खड़े हुए, आकाश में भी धरातल के समान

मार्ग बना देने वाले सफेदे के वृक्षों की पंक्ति से उत्पन्न दिग्भ्रान्ति जब कुछ कम हुई तब हम एक दूसरे ही लोक में पहुँच चुके थे, जो उस व्यक्ति के समान परिचित और अपरिचित दोनों ही लग रहा था, जिसे कहीं देखना तो स्मरण आ जाता है, परन्तु नाम धाम नहीं याद आता।"

इन दृश्यों की सजीवता, भाव-प्रवणता तथा वर्णन की सूक्ष्मता देखते ही बनती है। भाषा में प्रवाह तथा काव्य का सा मधुर संगीत मय स्पर्श दीख पड़ता है। प्रकृति दृश्यों का जहाँ चित्रण किया गया है वे सजीव से हो गये हैं। यह उनकी चित्रांकण शैली के ही कारण है। वे चित्रकार भी प्रथम श्रेणी की हैं इसी से उनके द्वारा अंकित प्रकृति चित्र बहुत ही सजीव एवम् अनूठे बन पड़े हैं—

"चारों ओर से नीलाकाश को खींच कर पृथ्वी से मिलता हुआ क्षितिज रुपहले पर्वतों से घिरा रहने के कारण बादलों से बने घेरे जैसा जान पड़ता था। वे पर्वत अविरत और निरन्तर होने पर भी इतनी दूर थे कि धूप में जगमगाती असंख्य चाँदी सी रेखाओं के समूह के अतिरिक्त उनमें और कोई पर्वत का लक्षण दिखाई न देता था। जान पड़ता था जैसे किसी चित्रकार ने अपने आलस्य के क्षणों में पहले रंग की तूलिका डुबाकर नीचे धरातल पर इधर उधर फेर दी है। पृथ्वी अश्रु मुखी ही दिखाई पड़ती।" पर जहाँ उन्होंने जीवन की कठोरताओं को स्पर्श किया है वहाँ वे विक्षुब्ध हो उठी हैं। समाज के अत्याचारों में फँसी नारी की दशा देखकर उनमें विद्रोह जाग उठा है। वेश्याओं तथा विधवाओं पर लिखते समय उनकी भाषा में व्यंग, करुण तथा कठोरता आ जाती है। उनके सामाजिक लेखों में गंभीर विवेचना गवेषणात्मक चिन्तन एवम् अनुभूति की पुष्ट व्यंजना सर्वत्र विद्यमान

रहती है। चित्रकार जैसे अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में सूक्ष्मता पर ध्यान रखता है; उसी प्रकार आपके रेखाचित्र सूक्ष्म अनुवीक्षण, चित्रोपमता और अनुभूति में बड़े ही कुशल बन पड़े है। अपने संस्मरणों में उन्होंने शब्दों द्वारा रंग रेखा की सृष्टि की है। भाषा की स्निग्धता के कारण चित्र ऊपर उठकर कविता की सूक्ष्मता और भावना से भर गये हैं। भाषा बहुत ही सजीव एवम् बोधगम्य है। कथन के ढँग कहीं-कहीं तो बहुत ही विचित्र हैं। साधारण बात तो वे बड़े ही मर्म-स्पर्शी ढँग से कहती हैं। जैसे "फटी और अनिश्चित रंग वाली दरी और मटमैली दुसूती का बिछौना लिपटा हुआ धरा था। उसके पास रखी हुई एक मैले फटे कपडे की गठरी उसका एकाकीपन दूर कर रही थी। लाल चिलम का मुकुट पहिने, नारीयल का काला हुक्का बांस के खम्बे में टिका हुआ था।" यहाँ पर रेखांकित पंक्ति कितनी सजीव एवम् भावप्रद हो उठी हैं। दरिद्र का एक मात्र सहारा उसकी फटे पुराने कपड़ों की गठरी ही होती है और जिससे हमें सहारा प्राप्त होता है उसी को हम अपना दुख का साथी समझ बैठते हैं। दरिद्र के जीवन का एकाकीपन इसीलिए गठरी रूपी पूँजी के द्वारा दूर किया जाना महादेवी जी ने लिखा है। उनके वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म हो उठे हैं। एक और शब्द चित्र देखिए—

"उसकी मुखाकृति सांवली और सौम्य थी, पर पिचके गालों से विद्रोह करके नाक के दोनों ओर उभरी हुई हड्डियाँ उसे कंकाल सहोदर बनाये बिना नहीं रहतीं। लम्बा इकहरा शरीर भी कभी सुडौल रहा होगा, पर निश्चित आकाशी वृत्ति के कारण असमय वृद्धावस्था के भार से झुक आया था। उजली छोटी आँखें स्त्री की आँखों के समान सलज्ज थीं, पर एक रस उत्साह-हीनता से भरी होने के कारण 'चिकनी काली मिट्टी से गढ़ी मूर्ति में कौड़ियों से बनी आँखों' का स्मरण दिलाती रहती थीं काँपते ओठों

में से निकलती हुई गले की खरखराहट सुनने वाले को वैसी ही चौंका देती थी जैसे बांसुरी में से निकलता हुआ शंख का स्वर।"

उपमाओं के सहारे उनके चित्र स्पष्ट और सजीव हो उठे हैं। भावना और भाषा का ऐसा मिश्रन अन्यत्र मिलना कठिन है। उनकी भाषा में चित्रकार की सी चित्रकारिता, कवि की सी अलौकिक संगीत लहरी तथा आलोचक की सी तर्क शक्ति एवम् विदग्धता पाई जाती है। उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है उसके छिपी हुई भाव-प्रवणता एवम् कथन की वक्रता। हर बात को ऐसा घुमा फिरा कर प्रस्तुत किया जाता है कि उसमें आन्तिरिक और बाह्य भाव-व्यंजना का एक वैचित्र्य पूर्ण सामंजस्य दिखाई देता है।

"ऊदी रंग के डोरे से भरे हुए किनारों का घुमाव और कोरों में उसी रंग के बने नन्हें फूलों की प्रत्येक पंखुड़ी चीनी नारी की कोमल उंगलियों की कलात्मकता ही नहीं व्यक्त कर रही थी, जीवन के अभाव की एक करुण कहानी भी कह रही थी।"

पूर्व के कोने में पड़े हुए पुआल का गट्ठा और उस पर सिमटी हुई मैली चादर की सिकुड़न कह रही थी कि सोने वाले ने ठण्ड से गठरी बनकर रात काटी है।"

रामचरण महेन्द्र जी के शब्दों में—"महादेवी की दृष्टि बड़ी पैनी है। आपने वस्तुओं, प्राकृतिक दृश्यों, व्यक्तियों तथा ग्रामीणों की भावनाओं को कुशलता से परखा है। बदरीनाथ की यात्रा में कुलियों को देखकर जो भावना व्यक्त की गई है, उसमें लेखिका अपने वर्णनों को प्रभाव पूर्ण और हृदय ग्राही बनाने में सचेष्ट हैं। रूढ़ि के विरोध में जिस शैली का प्रयोग किया गया है, वह गवेषणात्मक और व्यंगात्मक है।"

इस प्रकार क्या पद्य और क्या गद्य सभी में महादेवी जी की भाषा शैली उच्चकोटि की है। उसमें करुणा है, भावना है, संगीत है, प्रवाह है और चित्रात्मकता है। कवि हृदय की भावुकता और संवेदनशीलता सर्वत्र उनकी भाषा में सजग है। भाषा शैली के आधार पर भी उनके गद्य और पद्य की भाँति, उनका स्थान सदैव हिन्दी साहित्य गगन में सराहनीय रहेगा।

———

अध्याय १३

महादेवी और प्रकृति

युग एवं काल के सुनहले सोपान पर प्रगतिशील मनुष्य ने जब पहले पहल 'रश्मि' की एक झाँकी देखी, तब वह भावावेश के प्रथम आवेश को रोकने में सर्वथा असमर्थ सा हो गया, उसने अपने चहुँओर एक पुलक, कुतूहल तथा नूतनता का मनोरम दृश्य आलोक के साथ दीख पड़ा। भावों की अभिव्यंजना का वह दिन धन्य है क्योंकि उसी दिवस तो मानव ने अपनी प्रगति का प्रथम चरण अंकित किया, उसी दिन भावी सौन्दर्य जगत के शिला-न्यास समारोह को उल्लास पूर्वक सम्पन्न किया तथा उसी दिन उसने ऊषा बाला की स्निग्ध मुसकान, नारी के आकर्षक यौवन कोयल की मधुभरी तान और वर्षा की रिमझिम में प्रकृति सुन्दरी के अव-यवों का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करने का प्रयास किया। उसका हृदय बुद्धि के विवेकांकुश को निरादृत कर, सौन्दर्य को सजीव और चेतन जानकर अपनी भाव-विकलता की आकुलता को प्रकट कर सका और तभी कवि की ओजस्वी वाणी भावों को जीवनदान प्रदान करती हुई जीवन के माधुर्य और उल्लास को सवेग पल्लवित करती हुई सौन्दर्य की झाँकी देने में भली प्रकार समर्थ हो सकी। श्रीयुत राजाराम रस्तोगी जी लिखते हैं—

"काल के व्यवधान को चीरती हुई काव्यधारा ने यह स्पष्ट कर दिया कि कवियों ने प्रकृति का अवलोकन कर प्रकृति दर्शन के परिणाम को भिन्न-भिन्न ढंग से अभिव्यंजित किया है। प्रकृति के रम्य रूपों का दर्शन कर, जो मानव मात्र के लिए सुलभ है, और

जो निर्मल, सहज एवं स्वच्छ आनन्द देने वाला है। कुछेक कवि ऐसी प्रकृति का यथातथ्य चित्रण करते हैं, तो कुछेक कवि प्रकृति को उपमा या उदाहरण के रूप ग्रहण कर काव्य रूप देते हैं, कभी कभी तो केवल प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर वर्णन तथा प्राकृतिक वस्तुओं का निदर्शन ही अभीष्ट होता है किन्तु कभी-कभी कवि प्रकृति को मानवीय मनोवेगों के अनुसार रंग कर चित्रित करते हैं। सारांश यही कहा जा सकता है कि प्रकृति के बाह्य और सूक्ष्म सौन्दर्य का अभिव्यक्तिकरण कवि की भावनाओं, मनोवृत्तियों एवं स्वभाव के आश्रित है।" संस्कृत साहित्य में प्रकृति चित्रण जितना उच्चकोटि का मिलता है उतना सुन्दर एवं उत्कृष्ट वर्णन हिन्दी काव्य साहित्य में प्रायः देखने को ही नहीं प्राप्त होता। अंग्रेजी साहित्य भी इस दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। कीट्स (Keats), शैली (Shelly), कालरिज (Coleridge), टेनीसन (Tennyson) वर्ड सवर्थ (William Wordsworth) आदि कवि प्रकृति चित्रण में अपनी-अपनी विशेषता रखते हैं। कीट्स की प्रतिभा तो, कहा जाता है, प्रकृति के मध्य में ही जागरूक होती थी। उनके विषय में यहाँ विचार देखिए—"He was in his glory in the fields. The humming of a bee, the glitter of the Sun seemed to make his nature tremble ; there his eyes flashed, his cheeks glowed & his mouth quivered." उसी प्रकार विलियम वर्डस्वर्थ के सम्बन्ध में भी मैथ्यू आर्नोल्ड (Mathew Arnold) के विचारों को निरीक्षण कीजिए—"The nature took hold of his pen and wrote for him." वर्डस्वर्थ प्रकृति में एक चेतन शक्ति का अनुभव कर झूमकर कह उठता है—"The slightest impulse in the varnal wood world tell you more of man and the world than any sage or volumes of book can tell you.' मृतशिला (Epitaph) पर जो यह उद्दत करने की इच्छा रखता है—

"Here lies one whose name was writ on water." वह वास्तव में प्रकृति देवी का अनन्यतम पुजारी एवं प्रशंसक रहा होगा। कबीर, दादू, नानक, रैदास, मलूकदास आदि हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ कवि हैं। इन्होंने प्रकृति चित्रण में प्रकृति का अद्भुत रूपक बांधा है जो जनता के मन पर गहरी छाप अंकित करने के हेतु तथा उसे अपनी ओर पूर्णरूपेण आकर्षित करने के लिए अनिवार्य था। प्रकृति के सुन्दरतम स्वरूप में वे अवगाहन नहीं कर सके। प्रेम-मार्गी कवियों ने भी प्रकृति के सुन्दर एवं आकर्षण स्वरूप का पूर्ण अवलोकन न कर, केवल कथा की रसात्मकता तथा प्रेम-गाथाओं में प्रेमतत्व का प्रदर्शन विरह को साकार करने के लिये प्रकृति-चित्रण का आश्रह ग्रहण किया है और कहीं-कहीं पर तो केवल एक कृषि विशेषज्ञ की भाँति वृक्षों तथा पुष्पों की एक लम्बी सूची ही बनाकर रखदी है। भक्तिकाल के दो श्रेष्ठ कवि सूर और तुलसी जिनको कृष्ण भक्ति शाखा तथा 'रामभक्ति शाखा' का प्रवर्तक माना जाता है, के काव्यों में भी प्रकृति की रूप माधुरी अपने वास्तविक रूप में नहीं दिखाई पड़ती। उन्होंने यद्यपि प्रकृति का दर्शन भली प्रकार से किया था किन्तु फिर भी प्रकृति का सहज और मनोहारी स्वरूप उनके काव्यों में प्रस्फुटित न हो सका। संस्कृत साहित्य के कवियों में प्रकृति का जैसा संश्लिष्टात्मक चित्र कालिदास, बाणभट्ट, भवभूति आदि कवियों की रचना में पाया जाता है वैसा सुन्दर और आकर्षक प्रकृति चित्रण सूर और तुलसी नहीं दे सके हैं। यद्यपि तुलसीदास जी चित्रण में प्रकृति का शुद्ध एवं आलंकारिक रूप प्राप्त होता है पर वह उपदेशात्मक बन गया है—

"दामिनी दमक रही घन माहीं।
खल के प्रीति यथा थिर नाहीं।"

और फिर आते हैं हमारे रीतिकालीन कवि। उन्होंने तो प्रकृति के बाह्य स्वरूप के ही दर्शन किए हैं। प्रकृति के निःसीम

रूप तक उनकी आँखें नहीं पहुँच पाईं। यद्यपि उनकी प्रतिभा तथा काव्य सौष्ठव अप्रतिम था किन्तु इन मेधावी कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के गुनगान और परम्परा निर्वाह अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा और क्षमता का दुरुपयोग कर दिया। प्रकृति के शुद्ध, निर्मल स्वरूप की झाँकी न तो वे स्वयं ही कर पाये और न ही औरों के सम्मुख ही रख पाये। बिहारी जी ने प्रकृति को नायिक के रूप में देखकर अपनी प्रतिभा को रुदन, हास, विरह इत्यादि भावों के निरूपण में ही समाप्त कर दिया। रीतिकालीन कवियों का षट्ऋतु वर्णन कामुकता से परिपूर्ण है। साथ-साथ शब्द चमत्कार तथा उक्ति वैचित्र्य उनके काव्य में बहुलता से मिलते हैं। इस प्रकार संस्कृत साहित्य के पश्चात् हिन्दी जगत में शुद्ध प्रकृति चित्रणों का अभाव ही खटकता है। स्वर्गीय डा० श्यामसुन्दर दास जी ने लिखा है—"कविता वह साधन है जिसके द्वारा प्रति प्रकृति के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और उसका निर्वाह होता है। कविता उन मूल और आदिम मनोवृत्तियों का व्यवसाय है जो सजीव सृष्टि के बीच सुख दुःख की अनुभूति से विरूप परिणाम द्वारा अत्यन्त प्राचीन कला में प्रकट हुई और मनुष्य जाति आदि काल से जिनके सूत्र से शेष सृष्टि के साथ तादात्म्य का अनुभव करती चली आई है। वन, नदी, नाले, पर्वत, कछार तो मनुष्य के आदिम सहचर हैं ही, पर खेत, पगडंडी, हल बैल, झोंपड़े भी मानव अन्तःकरण में दीर्घ परम्परा के कारण मूल रूप से बद्ध हैं। रागों या वेग स्वरूप मनोवृत्तियों का सृष्टि के साथ उचित सामंजस्य स्थापित करके कविता मानव जीवन के व्यापकत्व की अनुभूति उत्पन्न करने का प्रयास करती है।" इस सृष्टि से प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल के पूर्व तक हमें हिन्दी कवियों का दृष्टिकोण अस्वाभाविक सा लगता है। आधुनिक युग के सर्व प्रथम कवि भारतेन्दु जी भी इतिवृत्तात्मक दृष्टिकोण लेकर कविताएँ करते रहे और उनका भी प्रकृति के प्रति वही दृष्टिकोण रहा जो रीतिकालीन कवियों का

था। भारतेन्दु युग के कवि प्रकृति के बाह्य रूप तक ही सीमित रहे, उसके आन्तरिक सौन्दर्य का रसास्वादन नहीं कर सके। तत्पश्चात् नवीनधारा के कवियों की दृष्टि प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य तक ही, परम्परात रूप में सीमित नहीं रही वरन् उन्होंने प्रकृति की आत्मा का निरीक्षण करना भी आरम्भ किया। 'हरिऔध जी' ने अपने 'प्रियप्रवास' महाकाव्य में प्रकृति को मानवीय रूपों में भी देखा है। "उनके प्रकृति वर्णन में कल्पना की प्रधानता है और कहीं-कहीं कल्पनाएँ बहुत ही सुन्दर होगई हैं। बादलों का गरजना, बिजली का चमकना तथा रिमझिम बूँदों का बरसना 'प्रिय प्रवास' में सर्वत्र मिलेगा। जूही, चमेली, बेला आदि पुष्पों तथा लताओं में महत्व रखकर कवि ने उनमें भी जीवन का स्पन्दन पाया है और वे मानवीय दुखों से सहानुभूति दिखलाते हैं—"प्रो० राजाराम रस्तोगी। पं० रामनरेश त्रिपाठी जी के 'पथिक', 'मिलन' तथा स्वप्न में प्रकृति के निर्मल स्वरूप दिये गये हैं। जैसे—

'इन्द्र धनुष खेला करता है
झरनों से हिल-मिलकर दिन भर।
तृप्त नहीं होते हैं दृग, यह,
दृश्य देख अनिमेष अवनि पर॥
होता है इस नील झील में,
श्यामा का आगमन सुखद अति।
जल क्रीड़ा करते हैं तारे,
लहरें लेता है रजनी पति॥'

और छायावादी युग ने प्रकृति की ओर एक नवीन ढङ्ग से देखा है। छायावादी कवियों ने प्रकृति के अनन्त दृश्य, अनन्तरूप तथा अनन्त सौन्दर्य हिन्दी साहित्य को दिया है। महादेवी जी ने इसी 'आधुनिक कवि' की भूमिका में स्पष्ट करते हुए लिखा है— "छायावाद......में प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का अभास भी रहता है और प्रकृति के व्यक्तिगत सौन्दर्य

पर चेतनता का आरोप भी।" आधुनिक कवि ने प्रकृति के सौंदर्य की माधुर्यमयी अनुभूति की है। प्रसाद जी ऐसे कवियों में अग्रगण्य है। 'आँसू', 'झरना', लहर, कामायनी में उनका प्राकृतिक चित्रण तथा दृष्टिकोण पूर्णतः स्पष्ट हो जाता हैं। प्रातःकाल का एक सुन्दर चित्र देखिए—

'बीती विभावरी जागरी।
अम्बर पनघट में डुबो रही,
ताराघट ऊषा नागरी।

× × × ×

लो यह लतिका भी भर लाई,
मधुकुल नवल रस गागरी।'

और 'कामायनी' महाकाव्य तो प्राकृतिक छटा से ही प्रारम्भ होता है—

'हिम गिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पथिक भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रबल प्रवाह॥ —इत्यादि

'प्रसाद जी प्राकृतिक चेतना और विश्वात्मा की अनुभूति स्वरूप मानते हैं अतः मानवता के व्यापकत्व की ओर ध्यान रखकर प्रकृति से जीवन ग्रहण करते हैं, उनकी सौन्दर्यानुभूति में जीव और जीवन, दृश्य और द्रष्टा, प्रकृति और पुरुष में स्थापित तादात्म्य हो जाता है।' इसी से तो वे कहते हैं—

'नील नीरद देखकर आकाश मे
क्यों खड़ा चातक रहा आकाश में ?
क्यों चकोरों को हुआ उल्लास है ?
क्या कलानिधि का अपूर्व विकास है ?

प्रसाद जी के पश्चात् 'गुप्तजी' आते हैं, परन्तु वे राष्ट्रीय कवि हैं और प्रकृति की ओर उनका दृष्टिकोण 'प्रसाद' तथा 'पन्त' की भाँति नहीं है। पर फिर भी प्रकृति के यत्र तत्र सुन्दर चित्र मिल ही जाते हैं। पंचवटी में प्रकृति का एक चित्र देखिए—

"चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही है जल थल में
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है,
अवनि और अम्बर तल में।"

अन्त में हम महादेवी जी के प्रकृति चित्रण की ओर झुकते हैं जो हमारा मूल विषय है। श्रीमती महादेवी जी के सम्पूर्ण काव्य में—'नीहार' से 'दीपशिखा' तक—प्रकृति चित्रण बहुलता से मिलता है। चन्द्र, सूर्य, किरण, वायु, ज्योत्सना, अग्नि, उदधि, पुष्प, नक्षत्र, लता और कण आदि का वर्णन इनकी कविताओं में सर्वत्र विद्यमान है। "छायावाद तत्त्वतः प्रकृति के बीच में जीवन का उद्गीत है," इस दृष्टिकोण से विचार करने पर महादेवी जी की करुणा में डूबी कोमल गीतमयी भावधारा लोकगीतों की मार्मिकता आदर्श की ओर बढ़ती हुई प्रकृति पथ पर आरूढ़ हुई है। कृतियों के वाह्य आवरण से लेकर भावना रूपी अन्तर्जगत के कण कण में प्रकृति के ही गीत हैं।"—प्रो० राजाराम। रस्तोगी अवनि-तल पर गिरते हुए ओस कण-कण के समय से लेकर दीपशिखा के प्रज्ज्वलित होने तक महादेवी प्राकृतिक सौन्दर्य के मधुर गान गाती ही रही हैं। प्रकृति में सर्वत्र उन्हें एक आश्चर्यजनक मादकता दीख पड़ती है; एक अज्ञात व्यक्तित्व का आभास होता है और वे प्रश्न कर ही बैठती हैं—

'तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में।
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है।

प्रकृति महादेवी जी के लिए शृङ्गार की वस्तु है, प्रियतम की ओर संकेत करने वाली सहचारी है, उसकी आत्मा की छाया है, ब्रह्म की छाया है, उसके जीवन का अपरिहार्य अंश है। अपने असीम की ओर बढ़ती हुई महादेवी प्रकृति के कण-कण से परिचित होती हुई आगे बढ़ी हैं और सब का क्रन्दन पहचान कर आश्वस्त सी हो गई हैं। उनकी दृष्टि गहरी भी है और विशाल भी। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति को उचित स्थान दिया है। उनकी विराट की साधना में प्रकृति ने सदैव सहचारी के रूप में उनका साथ निभाया है। उन्होंने इसी सम्बन्ध और छायावाद का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—

छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एक रूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महा-प्राण बनगई, अतः अब मनुष्य के अश्रु मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु-तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युतरेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोहज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है। जब प्रकृति की अनेक रूपता में परिवर्तन शील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।"

इस तरह महादेवी जी प्रकृति के अणु-अणु में उस अज्ञात, असीम की छाया का अवलोकन करती हैं। साथ ही साथ प्रकृति

में चेतन सत्ता के आभास द्वारा मानवीय भावों का होना भी मान लिया गया है, अतः वह हमारे दुखों में दुखी और सुखों में सुन्दर तथा अल्हादमयी दीख पड़ती है। प्रायः हिन्दी के सभी छायावादी कवियों ने ऐसा किया है। अतः प्रकृति कवि हृदय की सहचारी, उसका एक अंश बन कर उसके दुख-सुख, हर्ष-विषाद तथा निश्चलता-चंचलता में साथ देती रहती है। इस प्रकार उसका प्रकृति के साथ तादात्म्य हो जाता है। महादेवी जी के काव्य में तो यह प्रवृति सबसे अधिक दिखाई देती है। प्रकृति को मानवीय भावनाओं से युक्त करने वाली महादेवी का एक उदाहरण देखिए—

'सिन्धु का उच्छ्वास घन है
तड़ित तम का विकल मन है
भीति क्या नभ है व्यथा का;
आँसुओं से सिक्त अँचल।
दीप मेरे जल अकम्पित घुल अचंचल!'

उनकी तादात्म्य प्रवृति के कारण है उन्हें सर्वत्र वेदना का ही होना दिखाई पड़ता है—

'तेरी महिमा की छाया छवि
छू होता वारिध अपार
नील गगन पा लेता घन सा
तम सा अन्तहीन विस्तार॥'

आपके दुख और नैराश्य के कारण आपका काव्य प्रवाह दुख और पीड़ा का उद्बोधक होते हुए भी प्रकृति से अनुप्राणित है। एक गीत में वे अपने जीवन की संध्या से तुलना करते हुए लिखती हैं—

'प्रिया सांध्य गगन, मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुंधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन !
साधों का आज सुनहला पन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हंसती चितवन !'

सम्पूर्ण गीत में उनकी अपने जीवन की छाया सन्ध्या के आकाश में प्रतिबिम्बित हो रही है। इस प्रकार 'मैं नीर भरी दुख की बदली' कविता में उनकी आत्मा का प्रकृति के साथ पूर्णतादात्मय मिलता है।

'मैं नीर भरी दुख की बदली !
रज-कण पर जल कण हो बरसी
नव जीवन अंकुर बन निकली !
पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिन्ह न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली !'

'विरह का जल जात जीवन' मैं बनी मधुमास आली' इत्यादि कविताओं में भी इसी प्रकार के बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव की सृष्टि की गई है। यह सर्व मान्य है कि उनके काव्य में सर्वत्र उनके दुःखवाद की ही छाया विद्यमान है जिसके फलस्वरूप उसका मानस अधिक करुण एवं सहृदय हो गया है, अतः वे अणु अणु से अपना सम्पर्क जोड़ने को तथा उसमें अपनी छाया निहारने को लालायित हैं।

तादात्म्य की उनकी दूसरी प्रवृत्ति विरोधी तत्वों के प्रयोग द्वारा दीख पड़ती है। उदाहरणार्थ—

'जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर
दोनों मिलकर देते रज कण
चिर करुण मधुर सुन्दर सुन्दर
जग पतझर का नीरव रसाल
पहने हिम जल की अश्रु माल,
मैं पिक बन गाती डाल डाल
सुन फूल फूल उठते पल-पल
सुख दुख मँजरियों के अंकुर।'

महादेवी जी के प्रकृति चित्रण की दूसरी विशेषता है उसमें मानवी करण की भावना। इस सम्बन्ध में उनकी कुछ कविताएँ विशेष महत्व की हैं, वैसे तो सर्वत्र उनके काव्य में प्रकृति के चित्रणों में ऐसी भावनाएँ पाई ही जाती हैं। वर्षा का एक वर्णन देखिए। इसमें नारी के भव्य रूप की स्थापना की गई है। यहाँ प्रकृति प्रकृति नहीं रह गई है बल्कि वह मानवी के रूप में हमारे समक्ष आती है—

'रूपसि तेरा घन-केश पाश!
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश!
उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
वक् पांतों का अरविन्द हार;
तेरी निश्वासें छू भूको
बन बन जाती मलयज बयार;
केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास!
रूपसि तेरा घन-केश पाश!'

कवि अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का प्रकटीकरण करने के लिए भाँति-भाँति रूपों में प्रकृति की सहायता लेता है। यह उसी सहायता का एक दृष्टिकोण है। दूसरा दृष्टिकोण हमें जब मिलता है जब हम कवयित्री को अलौकिक तथा विराट प्रकृति में भी मानवीकरण करते हुए पाते हैं—

'लय गीत मदिर, गति ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर
आलोक तिमिर सित असित चीर
सागर गर्जन रुनझुन मँजीर
उड़ता झंझा में अलक जाल
मेघों में मुखरित किंकिणि स्वर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर
रवि शशि तेरे अवतंस लोल,
सीमंत जटिल तारक अमोल,
चपला विभ्रम, स्मिति इन्द्र धनुष
हिम कण बन झरते स्वेद निकर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।'

उपर्युक्त गीत में महादेवी जी ने विराट सत्ता को एक अप्सरि का रूप दे दिया है जिसके अवयवों तथा सौन्दर्य प्रसाधान की वस्तुओं में प्रकृति के अनेकों अवयवों तथा दृश्यों का निरूपण किया गया है। इस मानवी करण में विराट प्रकृति के अंग रूप प्रकृति के उपादान बताए गये हैं। उसी प्रकार उन्होंने कहीं-कहीं पर अपने अंगों को भी प्रकृति का रूप दे दिया है—

'मेरी निश्वासों से बहती रहती झंझावात,
आँसू में दिन रात प्रलय के घन करते उत्पात
कसक में विद्युत अन्तर्धान!

इस प्रकार प्रकृति के अन्त रंग में उन्होंने केवल अपने प्रियतम की छाया को ही नहीं देखा है बल्कि अपनी भावनाओं का प्रतिबिम्ब भी उन्हें उसमें प्रतीत होता है। वे सर्वत्र अपने प्रिय की छाया देखती हैं और उसी परोक्ष की छाया के सम्बन्ध के कारण वे सम्पूर्ण प्रकृति के साथ अपनी आत्मा का सम्बन्ध जोड़ लेती हैं। प्रकृति सहचरी उनकी सखी है तथा उसके उपकरणों द्वारा वे अपना शृंगार करती हैं। एक गीत देखिए जिसमें कवयित्री प्रकृति के उपकरणों द्वारा अपना शृंगार करके अपने को प्रियतम के प्रति समर्पित करने की तैयारी करती हैं—

'रञ्जित करदे यह शिथिल चरण
ले नव अशोक का अरुण राग।
मेरे मण्डन को आज मधुर
ला रजनी गधा का पराग॥
यूथी की मीलित कलियों से अलि दे मेरी कबरी सँवार।
पाटल के सुरभित रंगों से,
रंग दे हिम-सा उज्ज्वल दुकूल
गुँथ दे रशना में अलि गुञ्जन
से पूरित झरते वकुल फूल

'रजनी से अंजन माँग सजनि दे मेरे अलसित नयन सार।'
प्रकृति को सजनि का रूप देकर उसे प्रियतम से मिलने के लिए शृंगार करने को कवयित्री बाध्य करती हैं। वास्तव में इस भाव में महादेवी जी की अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। वे स्वयं अपने प्रियतम से मिलन करने को सदैव लालायित हैं। प्रकृति तो केवल उनके भावों के प्रकटीकरण के लिए माध्यम बन कर प्रस्तुत हुई है। वे लिखती हैं—

'श्रृंगार कर ले री सजनि !
नव क्षीर निधि की उर्मियों से
रजत झीने मेघ सित;
मृदु फेनमय मुक्तावली से
तैरते तारक अमित,
सखि ! सिहर उठती रश्मियों का
पहिन अवगुण्ठन अवनि !'

उनके रहस्यवाद की कोमलता का कारण भी यही प्रकृति है। प्रकृति के सौन्दर्य में उन्हें अपने प्रिय का आभास मिल जाता है। उनका प्रिय शाश्वत् है, चिरन्तन है तथा कुशल कलाकार है। सम्पूर्ण विश्व के निद्रामग्न होने पर भी उनका प्रिय तारकों में जागता रहता है। विरहिणी के लिये ऐसे संकेत का आभास होना क्या कम सौभाग्य की वस्तु है। एक उदाहरण लीजिए—

'सो रहा है विश्व, पर प्रिय तारकों में जागता है !
नियति बन कुशली चितेरा—
रंग गई सुखदुख रंगों से,
मृदुल जीवन पात्र मेरा !
स्नेह की देती सुधा भर अश्रु खारे माँगता है !
मेघ रूँधा अजिर गीला—
टूटता सा इन्दु कन्दुक
रवि झुलसता लोल पीला !
यह खिलौने और यह उर ! प्रिय नई असमानता है !'

एक ओर यदि प्रकृति की सुषमा उन्हें उनके परोक्ष प्रियतम का सन्देश दे जाती है तो दूसरी ओर वही प्रकृति उन्हें उपदेश देती हुई भी प्रतीत होती है। गिरते सुमन, निश्चल तृण, बेसुध कोकिल तथा प्यासी चातकी उन्हें जीवन की व्यथा का संकेत कर जाते हैं, वही संकेत जो दिवस भी उन्हें नहीं दे पाया था—

"यह बनाया झर सुमन ने,
यह बताया मूक तृण ने,
वह कहा बेसुध पिकी ने
चिर पिपासित चातकी ने
सत्य जो दिव कह न पाया था, अमिट सन्देश में,
आँसुओं के देश में!"

यह प्राकृतिक दर्शन है। प्राकृतिक दृश्यों का परिवर्तन—पुष्पों का खिलना, उनका मुरझा जाना, कोकिल की मधुर तानें, उसकी शाँति, वायु का कम्पन, उसका बन्द हो जाना इत्यादि इत्यादि—उन्हें जीवन की हलचल, उसकी अस्थिरता तथा उसके नष्ट हो जाने की ओर संकेत करता है। पर महादेवी जी में इस प्रकार की भावना कहीं-कहीं पर ही मिलती है। प्रकृति तो इसके विपरीत उनकी चिर संगिनी है जो उनका शृङ्गार करती है, जो उन्हें अज्ञात प्रिय का आभास कराती है तथा जो उनकी भावनाओं को व्यक्त करने में सहायता करती है। महादेवी जी के काव्य में प्रकृति उनके जीवन के सत्य को प्रकट करने के हेतु माध्यम बनकर आई है। महादेवी जी सदैव से ही निराकारता की ओर उन्मुख ही हैं। प्रकृति के उपमानों द्वारा वे अपने जीवन के सत्य को किस प्रकार व्यक्त करती हैं, यह निम्नांकित गीत में देखिएगा :—

'विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन!
अरे अस्थिर छोटे जीवन!'

'प्रकृति' महादेवी जी के लिए शृङ्गार प्रसाधन वस्तु है, प्रियतम का आभास करने वाली सखि है, उसकी छाया है, ब्रह्म की चेतना

है तथा उसके जीवन का अपरिहार्य अंश है। अपने परोक्ष प्रियतम की साधना में बढ़ती हुई कवयित्री ने प्रकृति के कण-कण को पहचान लिया है—

'अलि मैं कण कण को जान चली !
सबका क्रन्दन पहचान चली !
कुछ दृग में हीरक जल भरते,
कुछ चितवन इन्दु धनुष करते,
टूटे सपनों के मनकों से
कुछ सूखे अधरों पर झरते !
आँसू के सब रंग जान चली !
दुख को कर सुख आख्यान चली !'

उनकी दृष्टि गहरी, विशाल तथा सामंजस्य पूर्ण है जिसके पक्ष में उन्होंने स्वयं लिखा है—"जड़ चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन जड़ के बिना आकाश शून्य। इन दोनों की क्रिया—प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा में हो, चाहे किसी 'वाद' के अन्तर्गत, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो, चाहे अपार्थिव की, और चाहे दोनों के अविच्छिन्न सम्बन्ध की, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है।" प्रारम्भ में प्रकृति उन्हें परोक्ष सत्ता की भाँति कुतूहल पूर्ण दिखाई देती थी। उसके प्रति उनकी भावना में जिज्ञासा थी परन्तु धीरे-धीरे वही जिज्ञासा से पूर्ण प्रकृति उन्हें प्रत्यक्ष होती गई और उसका सूक्ष्म सौन्दर्य प्रकट होता चला गया 'नीहार' से 'दीपशिखा' तक आते-आते प्रकृति उनके प्राणों से ऐसी घुलमिल गई है कि सर्वत्र प्रकृति में अपनी ही भावनाएँ दिखाई देती हैं। प्रकृति उनके दुख में दुखी—

'मिल जाता काले अंजन में
सन्ध्या की आँखों का राग,
जब तारे फैला फैला कर
सूने में गिनता आकाश;
उसकी खोई सी चाहों में
घुट कर मूक हुई आहों में!'

तथा सुखी में सुखी प्रतीत होती है—

'झिलमिलाती रात मेरी!
साँस के अन्तिम सुनहले
हास सी चुप चाप आकर,
मूक चितवन की विभा—
तेरी अचानक छू गई भर
बन गई दीपावली तब आँसुओं की पाँत मेरी!
झिलमिलाती रात मेरी!'

वे अपने दुख से पीड़ित नहीं होती हैं क्योंकि चिर वेदना को तो उन्होंने अपनी साधना ही मान लिया है। विरह से तो उन्हें उल्टा स्फुरण मिलता है। इसी से वे अपनी हीनता में भी केवल यही वरदान माँगती हैं—

"घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय!
जलधि मानस से नव जन्म पा
सुभग तेरे ही दृग व्योम में,
सजल श्यामल मंथर मूक सा
तरल अश्रु विनिर्मित गात ले
नित घिरूँ उर भर मिटूँ प्रिय
घन बनूँ बर दो मुझे प्रिय!"

प्रकृति के अनन्त चित्र उनके निजी भावों के ही प्रतिबिम्ब हैं। पर कहीं-कहीं पर स्वतन्त्र रूप से भी उन्होंने प्रकृति चित्रण किया

है। शुद्ध तथा मानवीय भावों से मुक्त प्रकृति के दृश्य उनकी कविता में गिने चुने ही हैं। 'हिमालय' के चित्रण में कितना रूपरंग तथा सजीवता है, यह देखने की वस्तु है—

"तू भू के प्राणों का शत दल !
सित क्षीर-फेन हीरक रज से
जो हुए चाँदनी में निर्मित
पारद की रेखाओं में चिर
चाँदी के रंगों से चित्रित
खुले रहे दलों पर दल झलमल
सीपी से नीलम से द्युतिमय
कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल
कुछ सुख चंचल कुछ दुख मंथर
फैले तम से कुछ तूल-विरल,
मँडराते शत शत अलि बादल !"

आलंकारिक रूप में अन्य कवियों की तरह ही महादेवी जी ने उपमान ग्रहण किए हैं। श्री 'कमलेश' जी इनके सम्बन्ध में लिखते हैं—

"उनके उपमान अधिकतर वसंत और पावस दो ऋतुओं से लिए गए हैं।"

"साधना पथ पर बढ़ते हुए साधक की आँखों में आँसू और ओठों पर मुस्कान दो ही सम्बल रूप पदार्थ होते हैं। पावस आँसू से सम्बद्ध है और बसन्त मुस्कान से। रंग भी उज्ज्वल और काला विशेष रूप से आये हैं। इन ऋतुओं से सम्बन्धित पक्षियों में भ्रमर चातक, मयूर, कोकिल, चकोर आदि विशेष रूप से आये हैं। फूलों में कमल, हरसिंगार और गुलाब का उल्लेख बहुत हुआ है। वैसे नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा इन क्रमशः प्रकाशित ग्रन्थों में कोई ऐसा समय नहीं, जिसका वर्णन उनकी

कविता न हो। सागर, पृथ्वी और आकाश तीनों के उपकरणों का प्रयोग करने में वे सिद्ध हस्त हैं। बसन्त और पावस में इनकी बदलती हुई छटा का दिग्दर्शन उन्होंने बार-बार कराया है। 'दीपशिखा' में पतंग प्राणों के तिल तिल कर जलने के लिए आतुर दीख पडता है। प्रेम लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले के प्रतीक के रूप में ही वह बराबर आया है। दोपहरी का एक चित्र महादेवी जी के काव्य में नहीं है। प्रभात, संध्या और रात तीन के ही चित्र या तीन के ही उपकरण अनेक भावों की व्यंजना के हेतु आये हैं"—

इन भावों के अंकन या इनके उपकरणों को भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में महादेवी जी ने वैभव विलास की ही दृष्टि रखी है। श्री विश्वम्भर मानव जी इसी सम्बन्ध में लिखते हैं—"हमारी साधिका ब्रह्म की सुहागिन है। उस महान ऐश्वर्यशाली की प्रेमिका के लिए चाँदी सोना, मोती, प्रवाल, नीलम, पुखराज सामान्य वस्तुएँ न होंगी तो किसके लिए होंगी।"

हिन्दी साहित्य का मूलाधार अध्यातमवाद को समझना चाहिए और इस अध्यातमवाद में प्रकृति का स्थान सदैव अक्षुराण रहता है क्योंकि प्रकृति ब्रह्म की श्रेष्ठतम रचना है और मानव मन सौन्दर्य की चोट के कारण सतत् उस ओर आकर्षित रहता है। कदाचित् इसीलिए प्रकृति कवियों के लिए सदैव सर्वत्र आकर्षक एवं मनमोहक रही है। प्रेम मार्गी कवियों की प्रेम व्यंजना, राम और कृष्ण की सगुण भक्ति धारा, रीति काल की शृङ्गार भावना, रहस्यवाद, प्रगतिवाद तथा छायावाद इत्यादि सभी में प्रकृति चित्रण किन्ही न किन्हीं अंशों में कवि और काव्य की प्रेरिका रही हैं। हिन्दी काव्य में ऐसे अनेकों प्रकृति चित्रण है, विशेषतः छायावादी कवियों के। जहाँ प्रकृति के अत्यन्त स्वच्छ, निर्मल तथा सुन्दरतम् चित्रण मिलते हैं। प्रकृति एक का सुन्दर, स्वतन्त्र वर्णन प्रसाद जी की 'कामायनी' में देखिए-

'उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित काल रात्रि जल में अन्तर्निहित हुई।
वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का आज लगा हँसने फिर से,
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में शरद विकास नये सिर से ॥"

छायावादी कवि नवीन प्रकृति चेतना से युक्त रीतिकालीन उद्दीपनकारी प्रकृति को उलट पलट कर साध्य रूप में प्रकृति को उपस्थित कर रोमान्टिक कवियों (Romantic poets) की भाँति 'Back to Nature' पुकार उठे हैं। हिन्दी साहित्य के प्रकृति चित्रण में छायावादी युग में प्रकृति के भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों को संवारा गया है। प्रतीकों द्वारा अभिव्यंजना तो छायावादी बहुत से कवियों ने की है पर प्रकृति को अपने जीवन दर्शन की अभिव्यंजना का—ससीम का निःसीम से तादात्म्य का माध्यम बनाना महादेवी जी की अपनी विशेषता है। प्रकृति उनके प्राणों में ऐसी घुलमिल गई है कि उसे महादेवी जी के जीवन से पृथक देखना हमारी भूल होगी। जिस प्रकार उन्हें वेदना प्रिय है, उसी प्रकार उन्हें प्रकृति भी। प्रकृति के आँचल में बैठक कर तारों की छाया में उन्हें अपने प्रियतम का कुतूहल देखने को मिलता है। तारों की झिलमिल जाली में, प्रभात के वायु कम्पन में, चाँद की शीतल रश्मिओं में तथा सन्ध्या के मूक-मिलन में उन्हें अपनी ही भावनाएँ साकार रूप से देखने को प्राप्त होती हैं। प्रकृति को देखकर केवल उनकी लालसा ही जाग्रत नहीं हुई है प्रत्युत वे तो उससे एकाकार होगई हैं। उन्होंने तो प्रकृति सहचारी के साथ आजीवन अभिन्न तादात्म्य स्थापित कर लिया है। प्रकृति उनके दुख में सहानुभूति प्रकट करती है, उनके सुख में उनका शृङ्गार करती है, उन्हें उपदेश देती है तथा जीवन दर्शन की झाँकी कराती है। प्रकृति का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है तथा उसके अस्तित्व में परोक्ष प्रियतम के तथा महादेवी जी के अस्तित्व की छाया भी

विद्यमान है। अतः हिन्दी के वर्तमान कवियों में महादेवी जी का प्रकृति-प्रेम अपना निजत्व रखता है, कहना अनुचित न होगा। हिन्दी के वर्तमान कवियों में महादेवी जी प्रकृति द्वारा अपनी भावनाओं को परिपूत अभिव्यक्ति दी है और विराट प्रियतम की प्रेमानुभूति के लिए उनके व्यक्तित्व को विशालता तथा भव्यता दी है। यही उनकी प्रकृति द्वारा अर्पित सबसे अमूल्य निधि है।

———

अध्याय १४

गीतकार महादेवी की प्रणयानुभूति तथा दार्शनिक चिन्तन

यह कहना तो अत्यन्त कठिन है कि गीतों का निर्माण सर्वप्रथम कब हुआ और किस भावुक ने किया किन्तु गीतों की रचना आदि काल से ही चली आती है, यह असंदिग्ध है। संभवतः गीतों की सर्वप्रथम रचना जब हुई होगी, जब किसी कोकिलकंठी रमणी ने वात्सल्य स्नेह के उभार में अपने दुलारे को झुलाते समय लोरी गाकर सुनाने का प्रथम प्रयास किया गया होगा या प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर भावनाओं से उत्प्रेरित होकर किसी भावुक हृदय ने गीतों की व्यंजना की होगी अथवा वियोग से दुखित हृदय ने जब अपने को संयम की शृङ्खलाओं में न रोककर शब्दों के रूप में मुखरित कर दिया होगा। ऐसा कहा भी जाता है कि—

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुप चाप बही होगी कविता अनजान॥"

हर्ष और विषाद की मनोभूमि पर गीतों का सृजन हुआ होगा, ऐसा मैं मानता हूँ। कविता के जन्म की कहानी में निम्नांकित श्लोक को मान्यता दी जाती है—

"मा निषाद प्रतिष्ठाम त्वं गमा शाश्वति समा
यत्क्रौंच मिथुनादेकम वधीः काम मोहितम्।"

गीतों के प्रारम्भ की यह कहानी दर्दनाक होते हुए भी रोचक और सत्य के पूर्ण निकट है। सामान्य रूप से गीतों के दो रूप

माने जाते हैं, एक लोक गीत तथा दूसरा साहित्यिक गीत। लोक गीत हृदय का स्वाभाविक एवं स्वतन्त्र उद्‌गार है। श्री रस्तोगी जी के शब्दों में—"लोक गीत का स्वरूप निर्बन्ध होता है, उसकी स्वाभाविकता, सरसता और स्वच्छन्दता हृदय को आनन्दित कर प्रभाव उत्पन्न करती है। जिस तरह लहराता हुआ सागर गम्भीर एवं गहन है, जिस तरह गंगा की धारा पवित्र एवं स्वच्छन्द है, जिस तरह नीलाकाश में उड़ने वाले पक्षी स्वतन्त्र एवं सरल है, इसी प्रकार हमारे लोकगीत स्वच्छन्दता, सरलता एवं सरसता की पीयूषधारा हैं।" किसी राष्ट्र अथवा जाति के इतिहास में लोक-गीतों का सांस्कृतिक महत्व होता है। उनके द्वारा हमारे युग विशेष के रीतिरिवाज, सामाजिक तथा धार्मिक आचार विचारों तथा देशकाल की भावधारा का पता लगता है। उन गीतों की झंकार में साधारण जन की चेतना की आवाज रहती है। जनता के भावों का, आवेगों का, आशा-निराशा का, घृणा और प्रेम का, दुख और सुख का तथा आकांक्षा और उनके घात प्रतिघातों का सुन्दर स्वरूप इन लोक-गीतों की मधुरिमा है। इनके सम्बन्ध में स्वर्गीय डा० अमरनाथ झा का कथन सर्वत्र स्तुत्य है—"इन सरल पदों में देश की यथार्थ दशा वर्णित है, यहाँ की संस्कृति इनमें सुरक्षित है। सभ्यता तो बाह्य आडम्बर है, कल तुर्कों की थी, आज अंग्रेजों की है। भारतीयता हमारे गाँव के रहने वालों में है, जो शहरों के क्षणभंगुर आभूषणों से अपने स्वाभाविक रूप को छिपा नहीं चुके हैं, जिनमें युगों से वेदना को सहन करने की शक्ति है, जो सुख दुख में, हर्ष विषाद में, जगत स्रष्टा को भूलते नहीं हैं, जो वर्षा के आगमन से प्रसन्न होते हैं, जो खेतों में, जाड़े गर्मी में, प्रकृति देवी के निकट अपना समय बिताते हैं। इन गानों में हम मनुष्य जीवन के प्रत्येक दृश्य को देखते हैं। कन्या के ससुराल चले जाने पर माता के करुण स्वर सुनते हैं, पुत्र के जन्म पर माता पिता के आनन्द की ध्वनि पाते हैं, खेतों के बह जाने पर हताश

किसान के क्रन्दन, व्याह के अवसर पर बधाई के गान, गृहिणी के विरह की व्यथा, सन्तान की असामयिक मृत्यु पर मूक वेदना अर्थात् मानसिक जीवन की नैसर्गिक कविता का रसास्वादन करते हैं। अतः लोक गीतों के द्वारा हम अपनी संस्कृति तथा सामाजिक जीवन की झांकी पा लेते हैं। किसान और मजदूर के गीतों से लेकर प्रेम तथा प्रकृति के मधुर गीत लोक गीतों के प्राण हैं। वास्तव में सत्यार्थी का यह कथन ठीक ही है - "भारतीय लोक गीत के सुविस्तृत कुटुम्ब कबीले की एक स्वरता, भारतीयता और राष्ट्रीय एकता की अमर विभूति है।" अब हम आते हैं साहित्यिक गीतों पर। साहित्यिक गीतों की परम्परा की खोज तथा उनका मनन साहित्य का एक प्रमुख विषय है। हमारे प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य में गीत भरे पड़े हैं। गीत को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है—एक लौकिक जिसमें हमारे जीवन की समस्याएँ, इतिहास, सभ्यता आदि की झलक हो। तथा दूसरा पारलौकिक जिसमें जीवन की गहनतम विभूतियों का चिन्तन हो। यही कारण है कि हमारे प्राचीन महर्षियों ने गीत के लिए दो शब्दों का प्रयोग किया है। वह है 'ऋक्' और गीत। 'ऋक' में ईश्वर सम्बन्धी गीत रहते हैं और 'गीत' में मानवीय भावों की व्यंजना। संस्कृत के गीतिकाव्यों में विशेषतः शृङ्गार-नीति, वैराग्य तथा प्रकृति सौन्दर्य के वर्णन संगीतमय छन्दों में प्राप्त होते हैं। संस्कृत गीति काव्य 'मुक्तक' तथा 'प्रबन्धक' दोनों रूपों में उपलब्ध है। नारी हृदय का सुन्दर वर्णन, शृङ्गार की विभिन्नावस्थाओं का मार्मिक चित्रण एवं बाह्य एवं अन्तः प्रकृति का परस्पर प्रभाव-पूर्ण मधुर पदों में व्यंजित हुआ है। 'मेघदूत' संस्कृत के गीतिकाव्यों में सबसे महत्व पूर्ण है। यह मानव तथा मानवेतर प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का सुन्दर उदाहरण है। गीतिकाव्य के रचयिताओं में अमरूक का स्थान ऊँचा है। बिहारी की भाँति उन्होंने अपने मुक्तकों में इतने रस और भाव भरे हैं कि वे प्रबन्ध से समता

रखते हैं। संस्कृत के गीतिकाव्यों में मधुर पदावली के साथ संगीतमय छन्दों का कोमलता के साथ प्रयोग किया गया है। हिन्दी काव्य में गीतों में विशेषतः तीन रूप पाये जाते हैं—शृङ्गार प्रधान उपदेश प्रधान और विचार तथा अनुभूति प्रधान। शृङ्गार प्रधान गीति परम्परा में मैथिलकोकिल विद्यापति ठाकुर के सुन्दर शृङ्गारिक पद प्राप्त हैं। महाकवि विद्यापति के गीतों की शृङ्गारिक आध्यात्मिकता भावमयी नारी के हृदय से निकलकर दर्शनीय हो उठी है। देखिए

"सुतल छयहूँ हम घरवा रे गरवा मोति हार।
राति जखन भिनु सरवा रे पिया आयल हमार॥
कर कौशल कर कंपइत रे हरवा उर हार।
कर पंकज उर थपइत रे मुख चन्द निहार॥"

उपदेश प्रधान गीति शैली में सूर, कबीर, तुलसी के गीतों की गणना की जाती है। मध्य कालीन संत कवियों के गीतों में शृङ्गार तथा आध्यात्म का अपूर्व मिश्रण है। और तीसरी गीतिशैली के अन्तर्गत मीरा, महादेवी, निराला, प्रसाद और पंत आदि के गीत आते हैं। वर्तमान काल में गीतों की रचना विशेष रूप से हो रही है। इन गीतों के तार शृङ्गार, राष्ट्र प्रेम, दर्शन आदि से बने हैं जिनकी झंकार में कोमलता के साथ रहस्यमय कुतूहलता भी परिलक्षित होती है। एक ओर बच्चन के गीतों में शृङ्गार की छाया है तो दूसरी ओर 'नवीन जी' के गीतों में क्रान्ति की पुकार। पर महादेवी जी के गीतों में अभाव के प्रति ममत्व मिलता है। महादेवी जी का स्थान आज के मुक्तक गीतिकारों में महत्वपूर्ण है। उनके गीतों में जितनी मधुरता तथा रहस्यात्मकता दीख पड़ती है उतनी केवल 'प्रसाद' जी को छोड़कर और किसी हिन्दी कवि के गीतों में नहीं मिलती, यहाँ तक की 'निराला' जी के गीतों में भी नहीं। उनकी मधुरता का सबसे प्रमुख कारण है उनका नारी हृदय। महादेवी जी में करुण तथा संवेदना दो ऐसे गुण हैं जिन्होंने उन्हें सम्पूर्ण

विश्व से आत्मीयता अनुभव करने की सुविधा प्रदान करदी है महादेवी जी में एक जिज्ञासा भाव है—

"कौन तुम मेरे हृदय में ?
एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संसार संचित।
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत शत।
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में।"

पर यह कुतूहलता बढ़ती ही जाती है। आगे पहुँच कर इस कुतूहलता में विश्वास, हर्ष तथा विषाद की भावनाएँ मिश्रित हो जाती हैं। प्रेम का प्रथम लक्षण है अन्तर में एक प्रकार की कोमलता का जग पड़ना। जहाँ आकर्षण ने जन्म लिया नहीं कि व्यक्ति मधुरता मिश्रित किसी शीतल विह्वलता का अत्यन्त तीव्र अनुभव करने लगता है। महादेवी जी अमर प्रणायिनी हैं, उनके प्रेम में साधना है, अनुभूति है तथा वेदना का सर्वत्र साम्राज्य है। महादेवी जी की प्रणायानुभूति अमांसल है, अलौकिक है। युग युग की वियुक्त आत्मा की व्यथा को व्यक्त करने की आकुलता और उसकी अभिव्यक्ति की अनिर्वचनीय मधुरता के मध्य ही महादेवी जी का मन अभी तक भ्रमण करता रहा है। श्री विश्वम्भर 'मानव' जी लिखते हैं—"जैसे अतल सागर के हृदय से उठने वाली लहरों, सीमाहीन अवकाश के अन्तर से बहने वाली हिलोरों, सूर्य के नयन कोर से बरसने वाली किरणों और सुधानिधि के आनन से झरने वाली रजत रेखाओं की कोई सीमा नहीं, उसी प्रकार मन के केन्द्र बिन्दु से उगने वाली भावनाओं की कोई इति भी नहीं। विश्लेषण, अनुमान और अनुभव से इतना सिद्ध है कि इन चेतना रश्मियों की उद्गम वृत्ति किसी न किसी रूप में आनन्द मयी है। यह 'आनन्द' प्राणी के मानस में स्नेह रस बनकर संख्यातीत लहर बुद् बुद् आवर्तों में परिवर्तित हो जाता है। मानव का मन ही नहीं, बाह्य सृष्टि भी यही दुहराती है। कहीं उषा मुस्कराती, शतदल खिलते और मधुर मकरन्द पान करते हैं, कहीं खग कूजते, पंख

आकाश पथ मापते और फिर दिनान्त में चारा लेकर नीड़ों की ओर लौट आते हैं, कहीं संध्या घिरती, ज्योत्स्ना फूटती और कुमुदिनी खिल पड़ती है, कहीं मेघ घिरते, गर्जन होता और मयूर नृत्य करते हैं; कहीं गिरिवर पिघलते हैं, नदियाँ उमड़तीं और समुद्र का हृदय भरता है, कहीं नयन मिलते, आकर्षण बढ़ता और प्रतीक्षा होती है; कहीं दीनता बरसती, बरौनियाँ भींगती और सेवा पथ स्वीकार करना पड़ता है; कहीं स्वतंत्रता छिनती, देशानुराग जन्म लेता और प्राणों की आहुतियाँ दी जाती हैं। द्वेष, क्रोध यहाँ तक कि हत्या तक के जो उदाहरण सुनाई पड़ते हैं उनके मूल में भी प्रायः प्रेम ही निवास करता है।" अतः प्रेम जीवन की सबसे मधुर एवम् सब से व्यापक वृत्ति है। प्रकृति और संसार के बन्धनों को तोड़ कर तथा उनसे ऊपर उठकर जब हृदय परोक्ष सत्ता की ओर उन्मुख होता है तभी प्रेम लौकिक में अलौकिक बनकर एक असीम आनन्द की सृष्टि करता है। सांसारिक प्रेम की भाँति अलौकिक प्रेम अस्थायी नहीं होता वरन् वह तो चिर होता है जहाँ किसी प्रकार के अविश्वास की गुञ्जाइश ही नहीं रह जाती। महादेवी जी की प्रणयानुभूति भी अलौकिक कही है—अर्थात् प्रेम का वह मधुर सम्बन्ध जो प्रेमिका और प्रेमी के बीच चलता है, उनकी आत्मा ने असीम संस्थापित किया है। इस प्रकार एक ओर उनमें आध्यात्मिक अन्वेषण और अलौकिक प्रणय—निवेदन की भावना पाई जाती है और दूसरी ओर वही अनुभूति, वही प्रेम करुण तथा संवेदना के संबल द्वारा प्रकृति की तुच्छ से तुच्छ वस्तु और समाज में 'छोटे' की संज्ञा प्राप्त करने वाले अनाहृत व्यक्तियों के दुःख सुख में आनन्द खोजता दिखाई पड़ता है। उनकी सहानुभूति इतनी अधिक है कि वे अपने ही हाथों से वास्तविक दुखियों और दीनों की सहायता करती फिरतीं हैं। उनकी आत्मा में लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम विद्यमान हैं। लौकिक प्रेम में वे माँ के रूप में, बहिन के रूप में, स्वामिनी और प्रकृति

प्रेमिका के रूप में सर्व श्रेष्ठ हैं तथा अलौकिक प्रेम में वे एक विरहिणी साधिका के रूप में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। उनका लौकिक प्रेम उनके 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में देखने को मिलता है और अलौकिक प्रेम उनके काव्यों में भरा है। कुछ लोग उन्हें पलायन वादिनी तथा कोरी आदर्श वादिका कह कर पुकारते हैं परन्तु वे कितने प्रगल्भ हैं। जिन्होंने आजीवन समाज के दलित प्राणियों की सेवा का व्रत ले रखा हो तथा जो ग्रीष्म की प्रचण्ड लूओं में ग्राम ग्राम किसानों की सेवा करती फिरी हों और जिन्होंने शरनार्थियों की सहायतार्थ पैसा इकट्ठा करने के लिए अत्यधिक परिश्रम किया हो उन्हें हम पलायन वादिनी कैसे कह सकते हैं। उनकी कथा संवेदना केवल शब्दों के आदर्श की ही वस्तु नहीं हैं प्रत्युत वे यथार्थ जीवन में कार्य करती दिखाई देती हैं। पलायन के संस्कार उनमें हो ही नहीं सकते। पर 'मानव' जी के शब्दों में यदि कोई यह सोचता हो कि काव्य सृष्टि भी कवि उसी विषय पर करनी होगी जिसे वह या उसका दल चुनकर दे तब उससे बड़ा अज्ञ और कोई नहीं हो सकता है। महादेवी जी के जीवन में तथा दर्शन में—दोनों में साम्य हैं। उनकी समन्वय वादी प्रवृत्ति तथा सामंजस्य की भावना सर्वत्र उनके काव्य में विद्यमान है। उनका प्रणय भी व्यक्तिगत होते हुए भी, सामंजस्य की खोज में दिखाई देता है। इसी व्यष्टि में समष्टि और समष्टि में व्यष्टि की भावना ने तो उनके गीतों को इतना मधुर तथा रोचक बना दिया है। वे स्वयं गीतों की अनुभूति के सम्बन्ध में स्पष्ट करती हैं—"सुख दुख के भावावेषमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना गीत है। इसमें कवि को संयम की परिधि में बँधे हुए जिस भावातिरेक की आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नहीं, कारण हम प्रायः भाव की अतिशयता में कला की सीमा लांघ जाते हैं और उनके

उपरान्त भाव के संस्कार मात्र में मर्मस्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ—दुखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्तक्रंदन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है जिसमें संयम का नितान्त अभाव है। उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में भी है, जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की सम्भावना रहती है। उसका प्रकाश एक दीर्घ-निःश्वास में भी है जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्तक्रन्दन के पीछे छिपे दुखातिरेक को दीर्घ निःश्वास में बँधे हुए संयम से बांधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा। गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है इसमें सन्देह नहीं। मीरा के हृदय में बैठी हुई नारी और विरहिणी के लिये भावातिरेक सहज ही प्राप्त था, उसके बाह्य राजरानीपन और आन्तरिक साधना में संयम के लिए पर्याप्त अवकाश था। इसके अतिरिक्त वेदना भी आत्मानुभूति थी, अतः उसका 'हेली मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय' सुनकर यदि हमारे हृदय का तार तार उसी ध्वनि को दोहराने लगता है, रोम रोम उसकी वेदना का स्पर्श कर लेता है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। सूर का संयम भावों की कोमलता और भाषा की मधुरता के उपयुक्त ही है, परन्तु कथा इतनी परायी है कि हम बहने की इच्छा मात्र लेकर उसे सुन सकते हैं बहते नहीं और प्रातः स्मरणीय गोस्वामी जी के विनय के पद तो आकाश की मन्दाकिनी कहे जा सकते हैं, हमारी कभी गन्दली कभी स्वच्छ वेगवती सरिता नहीं। मनुष्य की चिरन्तन अपूर्णता का ध्यान कर उनके पूर्ण इष्ट के सन्मुख हमारा मस्तष्क श्रद्धा से,

नम्रता से नत हो जाता है, परन्तु हृदय कातर क्रन्दन नहीं कर उठता है। इसके विपरीत कबीर के रहस्य भरे पद हमारे हृदय को स्पर्श कर सीधे बुद्धि से टकराते हैं। अधिकतर हमें उनके विचार ध्वनित हो उठते हैं, भाव नहीं जो गीत का लक्ष्य है।" महादेवी जी बुद्धिवाद में तनिक भी विश्वास नहीं करती। जगत व्यापार के समाधान के हेतु बुद्धि को अयथेष्ट पाती हैं और इनके निकट भाव पक्ष बुद्धि पक्ष से सर्वथा पृथक हैं। वे प्रेम मार्गी सूफी सन्तों की विचार धारा की कायल हैं। उनका अध्यात्म परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों से भिन्न है। वे ऐसा समझती हैं कि यदि परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को अध्यात्म की संज्ञा दे दी जाए तो उस रूप में काव्य में उनका कोई महत्व नहीं है। उनके निकट भावनाओं का महत्व ही अधिक है। वे कहती हैं—"साधारणतः अन्य व्यक्तियों के समान ही कवि की स्थिति भी प्रत्यक्ष जगत की व्यष्टि और समष्टि दोनों ही में है। एक में वह अपनी पूर्ण इकाई में है और दूसरी में वह अपनी इकाई से बाह्य जगत की इकाई को पूर्ण करता है। उसके अन्तर्जगत का विकास ऐसा होना आवश्यक है जो उसके व्यष्टिगत जीवन का विकास और परिष्कार करता हुआ समष्टिगत जीवन के साथ उसका सामंजस्य स्थापित करदे। मनुष्य के पास इसके लिए केवल दो ही उपाय हैं, बुद्धि का विकास और भावना का परिष्कार। परन्तु केवल बौद्धिक निरूपण जीवन के मूल तत्वों की व्यख्या कर सकता है, उनका परिष्कार नहीं जो जीवन के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए अपेक्षित हैं और केवल भावना जीवन को गति दे सकती है दिशा नहीं।" केवल बौद्धिक निरूपण में उनकी आस्था नहीं। वे और भी स्पष्ट करती हैं—"इस बुद्धिवाद के युग में मनुष्य भावपक्ष की सहायता से अपने जीवन को कसने के लिये कोमल कसौटियाँ क्यों प्रस्तुत करे, भावना की साकारता के लिये अध्यात्म की पीठिका क्यों खोजता फिरे और फिर परोक्ष अध्यात्म को प्रत्यक्ष जगत में क्यों प्रतिष्ठित करे यह

सभी प्रश्न सामयिक हैं। पर इनका उत्तर केवल बुद्धि से दिया जा सकेगा। ऐसा सम्भव नहीं जान पड़ता क्योंकि बुद्धि का प्रत्येक समाधान अपने साथ प्रश्नों की एक बड़ी संख्या उत्पन्न कर लेता है।" उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है। कि महादेवी जी जगत व्यापार के समाधान के लिये बुद्धि को अयथेष्ट पाती हैं और उनके निकट भावपक्ष बुद्धिपक्ष से पृथक है, कम से कम बहुत अंशों में पृथक है। यह बात निश्चय रूप से कही जा सकती है कि वे भाव पक्ष को प्रधानता देने पर भी बुद्धिपक्ष को एक दम वर्जित नहीं समझती हैं। पर बुद्धिपक्ष और भाव पक्ष कितने कितने अनुपात से होने चाहिएँ जिससे की सुदृढ़ सामंजस्य की स्थापना हो सके। इसका वे स्वयं उत्तर देती हैं—

"भावातिरेक का हम अपनी क्रिया शीलता का एक विशिष्ट रूपान्तर मान सकते हैं, जो एक क्षण में हमारे सम्पूर्ण अन्तर्जगत को स्पर्श कर बाह्य जगत में अपनी अभिव्यक्ति के लिए अस्थिर हो उठता है, पर बुद्धि के दिशा निर्देश के अभाव में इस भाव-प्रवेश के लिये अपनी व्यापकता की सीमाएँ खोज लेना कठिन हो जाता है, अतः दोनों का उचित मात्रा में सन्तुलन ही अपेक्षित रहेगा। कवि ही नहीं प्रत्येक कलाकार को अपने व्यष्टिगत जीवन की गहराई, और समष्टिगत चेतना को विस्तार देने वाली अनुभूतियों को भावना के साँचे में ढालना पड़ा है। हमें निष्क्रिय बुद्धिवाद और स्पन्दन-हीन वस्तुवाद के लम्बे पथ को पार कर कदाचित् फिर सम्वेदन रूप सक्रिय भावना में जीवन के परमाणु खोजने होंगे ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारणा है।" वे मानती हैं कि उनकी कविता जिस नवीनता की ओर झुकी है, उसने अस्पष्टता, सूक्ष्म की अभिव्यक्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव, यथार्थ से पलायन वृत्ति आदि बताकर अतीत और वर्तमान से सम्बन्ध हीन एक आकस्मिक आकाश चारी अस्तित्व देने का प्रयत्न किया गया

है पर वे इन आक्षेपों का कुछ उत्तर देने की बजाय इतना कह कर ही सन्तोष प्राप्त कर लेती हैं कि इन आक्षेपों की अभी जीवन में परीक्षा नहीं हो सकी है, अतः ये हमारे मानसिक जगत में विशेष मूल्य रखते हैं।'

उनकी कविता की सम्पूर्ण भावधारा के पीछे एक दुःख भाव रहता है। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि दुख के आवेग अथवा सुख के आवेग द्वारा ही गीति की सृष्टि हुई होगी। बाल्मीकि ऋषि के हृदय से क्रौंच पक्षी की मृत्यु देखकर जो भावधारा बही उसे हम गीत की प्रथम पंक्ति मानते हैं। अथवा इसी प्रकार कोई भी मनोवेग शब्दों के रूप में अवतरित होकर कविता की सृष्टि कर गया होगा। दुख आध्यात्मिक भी हो सकता है अथवा सांसारिक भी। प्राचीन संस्कृत साहित्य में जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ, अध्यात्म दुखवाद का स्वरूप ही अधिकांश रूप में दृष्टिगोचर होता है। यह बात महादेवी जी के सम्बन्ध में भी चरितार्थ है। स्वाभाविक रूप से दुःखवादी का ध्येय, मुक्ति या निर्माण प्राप्त करने की लालसा हो सकता है। महादेवी जी चिर साधिका हैं, जिनकी आत्मा सदैव परोक्ष प्रियतम के वियोग में तड़पती है। इसी कारण उनकी कविता की टेक है—

गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान।

नहीं अब गाया जाता देव!
थकी अंगुली, हैं ढीले तार,
विश्व वीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार!

उन्हें सर्वत्र दुख की ही छाया दिखाई पड़ती है। प्रकृति भी उनके दुख से दुखी हैं—

"वे मुस्काते फूल, नहीं—
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप, नहीं
जिनको आता है बुझ जाना;
वे नीलम के मेघ, नहीं—
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज, नहीं—
जिसने देखी जाने की राह।"

× × × ×

'किसी नक्षत्र लोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात,
ढुलक जो पड़ी ओस की बूंद
तरल मोती सा ले मृदु गात,
नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान!'

पर यह दुख उन्हें बुरा नहीं लगता क्योंकि इसी के द्वारा तो वे 'प्रिय' का अनुभव कर लेती हैं। सर्वत्र उन्हें प्रियतम का प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है। यही कारण है कि उन्हें दुख से प्यार है, प्रकृति के प्रति आकर्षण है—

'तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषादमय,
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय,
खेल खेल थक सोने दो
मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या!'

× × × ×

'जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु बयार !'

तथा किसी प्रकार के वरदान की इच्छा नहीं होती है। वे स्वयं पूछती हैं—

"देव अब वरदान कैसा !
वेध दो मेरा हृदय माला बनूँ प्रतिकूल क्या है।
मैं तुम्हें पहचान लूँ इस कूल तो उसकूल क्या है !
छीन सब मीठे क्षणों को,
इन अथक अन्वेषणों को,
आज लघुता ले मुझे, दोगे निठुर प्रतिदान कैसा !"

सर्वत्र उनके काव्य में दुःखवाद ही विराजमान है। किसी मुक्ति या निर्वाण की भी उन्हें कामना नहीं। वे तो अपनी सत्ता को निःसीम के साथ एकाकार कर देना चाहती हैं जहाँ फिर किसी भेद भाव का प्रश्न ही नहीं रहता। 'अहं ब्रह्मास्मि' के अनुसार वे तो स्वयं ब्रह्ममय होने की पक्ष में हैं—

'जब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव ! अमरता,
खेलेगी मिटने का खेल।'

इस प्रकार 'बुद्ध दर्शन' के साथ 'शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद' का भी प्रभाव महादेवी जी पर स्पष्ट लक्षित होता है। यह मिटने का खेल ही उनके निकट एक मात्र खेल है। प्रकृति की ओर वह बहुत अधिक आकृष्ट हैं पर जैसा कि मैं कई स्थानों पर कह चुका हूँ प्रकृति को वे अनिवार्य रूप से दुखमय देखती हैं—

'देकर सौरभ दान पवन से,
कहते जब मुरझाये फूल,
जिसके पथ में बिछे वही,
क्यों भरता इन आँखों में धूल।

अब इनमें क्या सार, मधुर जब गाती भौंरों की गुंजार,
ममर का रोदन कहता है, कितना निष्ठुर है संसार।"

इसी प्रकार से उनके दुखवाद तथा अज्ञात के प्रति कुतूहल के विषय में और भी कविताएँ उद्धृत की जा सकती हैं। उनके दुखवाद के सम्बन्ध में, जिसकी मैं विस्तृत आलोचना तथा व्याख्या पीछे कई स्थानों पर विस्तार पूर्वक कर चुका हूँ, बहुत सी भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। अतः स्पष्ट जानकारी तथा भ्रमों के निवारण के हेतु स्वयं महादेवी जी के विचारों पर ही दृष्टिपात करना अधिक उत्तम एवं श्रेयस्कर होगा। वे लिखती हैं—"अपने दुःखवाद के भी सम्बन्ध में दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुख के धूप छाँही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों अच्छा लगता है बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिये भी किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर दुख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है। इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय होगया था। अवश्य ही उस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा परन्तु आजतक उसमें

पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं जिनसे मैं उसे पहिचानने में भूल नहीं कर पाती। दुख मेरे निकट ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुःख सब को बाँट कर—विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है। मुझे दुख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अवच्छिन्न बंधन में बांध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है। अपने भावों का सच्चा चित्र अंकित करने में मुझे प्रायः असफलता ही मिली है, परन्तु मेरा विश्वास है कि असफलता और सफलता की सीढ़ियों द्वारा ही मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है। इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर 'आँसू की माला' ही गूँथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पड़ा रहेगा। परिवर्तन का ही दूसरा नाम जीवन है। जिस प्रकार जीवन के ऊषाकाल में मेरे सुखों का उपहास करती हुई विश्व के कण कण से एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार सन्ध्याकाल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दबकर कातर, क्रन्दन कर उठता है तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञात पूर्व सुख मुस्करा पड़ेगा। ऐसा ही मेरा स्वप्न है।"

महादेवी जी के दुखवाद के काव्य के पीछे यही दार्शनिक चिन्तन तथा अज्ञात-प्रेरणा है जिनके द्वारा वे सर्वत्र विश्व में दुख

को अनुभव करते हुए भी सुख की कामना करती हैं। इस प्रकार का दुखवादी दर्शन भारत के लिए कोई पूर्णतः नवीन वस्तु नहीं है प्रत्युत आदि काल से ही इस प्रकार के विचार मिलते चले आते हैं। पर महादेवी जी के दुःख वाद और प्राचीन काल के दुःखवाद में एक बहुत बड़ा अन्तर है और वह यह कि महादेवी जी दुखवाद के कारण प्राचीन काल के दुख वादियों की भाँति प्रकृति से और जगत-व्यापार से मूँह नहीं फेर लेतीं प्रत्युत वे उनकी ओर और भी प्रबलता से आकृष्ट होती हैं। जिस प्रकार से उन्होंने दुखवाद को अपने काव्य में रखा है वह सराहनीय है तथा उसके द्वारा उनके काव्य में अद्भुत मादकता आ गई है। इच्छा होती है कि महादेवी जी को आँसुओं की रानी—महादेवी जी कहकर पुकारा जाए। उनके काव्य में प्रवाहित पीड़ाधारा में आन्तरिक वृत्ति के देर तक निमग्न होते ही एक प्रकार की मनोव्यथा का अनुभव पाठक को होने लगता है। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर ?
सकुच सलज खिलती शेफाली,
अलस मौल श्री डाली डाली,
बुनते नव प्रवाल कुंजों में
रजत श्याम तारों से जाली
शिथिल मधुपवन गिन गिन मधुकण
हर सिंगार झरते हैं झर झर !
आज नयन आते क्यों भर भर ?"

सम्पूर्ण यौवन प्रतीक्षा में ही व्यतीत हो गया, मन के सम्पूर्ण अरमान आँसू बनकर ढुलक गये तथा समस्त जीवन सूनेपन में परिवर्तित हो गया। अन्तर भर उठता है, शरीर सिहर उठता है और आँसू की बूंदें बरौनिये में उलझ कर रह जाती हैं। पर

इससे लाभ ? सब ही तो व्यर्थ है। सब सार हीन है। विरह ही केवल सत्य है, प्रतीक्षा ही केवल सत्य है तथा व्यथा ही केवल सत्य है। प्रेम के चित्रण में कौन कितना गहरा चला गया है यह काव्य में उसकी अपनी अन्तर्दशाओं और शरीर पर उनकी प्रतिक्रियाओं के चित्रण से जाना जा सकता है। आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यक्तिगत सुख दुख से सम्बन्धित भावों के विश्लेषण की ओर बहुत ही अधिक ध्यान दिया गया है। महादेवी जी अपने मनोभावों में पूर्ण रूप से डूबने के साथ साथ ही उनके कायिक प्रतिवर्तनों की सजीव मूर्तियाँ भी अत्यन्त कौशल से प्रस्तुत करती हैं। प्रेमावस्था का सर्व प्रथम लक्षण है अन्तर में एक प्रकार की कोमलता का जाग्रत हो जाना। जहाँ आकर्षण ने जन्म लिया नहीं कि व्यक्ति मधुरता मिश्रित शीतलता का अनुभव करने लगता है। उस समय एक से एक कोमल, एक से एक मधुर, एक से एक काव्यमयी भावनाएँ न जाने अन्तः संज्ञा के किस स्तर के उदगम से उमड़ कर ओठों तक आती हैं जिसमें से कुछ व्यक्त हो जाती हैं और कुछ मूक रहकर प्रेमास्पद की इंगित को निहारती रहती हैं। उस समय तो केवल यही इच्छा होती है कि हमारे पास जो कुछ भी हैं वह अपने 'प्रिय' के चरणों पर न्यौछावर करदें। किसी प्रकार हम उसकी केवल एक स्निग्ध चितवन और मधुर मुस्कान के अधिकारी हो सकें। उस समय तो जी चाहता है कि 'प्रिय' के लिये सब कुछ त्याग दें। उसके अभाव में सब कुछ एक दम नीरस सा, फीकाफीका सा प्रतीत होने लगता है। उसे प्रसन्न देखने की इच्छा अनेकों रूप धारण करती है। उनमें से एक है अपने शरीर को सुन्दर एवम् आकर्षक वेश भूषा से युक्त कर लेना अर्थात् सौन्दर्य प्रसाधण। शृंगार, जो मन के उत्साह और आल्हाद का सूचक है, अपने ही को नहीं दूसरे को भी प्रसन्न देखने तथा करने के लिए भी किया जाता है। महादेवी जी का शृंगार

अपने परोक्ष प्रियतम के कारण हैं। सर्व प्रथम महादेवी जी का एक चित्र देखिए जिसमें उन्होंने सर्व प्रथम प्रणयानुभूति के सम्बन्ध में अपने भाव प्रकट किये हैं—

"सजनि वे पद सुकुमार—
तरंगों से द्रुत पद सुकुमार!
सीखते क्यों चंचल गतिभूल,
भरे मेघों की धीमी चाल?
तृषित कन-कन को क्यों अलि चूम,
अरुण आभा सी देते ढाल?
मुकुर से तेरे प्राण!
विश्व की निधि से तेरे प्राण—
छिपाये से फिरते क्यों आज,
किसी मधुमय पीड़ा का न्यास?
सजल चितवन में क्यों है हास,
अधर में क्यों सस्मित निःश्वास?"

—'रश्मि'

उनकी मीठी अनुभूति के पश्चात् अब हम उनके लौकिक तथा आध्यात्मिक शृंगार के दो पद क्रमशः देखेंगे—

(१) "रंजित करदे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर ला रजनीगंधा का पराग;
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कवरी सँवार।
लहराती आती मधुर ब्यार!"

(२) "शशि के दर्पण में देख देख,
मैंने सुलझाये तिमिर केश,
गूँथे चुन तारक-पारिजात,
अवगुंठन कर किरणें अशेष;
क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृंगार नहीं!"

—'सान्ध्यगीत'

पर चिन्तन की दृष्टि से महादेवी जी को एकान्त, तम और घोर निस्तब्धता अत्यन्त प्रिय है। किसी भी तन्मयता के हेतु इन तीनों स्थितियों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा देखने में आता है कि वे किसी साधना में निमग्न हैं तथा कोलाहल द्वारा जिसके भंग हो जाने का भय उन्हें सदैव बना रहता है। साधना के प्रकट होने पर उसका प्रभाव क्षीण हो जाता है तथा सच्चा साधक यह चाहता भी नहीं कि उसकी साधना का विज्ञापन हो। अतः इसके सम्बन्ध में उनसे कुछ जानना कठिन ही है। हो सकता है कि एकान्त के क्षणों में वे कभी-कभी उस तल्लीनता का अनुभव कर लेती हों जो जीव का परम लक्ष्य और सिद्धि है। इसी से तो उनकी इच्छा होती है कि—

'इस असीम तम में मिलकर
मुझको पलभर सो जाने दो।'

× × ×

आ मेरी चिर मिलन यामिनी!
तममयि! घिर आ धीरे धीरे!'

इसका कारण भी स्पष्ट है—

'करुणामय को भाता है
तम के परदे में आना।'

क्योंकि उन्होंने अनुभव कर लिया है कि—

'सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा, छाया सा आता ?

तथा—

मेरे नीरव मानस में
वे धीरे धीरे आये !'

और कभी-कभी तो तल्लीनता तथा अनुभूति इतनी बढ़ जाती है कि वे अपने को प्रियतम से गिरा पाती हैं। थोड़ी देर के लिए उनकी इन्द्रियों को भी तृप्ति प्राप्त हो जाती है—

"तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है ?
तब चमक जो लोचनों को मूँदता,
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है ?"

इस प्रकार महादेवी जी के काव्य में कुतूहल भावना, पीड़ा की अनुभूति, विरह—व्यथा, दार्शनिक चिन्तन, साधना तथा आत्म-तोष इत्यादि भावधाराएँ देखने को प्राप्त होती हैं। यद्यपि उनके गीतमुक्तक हैं परन्तु फिर भी उनके मूल में एक क्षीण सी कथाधारा बहती है। महादेवी जी का प्रत्येक गीत अपने में ही पूर्ण होते हुए भी एक विस्तृत भाव-माला का पुष्प है। उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में दो बातें जानना आवश्यक हैं। प्रथम तो उनके गीत उज्ज्वल तथा पुनीत प्रेम के गीत हैं, अतः उन पर ध्यान देने से पूर्व फ्रायड (Freud) की अतृप्त काम-प्रेरणा के विचार को मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए। दूसरी बात यह कि उनके गीत पूर्ण मुक्तक होते हुए भी एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा उनके पीछे भावधारा में एक तारतम्य है। 'नीहार' में आकर्षण और कुतूहल तथा साथ ही साथ पीड़ा की अनुभूति, 'रश्मि' में दार्शनिक

सिद्धान्तों का विवेचन, 'नीरजा' में 'विरह-व्यथा' 'सान्ध्यगीत' में आत्मतोष और 'दीपशिखा' में साधना की गति का प्रतिपादन मिलता है। अतः सभी गीतों को एक साथ पढ़कर उनकी वास्तविक कल्पना भूमि और प्रणयधारा को हृदयंगम कर लेना चाहिए। एक बात उनके प्रणय निवेदन तथा दार्शनिक चिन्तन के सम्बन्ध में और भी कहना श्रेयस्कर होगी कि संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, हिन्दी इत्यादि भाषाओं के काव्य में कहीं न कहीं शृङ्गारिक अथवा प्रणयानुभूति के स्थलों पर असंमय अवश्य ही मिल जायेगा परन्तु महादेवी जी ने सर्वत्र, अपने काव्य में ही नहीं जीवन में भी, पूर्णसंयम से काम लिया है। महात्मा तुलसीदास जी ही पिछले सम्पूर्ण हिन्दी काव्य में ऐसे कवि निकलते हैं जो प्रेम प्रसंगों का निर्वाह संयम के साथ कर गए। प्रत्येक मनोविकार में आवेश तथा आवेग की मात्रा प्रायः एक सी ही रहती है। जीवन को संतुलित करने के लिए आवश्यक हो जाता है कि हम उनको नियंत्रित करके उनसे ठीक-ठीक काम लें। यही नियन्त्रण अथवा संयम काव्य क्षेत्र में तो और भी आवश्यक है। किसी भी मनोवेग का चित्रण जब पूर्ण संयम के साथ किया जाता है तब से तो यथार्थवाद के आवरण में पूरी नग्नता कविता में प्रविष्ट हो गई है। ऐसी परिस्थितियों में जीवित रहकर और केवल प्रणय पर निरन्तर लिखने पर भी महादेवी जी अपने अन्तर की जिस सात्विकता अथवा संयम-वृत्ति का परिचय दिया है वह उनके व्यक्तित्व की महत्ता की परिचायक ही नहीं, वरन् काव्य गरिमा का आधार स्तम्भ भी है। इस तरह महादेवी जी प्रणय लेखिका होते हुए भी संयम की डोरियों में बंधीं हैं। क्या प्रणय-निवेदन और क्या ही दार्शनिक चिन्तन सभी में उनका काव्य अमर है। दोनों भावधाराओं का संतुलित समन्वय तथा मधुर भाषा का प्रयोग उनके काव्य के विरल गुण हैं। श्री मन्मथनाथ गुप्त जी के शब्दों में मैं केवल इतना कहकर समाप्त करूँगा कि महादेवी ने जिस युग में

बन गया है। यह दुख की धारा भारतीय साहित्य में पहले से ही मिलती चली आती है। कबीरदास जी कहते हैं—

'सुखिया सब संसार है खावे और सोवे।
दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे॥'

उधर मीरा को भी विरह ज्वाला जलाये डालती है—

"जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होइ।
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मीत न कोइ,
राति दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिनि मोइ॥
ऐसी सूरत या जग माँही, फेरि न देखी सोइ।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आनंद होय॥"

किसी को अपने प्रिय के वियोग का दुख है तथा किसी को भौतिक जगत के कोलाहल से घबराहट होती है। पर इस दुख के आवरण में सुख की एक झलक, एक आशा अवश्य रहती है जो सदैव हमें आगे बढ़ने को—चाहे साधना के पथ पर और चाहे भौतिक प्रगति पथ पर—प्रेरणा देती है। इसीलिए पन्त जी लिखते हैं—

"जग पीड़ित रे अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से
मानव जग में बँट जावे सुख
दुख से औ दुख सुख से।"

इसी सुख दुख के समन्वय में जीवन की व्याख्या छिपी हुई है। वेदना के बाद मिलन और मिलन के पश्चात् विरह हमारे जीवन सूत्र को गूँथते हैं। काव्य वास्तव में जीवन की व्याख्या है। देवी जी के जीवन को विषाद की काली रेखाओं ने घेर रखा है वस्तुतः उनके काव्य में दुख के चित्र ही अधिक हैं। पर देवीजी के दुख में मीरा के दुख की भाँति एक विशेष प्रकार का रहस्य है।

प्रसाद जी के आँसू का दुख रहस्यमय है वैसे ही देवी जी की साधना का दुख भी रहस्यमय है—

"लहरों में प्यास भरी है
है भँवर मात्र भी खाली
मानस का सब रस पीकर
ढुलका दी तुमने प्याली'

× × ×

'मेरे क्रन्दन में बजती
क्या वीणा ?—जो सुनते हो
धागों से इन आँसू के
निज करुण-पट बुनते हो।' —प्रसाद

× × ×

"मैं बनी मधुमास आली।
सजल रोमों में बिछे हैं पाँवड़े मधुस्नात से;
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से!
क्या न अब प्रिय की बजेगी
मुरलिका मधुराग वाली ?" —महादेवी

दोनों के दुख के पीछे किसी अज्ञात के प्रति संकेत हैं और यही 'अज्ञात के प्रति संकेत' रहस्यवाद की सृष्टि करता है। करुणा और वेदना की साधना से ही मानव जीवन के सत्य की उपलब्धि संभव हो सकती है। संसार के प्राणियों की दुखानुभूति ने ही सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनाया तथा ईसा ने भी मानव जाति को दुखों से परित्राण दिलाने के हेतु ही अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया। जलन और वेदना में ही शाँति निहित है—

'दीपसी जलती न जो, तो—
सजलता रहती कहाँ ?'

मीरा के जीवन में भी चिरन्तन दुख है पर महादेवी जी का दुख, उस अज्ञात के विरह के कारण रहस्यता लिये हुए है। मीरा जी का दुख यद्यपि अधिक आकुलता लिये हुए है पर फिर भी उसमें महादेवी जी के दुख की भाँति रहस्यात्मकता नहीं है क्योंकि मीरा का दुख स्पष्ट तथा सगुण प्राणी के कारण है। मीरा का प्रियतम गिरधर गोपाल है, अन्य नहीं, पर देवी जी का प्रियतम तो निर्गुण है। वास्तव में महादेवी जी मीरा की भाँति रूप की आराधिका नहीं प्रत्युत अरूप की साधिका हैं। साधना दोनों कवयित्रियों की भक्ति के मूल में है पर महादेवी जी की साधना सर्वत्र रहस्यपूर्ण है, क्योंकि उनका लक्ष्य तो अज्ञात है, जिसकी खोज अत्यन्त दुर्लभ है। महादेवी जी की साधना उस परोक्ष प्रियतम के लिए है जिसका कोई आकार नहीं तथा कोई गुण विशेष नहीं, अतः इन्द्रियों के रमने की बात तो उठती ही नहीं। उनका प्रियतम तो इन्द्रियों द्वारा पाने की वस्तु नहीं, उसे तो केवल अनुभूति द्वारा ही विचारा जा सकता है। वास्तव में मीरा की अपेक्षा महादेवी जी का कार्य अधिक कठिन है। मीरा की प्रेम भावना तो मर्यादा तथा लोक लाज को छाँड़ि के अपने साँवरे-श्रीकृष्ण के लिये छलक पड़ती है—

"घुघुरू बाँध मीरा नाँची रे, पग घुघुरू।
लोग कहैं मीरा हो गई बाबरी, सास कहै कुल नासी रे॥
ज़हर का प्याला राना जी ने भेजा,
पीवत मीराँ हाँसी रे। पग०।
मैं तो अपने नारायण की होगई दासी रे। पग०।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बेग मिलो अविनासी रे॥"

देवी जी का प्रेम नैतिक संयम के साथ दार्शनिक चिन्तन लिये हुए है—

"चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन कन से फूट फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान !
फैला अपने मृदु स्वप्न पंख,
उड़ गई नींद-निशि क्षितिज पार,
अधखुले दृगों के कंज-कोष—
पर छाया विस्मृति का खुमार;
रंग रहा हृदय ले अश्रु-हास,
यह चतुर चितेरा सुधि विहान !"

देवी जी दार्शनिक हैं तथा सदैव चिन्तन में निमग्न रहती हैं। वे तो अरूप ब्रह्म की साधिका हैं। अपने प्राणों का दीप जलाकर सदैव प्रिय का पथ जोहती रहती हैं। उनको किसी प्रकार की कामना नहीं है। साधना से ही उन्हें तो तुष्टि हो जाती है। उन्हें तो अमरता की भी चाह नहीं। उनका लक्ष्य तो पूर्ण निराकार में खो जाना है—

'जब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव ! अमरता,
खेलेगी मिटने का खेल !'

सूक्ष्म ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित करना ही उनका एक मात्र ध्येय है। यही उनका रहस्यवाद है। मीरा के बारे में भी कहा जाता है कि वे अन्त में द्वारकाधीश रणछोड़ जी की प्रतिमा में समा गई थीं। मीरा जी पर सगुणोपासक भक्ति तथा निर्गुण पंथी संतों—दोनों का ही प्रभाव परिलक्षित होता है। मीरा ने अपने गोपाल को परमब्रह्म माना है और निर्गुणवाद की स्थापना की है। मीरा भी परमब्रह्म में लीन होने को अत्यन्त आतुर हैं। वे लिखती हैं—

"सगुरा सूरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती।
मगन भया मेरा मन सुख में गोविन्द का गुणगाती ॥
साहब पाया आदि अनादि, नातर भव में जाती।
मीरा कहे इक आस आपकी, औराँ सूं सकुचाती ॥"

—(पद १६७-)

इस प्रकार मीरा की आत्मा भी संसार की प्राचीरों को लांघती हुई अपने प्रियतम के पास पहुँचने को आतुर है जहाँ वे जन्म मरण से छुटकारा पालेंगी। महादेवी जी की ही भाँति उन्हें भी अमर पद पाने की कामना नहीं, स्वैस्व में लीन होना ही उनका ध्येय है—

"मेरो मन लागो हरिसूँ, अब न रहूँगी अटकी।
गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्ही ग्यान की गुटकी ॥
चोट लगी निज नाम हरी का, म्हाँरे हिवड़े खटकी।
मोती माणिक परत न पहिरूँ, मैं कबकी नटकी ॥
गेणो तो म्हारे माला दोवड़ी, और चंदन की कुटकी।
राज कुलकी लाज गमाई, साधां के संग मैं भटकी ॥
नित उठ हरिजी के मंदिर जास्यां, नाच्यां देदे चुटकी।
भाग खुल्यो म्हाँरो साध संगत सूं, साँवरिया की बटकी ॥
जेठ बहू की काण न मानूँ, घूंघट पड़ गई पुटकी।
परम गुराँ के सरण में रहस्यां, परणाम करां लुटकी ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूँ छुटकी !"

महादेवी जी अपना प्रेम दार्शनिक शब्दावली में व्यक्त करती हैं। असीम तथा ससीम जैसे शब्दों से वह अपना मधुर सम्बन्ध स्थापित करती हैं। पर मीरा की ही भाँति उनका प्रेम भी उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में सुस्पष्ट रूप से व्यंजित हुआ है—

'मूक प्रणय से मधुर कथा से,
स्वप्न लोक कैसे आह्वान,

वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान।
चल चितवन के दूत सुना
उनके पल में रहस्य की बात;
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गए क्या क्या उत्पात!
जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले।'

आध्यात्मिक प्रेम की मूल चेतना भी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार रति ही मानी जाती है। मीरा की रति-भावना में तो किसी प्रकार का दुराव नहीं। स्पष्ट ही उनकी भक्ति माधुर्य-भाव की है। मीरा स्पष्ट रूप से गोपाल के प्रति अपना सम्बन्ध प्रकट करती हैं। उनका एकान्त प्रेम उन्हें अपने 'प्रियतम' से किसी भी प्रकार अलग नहीं होने देता है—

"हेली, मो सों हरि बिन रह्यौ न जाय।
सासू लड़ौ री, सजनी, नणद खिजौरी
पीव किन रहौ री रिसाय।
चौकी भी मैलौ, सजनी पहरा भी मैलौ॥
ताला क्यूँ न जड़ाय।
पूरव जनम की प्रीति हमारी सजनी,
सो क्यूँ रहै री लुकाय।
मीरां के तौ, सजनी, राम सनेही,
और न आवै म्हारी दाय।"

इसी तरह महादेवी जी तथा मीरा दोनों की अभिव्यक्ति में बड़ा साम्य दीख पड़ता है। महादेवी जी की भावाभिव्यक्ति पर

भी मीरा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। उदाहरणार्थ मीरा लिखती है—

"सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पन्थ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।"
—मीरा

और इसी प्रकार महादेवी जी भी लिखती हैं—

'पथ देख-बितादी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं।
तम ने धोया नभ पंथ
सुवासित हिम जल से,
सूने आँगन में दीप
जला दिए झिलमिल से;
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित, जानी नहीं!
मैं प्रिय पहचानी नहीं!'

मीरा की विरह वेदना तीव्र हो गई है कि वे पतियाँ लिखते भी काँप-काँप जाती हैं और कहती हैं—

'पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिखि ही न जाइ!
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदो रहो बराई।
बात कहूँ मोहि बात न आवै, नैन रहे झराई॥
किस विधि चरण कमल मैं गहिहौं, सबहि अग थराई।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, सब ही दुख बिसराई॥'

इसी प्रकार की भावना महादेवी जी में भी पाई जाती है। वे लिखती हैं—

'कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती।
दृग जल की सित मसि है अक्षय
मसि प्याली झरने तारक द्वय

पल पल के उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख सांसों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुध पन में—
लिखती हूँ कुछ कुछ लिख जाती।'

और आगे चलकर मीरा अपनी भावाकुलता में पूछ बैठती हैं—

'शूली ऊपर सेज पिया की
किस विधि मिलना होय।'

पर महादेवी जी तो अपने दार्शनिक चिन्तन द्वारा इस निष्कर्ष पर ही पहुँच जाती हैं—

'क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय बिंधवाना।'

यही है मीरा का दर्दवाद और देवी जी का दुखवाद। पर यह बात अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी कि मीरा की सी तन्मयता, बेसुधी और निराकरण प्रेम महादेवी जी में प्राप्त नहीं है। मीरा की आकुलता उबलते हुए दूध की भाँति है। उनकी आकुलता पर महाप्रभु चैतन्य की कीर्त्तन प्रणाली का प्रभाव पड़ा है। चन्द्रवली पाण्डेय जी का कथन है 'मीरा की पूजा पद्धति कुछ बल्लभकुल से भले ही प्रभावित हुई हो, किन्तु उनकी कीर्त्तन-प्रणाली तो सर्वथा गौराङ्ग महाप्रभु के ही अनुकूल थी और इनकी इह लीला की समाप्ति में बहुत कुछ उन्हीं के ढंग पर हुई।' मीरा के युग में दक्षिण भारत से फूटा हुआ प्रेम-भक्ति का स्रोत समूचे उत्तर भारत को पलावित कर चुका था। बंगाल में चण्डीदास और चैतन्य महाप्रभु, मिथिला में विद्यापति ठाकुर, ब्रज में अष्टछाप कवि तथा गुजरात में नरसी महता अपनी रचनाओं से उसे सरस, स्निग्ध तथा उज्ज्वल बना चुके थे। पर महादेवी जी के युग में रीति भावना पर नैतिक बन्धन लगने लगे थे क्योंकि रीतिकाल में इस भावना का बहुत ही ह्रास हुआ था। यही कारण है महादेवी जी के काव्य में मीरा

की सी तन्मयता तथा आकुलता नहीं देखने को मिलती। महादेवी जी ने तो अपने सम्पूर्ण जीवन की विरह ज्वाल में गल-गल कर आहुति देना ही सीखा है। उनमें मीरा की भाँति आकुलता नहीं क्योंकि एक तो उन्हें नैतिक बन्धन घेरे हुए हैं तथा दूसरे उनका प्रणय अज्ञात के प्रति है। पर फिर भी उनके भावों में अनिश्चितता नहीं है। उन्हें अपने प्रियतम का आभास मिल चुका है। वे लिखती हैं—

'हे मेरे चिर सुन्दर अपने !
भेज रही हूँ श्वासें क्षण क्षण,
सुभग मिटा देंगी पथ से यह तेरे मृदु चरणों का अंकन !'

महादेवी जी ने अपनी प्रेम-भावना को दूसरी वस्तुओं पर आरोपित करके ही अधिक व्यक्त किया है। एक पुष्प को वर्ण्य विषय बनाकर वे लिखती हैं—

'चाँदनी का शृंगार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर ?
जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार ?'

उधर मीरा अपने को कृष्ण की गोपिका समझती थी और उसी भाव से कृष्ण की उपासना भी करती थी। मीरा की सी विरह तड़पन, कसक, वेदना अन्य किसी कवि में देखने को नहीं मिलती मीरा जैसी उत्कण्ठा अन्य किसी साधक में नहीं है। वे अपने प्रिय जोगी को देखकर अपना वेश भी जोगी का सा कर लेती हैं। जो उनके जोगी को सुहावता है वही वही मीरा को भी करना भला लगता है—

'जोई भेखाँ म्हारो साहिब रीझै, सोई भेख धारूँगा।'

वे तो अपने साहिब के हेतु घर-घर अलख जगाने को भी तैयार हैं—

(१) 'तेरे खातिर जोग लियो है, घर घर अलख जगाय।'

(२) तेरे कारण बन बन डोलूँ, कर जोगण को वेश।'

पर मीरा को तो केवल दुख इस बात का है कि उनकी वेदना का आभास किसी को भी नहीं है और लोग उनके सम्बन्ध में न जाने क्या-क्या बातें करते हैं और फिर उधर प्रिय की दशा भी ऐसी है कि—

'तूँ नागर नन्द कुमार, तोसों लाग्यो नेहरा!
मुरली तेरी मन हरयो, बिसरयो ग्रिह व्योहार।
जब तै स्रवननि धुनिपरी, ग्रिह आँगना न सुहाइ॥'

इसी प्रकार महादेवी जी भी अपने प्रियतम के लिये शृंगार करती हुई दीखती है पर महादेवी जी का वेश मीरा के प्रियतम के वेश की भाँति नहीं है क्योंकि महादेवी जी के प्रियतम की तो कोई वेष भूषा ही नहीं है। महादेवी जी तो अज्ञात, अरुप तथा निर्गुण की प्रणयिनी हैं अतः उनका वेष तो प्राकृतिक सौन्दर्य के अनुकूल ही है। उनका (महादेवी जी का) लौकिक शृंगार इस प्रकार है—

'रंजित करदे यह शिथिल चरण
ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर
ला रजनी गंधा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से,
अलि दे मेरी कवरी संवार।'

पर उनको अपने केवल लौकिक शृंगार से ही तृप्ति नहीं होती है। उनको तो अपनी साधना के अनुकूल आध्यात्मिक शृंगार भी करना है—

'शशि के दर्पण में देख देख
मैंने सुलझाये तिमिर केश
गूँथे चुन तारक परिजात
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष
क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृंगार नहीं।'

इस प्रकार महादेवी जी और मीरा के काव्य में बहुत कुछ साम्य है। आचार्य नन्द दुलारे जी कहते हैं—"मीरा और महादेवी के काव्य का आधार बहुत अंशों में एक सा है किन्तु ये दोनों दो युगों की सृष्टियाँ हैं। अपने अपने युगों के अनुरूप ही इन दोनों का काव्य व्यक्तित्व है। मीरा का काव्य नैसर्गिक भावोप्रेम का नमूना है। वह अलौकिक प्रेम और विरह से भीगे हुए हृदय का उद्गार है। इसमें काव्य कला की बारीकियाँ नहीं मिलतीं, मूर्तिमान विरह की तड़प और मिलन के स्पन्दन सुन पड़ते हैं। प्रकृति और कल्पना की सहायता से भावों का चित्रण वे नहीं करने बैठीं। मध्ययुग के सभी समुन्नत कवियों की यह अप्रतिम नैसर्गिकता उनकी अपनी चीज़ है। उस तरह की चीज आज इस बौद्धिक विकास के युग में ढूँढ़ना दोनों युगों का अपमान करना है। महादेवी जी में भी अनुभूति की सचाई है, और गहराई है किन्तु यह काव्य-कला में सजकर आई है, मीरा अपने प्रियतम की खोज में राजमहल छोड़ कर निकल आई थीं। और उन्हें गृह-वन पुकारती फिरतीं थी। उनका काव्य इस प्रकार साकार है। महादेवी जी की ध्वनि अधिक धीमी और अधिक सभ्य होनी समुचित ही है। विशुद्ध काव्य दृष्टि से महादेवी मीरा की ऊँचाई पर कम ही पहुँचती हैं। काव्य कला से सज्जित होने पर भी उनकी कविता में तीव्र नैसर्गिक उन्मेष नहीं। उक्त भावना शिशु के लिए मुक्त आकाश में पक्षी की भाँति उड़कर चराचर जगत की जो सौन्दर्य—सामग्री, जो सहज आस्वाद्य फल, कविगण प्रस्तुत किया करते हैं, महादेवी जी में उसकी कमी

है। भावना-शिशु का प्यार उन्हें अपना नीड़ छोड़ने नहीं देता। फलतः उनके काव्य में प्राकृतिक उपमानों का वैविध्य नहीं हैं। उनकी कविता कुछ अंशों में कोरी भावना—निष्ठा से, जो व्यक्ति-गत है, विजड़ित हैं।" प्रायः सभी उच्चकोटि के रहस्यवादियों में हृदय के सूक्ष्मतम् भावों की व्यञ्जना के लिए प्राकृतिक दृश्यों तथा उपमानों और कल्पनाओं का सहारा लेने की परम्परा सी चली आती है। मीरा की भक्ति भावना भी अभिव्यंजना के हेतु इन्हीं प्राकृतिक उपमानों की सहायता लेती प्रतीत होती है। हृदय के सूक्ष्म की अभिव्यक्ति के लिए अन्य कवियों की अपेक्षा रहस्यवादी कवि को प्रकृति की उसकी प्रत्येक भाव भंगी, रूपरंग, गति, अनु-गति की—और भी अधिक परख करनी पड़ती है, अन्यथा उसका काम ही नहीं चल सकता। प्रकृति में प्रणय भावनाओं का आरोप दोनों ने किया है और यह आरोपित भावना दोनों के उद्दीपन की सामग्री बन गई है, परन्तु मीरा में वह हर्ष और वेदना दोनों को जगाती है जबकि महादेवी जी में अधिकांश वेदना को ही। मीरा ऋतु के आगमन पर विशेष प्रकार की हृदय भावना का अनुभव करती हैं। उन्हें सब ऋतुएँ सुहावनी प्रतीत होती हैं। सावन में उन्हें 'पी' के आगमन की भनक सुनाई पड़ती है और होली में उनके मानस में प्रीत की होली मचलने लगती है। महादेवी जी दुख प्रधान कवयित्री हैं, अतः उनके प्रकृति चित्रणों में उनकी व्यक्ति-भावना ही अधिक निखरी हैं। वर्षा ऋतु दोनों कवयित्रियों को विशेष प्रिय है। मीरा कहती हैं—

'बरसै बदरिया सावन की,
सावन की मन भावन की।
सावन में उमग्यौ मेरो मनवा,
भनक सुनी हरि आवन की॥'

और महादेवी जी लिखती हैं—

'मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय
आज हो रही कैसी उलझन,
रोम रोम में होता री सखि
एक नया उर का सा स्पन्दन।
पुलकों से बन फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं!'

प्रकृति में महादेवी जी की अपनी ही नारी भावनाएँ व्यक्त हो उठी हैं। मानवी करण की प्रवृत्ति महादेवी जी की अपनी विशेषता है। जैसे—

'धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त रजनी!
तारक मय नव वेणी बन्धन,
शीश फूल शशि का कर नूतन,
रश्मि बलय, सितघन अवगुन्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी
पुलकती आ बसन्त रजनी!'

मीरा की भाँति महादेवी जी को प्रकृति केवल उद्दीप्त ही नहीं करती वरन् उनके दुख में दुखी और सुख में सुखी होकर एक चिरन्तन सहचरी का कार्य सम्पादन करती है। मीरा की भाँति वैसे महादेवी जी को भी प्रकृति किसी का—अर्थात् उनके 'प्रिय' का आभास तो कराती ही है। दो उदाहरण देखिए—

'लाये सन्देश कौन नये घन
अम्बर गर्वित हो गया नत
चिर स्पन्दन हृदय में उसके
उमड़े री पुलकों के सावन!'

चौंकी निद्रित रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत के कङ्कण !

× × ×

मोती से उगले जल कण से
छाये मेरे विस्मित लोचन !' —महादेवी

× × ×

'सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज !
म्हेल चढ़ि-चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी
कब आवै महाराज !
मोर पपइया बोले
कोयल मधुरे साज।
उमग्यौ इन्द्र चहूँ दिसि बरसै
दामिण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया
इन्द्र मिलण के काज।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
बेगि मिलो महाराज।' —मीरा

जहाँ तक प्रकृति चित्रण का प्रश्न है, प्रत्येक अच्छे काव्य में किसी न किसी रूप में इसे हम पाते हैं। यूँ भी कहा जा सकता है कि प्रत्येक श्रेष्ठ कवि किसी न किसी रूप में प्रकृति से अवश्य ही प्रभावित होता है और उसी प्रभावावेश में प्रकृति चित्रण की ओर उन्मुख होता है। मीरा ने भी प्रकृति को देखकर उसका अपनी मनोदशा के अनुकूल चित्रण किया है। मीरा का बारह मासा इसके लिए प्रसिद्ध है—

'पिया मोहि दरसण दीजै हो।
बेर बेर मैं टेरहूँ, अहे क्रिपा कीजै हो, ॥ टेक ॥

जेठ महीने जल बिना पंछी दुख होई, हो।
मोर असाढ़ाँ कुटलहे, धन चात्रग सोई, हो।
सावण में झड़ लागियौ, सखि तीजा खेलें हो।
भाद रवै नदियाँ बहै, दूरी जिन मेलै हो।
सीप स्वाति ही झेलती, आ सोजाँ सोई, हो।
देव काली में पूज हे, मेरे तुम होइ, हो।
मगसर ठंड बहुत ही पड़ै, मोहि बेगि सम्हालो, हो।
पोस मही पाला घणा, अब ही तुम न्हालो, हो।
महाभही वसंत पंचमी, फागो सब गावें, हो।
फागुण फागा खेल हैं, वणराइ जरावै, हो।
चैत चित्त में ऊपजी, दरसण तुम दीजै, हो।
वैसाख वणराइ फूलवै, कोइल कुर लीजै, हो।
काग उड़ावत दिन गया, बूझूँ पिंडत जोसी, हो।
मीरा विरहिणी व्याकुली, दरसण कब होगी, हो।'

इस प्रकार का प्रकृति चित्रण महादेवी के काव्य में नहीं मिलता। महादेवी जी ने विशुद्ध प्राकृतिक चित्रण नहीं के बराबर ही किए हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है उनके प्राकृतिक चित्रण उनके अपने दुख से दब गये हैं और प्राकृतिक चित्रणों के स्थान पर वे केवल व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति के साधन मात्र बनकर रह गये हैं। पर फिर भी एक दो विशुद्ध प्राकृतिक चित्रण महादेवी जी ने लिए हैं। उनका 'हिमालय' का चित्रण बहुत ही सजीव है—

"तू भू के प्राणों का शतदल!
सित क्षीर-फेन हीरक रज से
जो हुए चाँदनी में निर्मित
पारद की रेखाओं में चिर
चाँदी के रंगों से चित्रित

खुले रहे दलों पर दल झलमल
सीपी से नीलम से द्युतिमय
कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल
कुछ सुख चंचल कुछ दुख मंथर
फैले तम से कुछ तूल-विरल,
मंडराते शत-शत अलि बादल !"

इस प्रकार महादेवी जी और मीरा—दोनों की मूल प्रेरणा एक होते हुए भी दोनों में भिन्नता है। मीरा से सुख और दुख दोनों ही भावनाओं का समावेश है जबकि महादेवी जी में विषाद की अनुभूति अधिक है। मीरा की भाँति महादेवी जी तो सगुण गायिका नहीं जो आराध्य के रूप रंग में कुछ क्षण के लिए अपने को भूल जाए, फिर भी अपनी करुण रागिनी गाकर वे अपने प्रिय को अपनी ओर खींचना चाहती हैं—

'इस जादू गरणी वीणा पर
गा लेने दो क्षण भर गायक !
पल भर ही गाया चातक ने
रोम रोम में प्यास प्यास भर
कांप उठा आकुल सा अग जग
सिहर उठा तारामय अम्बर,
भर आया घन का उर गायक,
गा लेने दो क्षण भर गायक !'

परमात्मा से मिलने का विकल आर्त्तक्रन्दन उनके सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त है फिर भी दोनों की अभिन्नता को भारतीय अद्वैतवाद के अनुकूल बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रमाणित किया है।

'तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या
चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
× × ×

तू असीम मैं सीमा भ्रम
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !'

मीरा ने भी संसार को खूब परखा है तथा उन्हें इसमें कुछ भी महत्व दिखाई नहीं देता। मीरा संसार की क्षण-भंगुरता से भली भाँति परिचित हैं। महादेवी जी की भाँति उन्हें भी ईश्वर और जीव में घनिष्ट सम्बन्ध दिखाई देता है—

'तुम बिच हम बिच अंतर नाँहीं; जैसे सूरज घामा।'

मीरा को सम्पूर्ण संसार पाखण्ड दिखाई देता है। जो कुछ भी वे अनुभव करती हैं सीधी और सरल भाषा के सहारे व्यक्त कर देती हैं। इसी कारण से उनके काव्य में महादेवी के काव्य की भाँति दार्शनिक चिन्तन तथा आध्यात्मिक निगूढ़ता नहीं है। उनका काव्य वस्तुतः अनुभूति काव्य है। मीरा को तो केवल इसी से सन्तोष हो जाता है कि उनकी भावना का प्रकटीकरण हो जाता है तथा उनके अश्रु उनके प्रिय की स्मृति में निकल पड़ते हैं। वे महादेवी जी की भाँति कवयित्री नहीं बल्कि प्रेम-दिवानी उपासिका हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि महादेवी जी के काव्य में कोरा दार्शनिक चिन्तन है, अनुभूति नहीं। महादेवी जी में सच्ची अनुभूति है पर उनका प्रेम मीरा की भाँति उबाल नहीं खाता है; उसमें संयम है। श्री महादेवी जी को यदि आधुनिक युग की मीरा कहा जाए तो इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं है। प्रो० रघुवीरप्रसाद सिंह जी ने तो स्वयं महादेवी के शब्द लेकर उन्हें सगुणोपासक (कृष्ण की उपासिका) भक्तिन ही बना डाला है। वे लिखते हैं—

"मीरा और महादेवी हिन्दी साहित्य के दो विभिन्न युगों की दो महान् कवयित्रियाँ हैं। जहाँ तक काव्यगत मूल प्रेरणा का प्रश्न है, दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। मीरा और महादेवी दोनों की जीवनी पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह मालूम हो जाता है कि दोनों पर बचपन में भगवान के भावमय भजन का पूरा प्रभाव

पड़ा है। महादेवी का कथन है," एक व्यापक विकृति के समय निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनाभूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन का जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय, पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बंधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर माँ से पूजा, आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरम्भ की थी।" मीरा के विषय में तो यह जन श्रुति प्रसिद्ध ही है कि वह बचपन में ठाकुर जी पर अपना तन मन वार चुकीं थीं। महादेवी रूप की आराधिका नहीं अरूप की साधिका हैं। इसका कारण देश कालगत प्रभाव हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के कारण देश की चिन्ताधारा पर अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा और इससे छायावाद युग भी अनुप्राणित हुआ। महादेवी की कविताओं में भी उसी दार्शनिक चिन्तन का ब्रह्म उनके भावों का आलम्बन बना जिससे उन्होंने युग-युग का संबन्ध स्थापित कर अपना करुण मधुर भाव काव्य के माध्यम से अर्पित किया। महादेवी अपना प्रेम दार्शनिक शब्दावली में व्यक्त करती हैं। लेकिन उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में उनका प्रेमभाव बड़े ही सुस्पष्ट रूप से व्यंजित हुआ है। महादेवी को भी प्रणय-संकेत स्वप्न में ही मिलता है।......मीरा की रति-भावना में कोई दुःख नहीं है। उनकी भगवद् भक्ति स्पष्ट ही कान्तासक्ति है।.........मीरा की प्रेमभावना उबलते हुए दूध की तरह बार-बार छलक छलक पड़ती है। मीरा की इस आकुल तन्मयता पर महाप्रभु चैतन्य की कीर्त्तन-प्रणाली का भी प्रभाव पड़ा है।.........महादेवी का दुःखवाद

उन्हें वैयक्तिक सुखदुख से आगे बढ़ाकर लोक की ओर उन्मुख करता है। लेकिन भोली भाली मीरा अपनी प्रणय-भावना को महादेवी की तरह बौद्धिक संयम से नहीं बाँध सकती थीं।"

वास्तव में दोनों कवयित्रियों की तुलना करना बहुत कठिन है तथा ठीक भी नहीं है, क्योंकि दोनों कवयित्रियाँ दो विभिन्न युगों की सृष्टि हैं तथा उनकी भावना तथा अनुभूति पर युग विशेष की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना आवश्यक है। अतः दोनों को एक धरातल पर रखकर देखना हमारी भूल ही है। दोनों की अपनी विशेषताएँ हैं तथा सीमाएँ हैं। दोनों की प्रेरणा एक सी होते हुए भी भिन्नता लिये हुए है। अन्त में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी जी के शब्दों में मैं कहूँगा—"मीरा का काव्य दिव्य प्रेम और विरह पर आश्रित है, जो एक ओर उसे हृदय ग्राही बनाता है और दूसरी ओर काव्य के विषय को विस्तीर्णकर देता है। महादेवी के काव्य में वैराग्य-भावना का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भाँति नहीं, किन्तु बौद्ध सन्यासियों और सन्यासिनियों सरीखी एक चिंत मुद्रा, एक विरक्ति, एक तड़प, शांति के प्रति एक अशान्ति महादेवी जी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है। किन्तु इस कारण उनकी कविता में एक रूपता 'मोनोटनी' नहीं आई है; जैसा कुछ लोग आरोप करते हैं। उनमें प्रचुर वैभिन्य है।"